प्रेमचंद की एक अप्राप्य उर्दू कृति)

बाकमालों के दर्शन

(प्रेमचन्द की एक अप्राप्य उर्दू कृति)

अनुवादिका
निशा अग्रवाल

प्रकाशक
विभा प्रकाशन
५०, चाहचन्द- इलाहाबाद

प्रकाशक .

विभा प्रकाशन

५० चाहचन्द, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण · 2000

मूल्य . रु० 100/-

लेज़र टाइपसेटिंग

ग्राफिक एड्स

इलाहाबाद

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

इलाहाबाद

अभिमत

कथाकार प्रेमचन्द अपने युग के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। प्रायः प्रारम्भ में उनके उपन्यास समाधानपरक रहे किन्तु 'गोदान' तक आते-आते यह परम्परा टूट गयी। 'कफन' उनकी ऐसी कहानी है जो युग की विडम्बना को इतनी गहराई से प्रतिबिम्बित करती है कि आश्चर्य होता है। प्रेमचन्द के निबन्ध उनकी चिन्तशीलता के प्रतीक हैं। प्रगतिशील लोग उनके साहित्य को एकांगी रूप से देखते हैं क्योंकि सौन्दर्य पर केन्द्रित उनकी विचारधारा भारतीय जीवन-दर्शन से जुड़ी है। पाश्चात्य साहित्य तथा टालस्टाय आदि रूसी कथाकारों से उन्होंने प्रेरणा तो ली किन्तु देश-प्रेम उनके रक्त मे निरन्तर प्रवाहित रहा। गाँधीवाद से उन्हें आत्मिक शक्ति मिली। उनकी भाषा जनसामान्य से प्रेरित थी और हिन्दी-उर्दू दोनों की गगा-यमुना प्रकृति के अनुरूप भी। भारतेन्दु से उन्होने जैसी प्रेरणा ली उतनी सितारे-हिन्द से नहीं। अंग्रेजों के कुरूर शासन में उन्होने जन-चेतना को अद्‌भुत शक्ति प्रदान की।

'बाकमालो' की सूची में एक ओर राणा प्रताप दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द तथा तीसरी ओर टॉमिस गेन्सबरी और अन्त में भण्डारकर तथा गोपालकृष्ण गोखले जैसे युगपुरुष सम्माहित हैं। इस रचना का हिन्दी में अनुवाद करने का श्रेय डॉ० निशा अग्रवाल को है। वस्तुतः यह पर्याप्त कठिन कार्य था जो उन्होंने मनोयोग पूर्वक सम्पन्न कर दिया। निश्चय ही वे इसके लिए यशस्वी सिद्ध होंगी। उन्होंने मेरे निर्देशन में 'साहित्य और सौन्दर्य' विषय पर निष्ठापूर्वक कार्य किया और अब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, के हिन्दी विभाग में कार्यरत हैं।

डॉ० जगदीश गुप्त

मंतव्य

प्रेमचन्द उन विरल लेखकों में हैं जिन्होंने रचना-भाषा के रूप में उर्दू-हिन्दी को सम्मान दिया। जब उर्दू लिखी तो उसकी शैली और मुहावरे में जब हिन्दी लिखी तो उसके स्वभाव और अप्रस्तुत विधान में। दोनों का घालमेल नहीं किया। उनके युग में समझौता-भाषा हिन्दुस्तानी की चर्चा जोरों पर थी। पर उनका रचनाकार समझता था कि उर्दू तो स्वयं रेख्ता (मिली-जुली जुबान) है। अब फिर इस रेखा से और नया रेख्ता जो बनेगा उसमें भाषिक सार-तत्व समाप्त हो जाएगा। इसीलिए हिन्दी, उर्दू दोनों को वे स्वतंत्र रूप में रचना-भाषा स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि उनकी उर्दू लेखन हिन्दी में या कि हिन्दी लेखन उर्दू में महज़ लिप्यंतरण से संभव नहीं होता, जैसा कि हिन्दुस्तानी के लिए हो जाना चाहिए। वहाँ पूरी अनुवाद-प्रक्रिया अपेक्षित होती है। यों, प्रेमचन्द की व्यावहारिक सहानुभूति हिन्दुस्तानी में थी, पर उसकी राजनीति मे वे नही पडे, जो उनके जैसे लेखक के लिए सर्वथा योग्य था।

प्रस्तुत जीवनी सग्रह, जिसके चरित नायकों का चयन राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ मे जीवन के विविध क्षेत्रों से किया गया है, प्रेमचन्द की मूल उर्दू रचना है जो लम्बे समय से अप्राप्य है। डॉ० निशा अग्रवाल ने बडे परिश्रम और वैसी ही सूझ-बूझ के साथ उसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है, जहाँ प्रेमचन्द की प्रकृति के अनुकूल दोनों भाषा-रूपों को बराबर सम्मान मिलता है। रूपान्तरकार की सफलता का यही रहस्य है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी
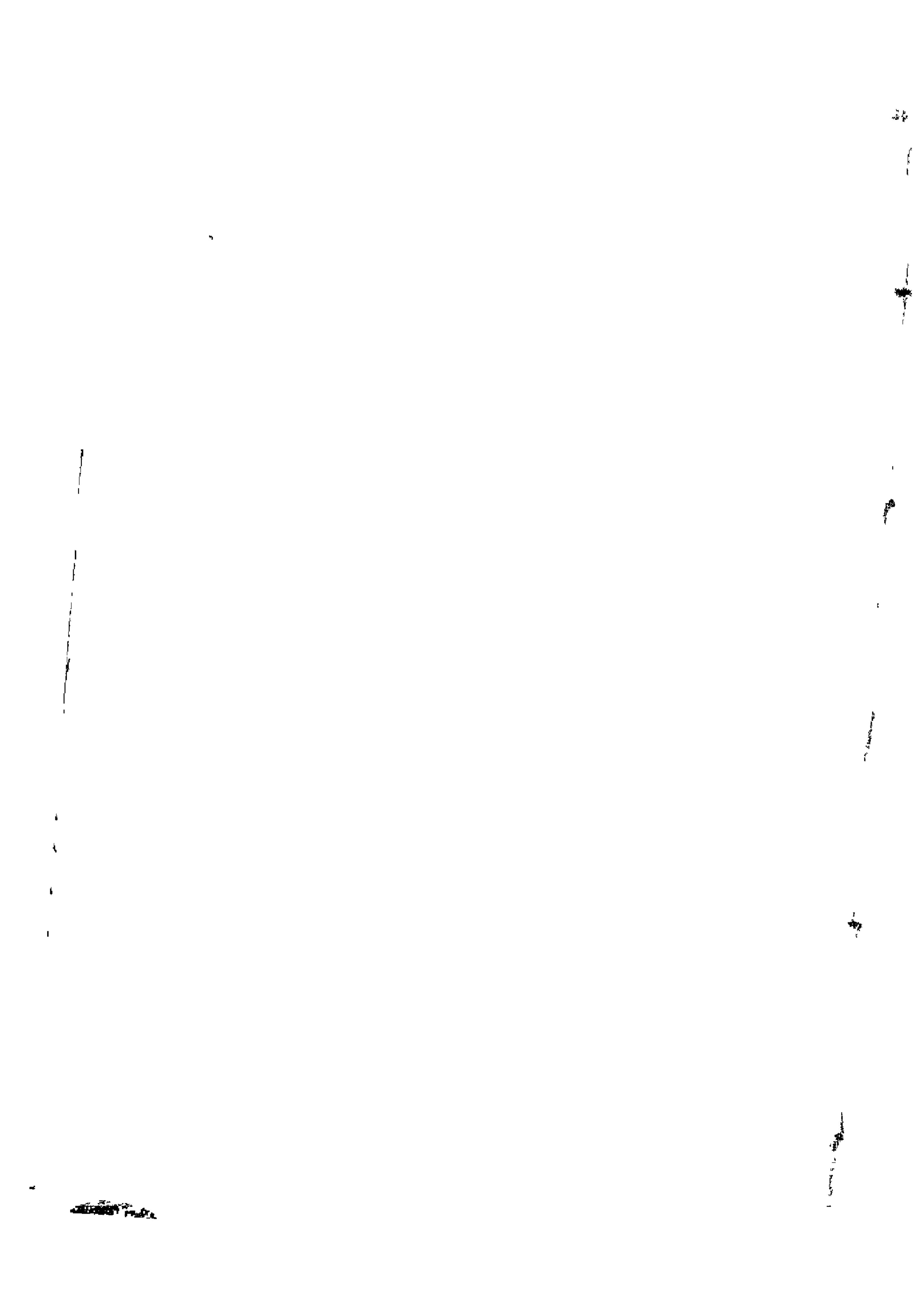
बाकमालों के दर्शन

प्रेमचन्द की एक अप्राप्य उर्दू कृति

प्रेमचन्द द्वारा उर्दू में रचित यह पुस्तक रामनारायण लाल प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद से सन् 1929 में छपी। एक लम्बे अर्से तक यह गुमनामी के अंधेरे में गुम रही। न प्रेमचन्द के अध्येताओं ने और न ही उनके शोधकर्ताओं ने इस पुस्तक का कहीं जिक्र किया है। संयोग से डेढ़ वर्ष पूर्व मुझे इस पुस्तक की जानकारी इलाहाबाद से निकलने वाले दैनिक पत्र 'अमृत प्रभात' के 'कैसे-कैसे लोग' शीर्षक लेखमाला के संदर्भ से मिली जिसे डॉ० बी० एस० गहलौत निकाल रहे थे। संभवतः आज के युवा वर्ग की रातों रात बड़ा आदमी बनने की प्रवृत्ति को देखकर ही उन्होंने इलाहाबाद के कुछ उन प्रतिष्ठित लोगों का इतिहास प्रस्तुत करने की योजना बनायी होगी जिन्होंने जो प्रतिष्ठा समाज में अर्जित की वह महज संयोग या भाग्यवशात् नहीं था बल्कि उनकी अनवरत मेहनत, अध्यवसाय नेकनीयती, सदाचारिता, सब्र और सदाशयता का परिणाम था।

ऐसे ही प्रतिष्ठित लोगों की सूची में एक नाम था लाला राम नारायण लाल का जिन्हें इस पुस्तक के प्रकाशन का गौरव प्राप्त है। यह प्रकाशन संस्थान भारतवर्ष के प्राचीन प्रकाशन संस्थानों में एक है जिसकी नींव सन् 1885 में पड़ी और इसका उद्देश्य मात्र व्यावसायिक न होकर भाषा, साहित्य और संस्कृति का प्रचार-प्रसार और उत्थान था।

चूँकि मैं इस संस्थान से पारिवारिक रूप से सम्बद्ध हूँ इसलिए इसके प्रदेय का स्मरण कर इसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ।

लाला राम नारायण लाल को यद्यपि ऊँची तालीम नही मिली थी तथापि उर्दू, फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता और बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस व्यक्ति ने अपने प्रकाशन संस्थान के द्वारा विविध भाषाओं एवं उसके साहित्य के प्रसार में अहम् भूमिका निभाई। यह वह समय था जब इलाहाबाद में केवल गवर्नमेंट प्रेस था जिसमें केवल अंग्रेजी में काम होता था। इस प्रकाशन संस्थान ने हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी आदि भाषाओं में सोलह प्रकार के कोश ग्रन्थों का निर्माण कर भाषा शिक्षण की दिशा में अगुआ का काम किया।

अनेक भाषाओं के क्लासिक साहित्य का हिन्दी अंग्रेजी एवं उर्दू में अनुवाद कराकर

रामायण का हिन्दी में अनुवाद कराकर उसे दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटिश गायना, मौरिशस युगांडा, नाइजीरिया एव फिजी आदि देशो में भेजा जिससे प्रवासी भारतीयो को अपने भाषा और सस्कृति को अक्षुण्ण रखने मे मदद मिली।

इसके अतिरिक्त पुराण, उपनिषद आदि की कथाओं को आधार बनाकर बालोपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जिससे बालकों के चरित्र निर्माण में सहायता मिली।

आज के समाज मे जब व्यावसायात्मिका बुद्धि ही पधान हो गयी है। आवश्यकता है हम पुनः समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझते हुए उसे लोक कल्याण की भावना से जोड़ें।

प्रेमचन्द की इस पुस्तक में तेरह ऐसे प्रतिभाशाली चरित्रो का जीवन चरित संकलित है जो केवल भारत से नहीं अपितु पूरे विश्व से चयनित हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात यह कि वे जीवन के किसी एक क्षेत्र से नहीं अपितु विविध क्षेत्रों से लिये गये है। जैसे इसमें अगर राणा प्रताप, मानसिह और गेरी बाल्डी जैसे देशभक्त है तो विवेकानन्द जैसे समाज सुधारक भी; बिहारी और केशव जैसे साहित्यकार हैं तो टॉमस गेन्सबरो और रेनाल्ड्स जैसे अट्ठारहवी शताब्दी के योरोपीय चित्रकार भी; गोपालकृष्ण गोखले और रामकृष्ण भडारकर जैसे शिक्षाविद् हैं तो राणा जंग बहादुर एवं रणजीत सिह जैसे कुशल प्रशासक और राजा टोडरमल जैसे योग्य व्यवस्थापक भी। चरित्रो का चयन प्रेमचन्द की व्यापक उदार और विलक्षण दृष्टि का परिचायक है।

पुस्तक मुझे बहुत सरस और प्रेरक लगी। आम जीवनी लेखकों की तरह प्रेमचन्द ने वर्णनात्मक ढंग से मात्र नसीहत देने के उद्देश्य से इसकी रचना नहीं की है। उनकी भाषा शैली की जीवन्तता, चित्रमयता, गतिमयता, रोचकता और नाटकीयता को देखकर ऐसा लगता है मानो वे अपने किसी आत्मीय मित्र के जीवन की घटनाओं का आँखों देखा हाल बयान कर रहे हों। इसे पढ़कर पाठक की स्थिति वही हो जाती है जो संजय के द्वारा महाभारत का आँखों देखा हाल सुनकर धृतराष्ट्र की हुई थी।

यद्यपि यह पुस्तक राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में लिखी गयी थी तथापि इसकी उपादेयता आज भी बनी हुई है और सभवतः उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक।

हमारे यहाँ 'इतिहास' का अर्थ 'ऐसा हुआ था' यह नहीं रहा—'ऐसा होता रहा है'—यह है। रामायण और महाभारत हिस्ट्री के अर्थ में इतिहास नहीं है। हमारे यहाँ इतिहास की दृष्टि वर्तमान में केन्द्रित है ऐसा वर्तमान जो अतीत के सातत्य में है। 'राम', 'कृष्ण' जैसे लीला पुरुषों की उपासना इतिहास पुरुष 'ईसा' और 'मूसा' के रूप में न होकर अपने बीच उपस्थित अपनी ईश्वरीयता के प्रमाण रूप में है। इसीलिये इस पुस्तक में संकलित जो प्रतिभाशाली चरित्र हैं वे अतीत के होते हुए भी आज भी अपने गुणों की ज्योति से हमारे जीवन पथ का अन्धकार मिटाने में सक्षम है।

आज जो हम मूल्यहीनता के दौर से गुजर रहे हैं, पश्चिमी सस्कृति आक्रान्ता की तरह हमारे ऊपर हावी हो रही है, हम अपनी अस्मिता को भूल रहे हैं—आवश्यक हो गया है कि हम अपने अतीत से प्रेरणा ले प्रतिभाशाली लोगों के जीवन चरित को

पढ़कर उससे सबक लें।

पुस्तक में संकलित निबन्धों को महापुरुषों का जीवन चरित और साहित्यिक आलोचना दो भागों में बाँटकर मैं आपके समक्ष उसमें निहित तात्विक दृष्टि के कुछ अंशों को मिसाल के तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगी।

विवेकानन्द के जीवन से सम्बद्ध अनेक पुस्तकों की रचना हो चुकी है लेकिन यहाँ प्रेमचन्द अपने इस छोटे से निबन्ध में उनके जीवन की उन घटनाओं और ऐसे प्रसगों का केन्द्र मे रखते हैं जिनसे हमारी मूल समस्याओ का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समाज सुधारक के रूप मे विवेकानन्द को प्रस्तुत करते समय वे समकालीन तथाकथित समाज सुधारकों का बखिया उधेड़ते है जो समाज सुधार करने का ढोंग रचते है। वे कहते है कि जो समाज सुधार का बीड़ा उठाते है उनके लिये सबसे बड़ी जरूरत है अपनी शख्सियत को आमूल चूल बदलना। कथनी और करनी का भेद मिटाना। प्रेमचन्द ने इस दृष्टि को अपने कथा साहित्य के अनेक पात्रों द्वारा भी सजीव किया है।

विवेकानन्द समस्या की जड तक पहुँच कर उसे समूल नष्ट कर देना चाहते थे और यही दृष्टि प्रेमचन्द की भी थी। विवेकानन्द नीचे तबके के लोगों को हिन्दू कौम की बीज और बुनियाद मानते थे और उनके सुधार को सबसे पहले आवश्यक मानते थे। शिक्षा को वे सबक पढाना नहीं आदमी को इन्सान बनाना मानते थे। शिक्षा पद्धति के लिये उनकी धारणा थी कि हमारी पुरानी संहिता और तौर तरीको पर आधारित शिक्षा ही हमारे लिये उपयुक्त है। शिक्षा की बागडोर हमारे हाथों में होनी चाहिये—विदेशियों के हाथ में नहीं।

विवेकानन्द आजीवन बुराइयों से लडते रहे और समाज सुधार के उपाय सोचते रहे। वे कहते थे कि हिन्दुस्तान की मौजूदा कमजोरी और जिल्लत की वजह ब्रह्मचर्य का नाश है। यहाँ भिखमंगा भी यह आशा रखता है कि शादी करनी है जिससे मुल्क में दस बारह गुलाम और पैदा कर दें। अगर देखें तो आज भी देश की मूल समस्या जनसंख्या में विस्तार से ही जुड़ी है।

हिन्दू दर्शन के व्यावहारिक पक्ष पर दृष्टिपात करते हुए विवेकानन्द कहते थे कि देश को सबसे पहली जरूरत है—सेहतमन्द लोगों की। गीता के उपदेश भी तभी समझ में आयेंगे जब हमारी रगों में खून की हरकत ज्यादा तेज होगी। महानता का राज है आस्था, गहरी और पक्की आस्था—खुद में और भगवान में।

प्रेमचन्द, साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल मानते है। माननीय गोपाल कृष्ण गोखले का चरित्र इस कथन को अक्षरशः सत्य सिद्ध करता है। वे साहित्यकार तो नहीं हाँ शिक्षक अवश्य थे। उनकी काबलियत और सूझबूझ ने अनेक राजनीतिक मसलो को हल किया। स्वदेशी आन्दोलन के प्रति हुकूमत के कठोर रवैये को बदलने में उनकी सक्रिय भूमिका थी। वे कहते थे कि अंग्रेजों की गलत नीतियो को रद्द करने का यही उपाय है कि हिन्दुस्तानी लोग शिक्षा में तरक्की करें, अनुशासन बढाये और देश के मसलों

रामकृष्ण भंडारकर का सम्बन्ध तालीम जगत से है। उनके जीवन के माध्यम से प्रेमचन्द ने शिक्षा जगत की कुछ प्रमुख समस्याओं की ओर ध्यानाकर्षित कर उसका समाधान प्रस्तुत किया है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञान के प्रति जबरदस्त लगाव होना चाहिये जैसा कि भंडारकर को था। जिस काम को वे हाथ में लेते उसमें जी जान से लग जाते और जब तक पूरा न कर लेते उसे छोड़ते नहीं थे।

विद्यार्थी प्रायः संस्कृत भाषा पढने से घबडाते हैं लेकिन भंडारकर के विद्यार्थियो के साथ ऐसी बात नहीं थी क्योंकि उनका स्वयं का ज्ञान और विद्यार्थियों के प्रति रवैया दोनों ही विलक्षण था।

भंडारकर के माध्यम से प्रेमचन्द दिखाना चाहते है कि शिक्षक और विद्यार्थी का सम्बन्ध कैसा हो? केवल वह कक्षा तक ही सीमित न हो। भंडारकर सच्चे अर्थो में अपने विद्यार्थियों के दोस्त, सलाहकार और पथ प्रदर्शक थे। शिष्यों के लिये हमदर्दी सदाचरण और आजाद ख्यालात के वे जिन्दा मिसाल थे। विषय पर अधिकार, बर्ताव में हमदर्दी और स्वभाव में जिन्दादिली हो तो विद्यार्थी के ख्यालात पर जादू का सा असर होता है।

भंडारकर ने इतिहास लेखन का आदर्श प्रस्तुत किया। प्राचीन भाषाओं का अध्ययन और खोज की दिशा में उनका अमूल्य योगदान है। बम्बई गजेटियर के लिये आपने जो दक्खिन का इतिहास लिखा वह महज चन्द घटनाओं की एक फेहरिस्त मात्र नहीं बल्कि इसमें इस्लामी हमलों के पहले के रहन-सहन के तरीके, रस्मो-रिवाज और कायदे कानून पर भी रोशनी पड़ती है।

साहित्य जीवन से सम्पृक्त होता है। स्वतंत्रता पूर्व साहित्य में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि थी। प्रेमचन्द ने भी राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से ऐसे देशभक्तो की जिन्दगानी चित्रित की है जिनके दिलों में आजादी की आग शोले की तरह दहकती थी।

राणा प्रताप की बहादुरी, मर्दानगी और शहादत के कारनामों से न केवल इतिहास का पन्ना-पन्ना रंगा है बल्कि उनका नाम देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर है। प्रेमचन्द ने उनके देशप्रेम के कारनामो को ऐसी जानदार, फड़कती हुई भाषा में कहा है जो सोये को जगा दे, मरे हुए में जान फूँक दे।

न केवल भारत के देशभक्त बल्कि इटली को गुलामी की जजीरो से मुक्त कराने वाले अमर योद्धा गेरीबाल्डी के चरित्र को भी उन्होंने चित्रित किया है जिसने न केवल अपने मुल्क और कौम को तरक्की की बुलन्दियों तक पहुँचाने की कोशिश की बल्कि दूसरी गिरी हुई कौमों को भी उनकी खस्ता हालत से निकालने में मदद करता रहा। देश प्रेम और इन्सानी हमदर्दी से भरा ऐसा दिल इतिहास में कम नजर आता है।

देश को आजाद कराना तो महान और दुष्कर कार्य है ही—देश का शासन चलाना भी कम कौशल का काम नहीं सियासती गुणों को प्रेमचन्द ने नेपाल के राणा जंग बहादुर

किसी देश का सबसे बड़ा दुश्मन होता है—आपसी झगड़ा और सबसे बड़ी जरूरत होती है कुशल प्रशासक की, जो हालात पर काबू रखकर कौम और मुल्क को सही नेतृत्व दे सके। ऐसा शासक जिसमें उसूल पसन्दी हो और खुदगरजी का लेश भी न हो। नेपाल के राणा जंग बहादुर समझदार, विवेकी, दूरंदेश और आला दर्जे के उन जहीन लोगों में थे जो मुल्कों और कौमों को आपसी झगड़े से निकालकर तरक्की की बुनियाद डालते हैं।

पंजाब केसरी रणजीत सिंह के जीवन के माध्यम से प्रेमचन्द ने दिखाना चाहा है कि कैसे अपनी सियासी काबलियत और महान शख्सियत की बदौलत वे अंग्रेजों से टक्कर ले सके और पंजाब को उनके प्रभाव से मुक्त रख सके। प्रेमचन्द की दृष्टि में धर्म निरपेक्षता, इन्सान को परखने की जौहरी निगाह, हारे हुए राजा के साथ भद्रतापूर्ण व्यवहार, पौरुष और मर्दानगी के प्रति सम्मान का भाव आदि उनकी कुछ ऐसी विशेषताएं थी जिनके कारण वे हर दिल अजीज हो सके।

प्रेमचन्द की मूल्यांकन दृष्टि में अपूर्व संतुलन है। उनका यह कथन द्रष्टव्य है "ऐसा नहीं कि रणजीत सिंह में कमजोरियाँ नहीं थीं या उन्होंने कूटनीति नहीं की लेकिन उन्हें सामान्य व्यक्ति के पैमाने से नहीं शाही पैमाने से तोलना चाहिये।"

देश का शासन चलाने में राजा के साथ व्यवस्थापकों और नीति निर्माताओं की भी अहम् भूमिका होती है। राजा अकबर के दरबार में ऐसे ही नवरत्न थे राजा टोडरमल। एक गरीब माँ बाप का बेटा जिसके सिर से बाप का साया बचपन में ही उठ गया कैसे अपने जेहन, परिश्रम और लगन के बल पर शहंशाह अकबर का वजीर आजम बन गया। अपनी वफ़ादारी, जाँबाजी और सेवाओं से उसने अकबरी दरबार में अपनी खास जगह बना ली और इतना ही नहीं उसकी अमर यादगारें शासन की वे नीतियां और बन्दोबस्त की वे व्यवस्थाएं हैं जो न केवल अकबरी दरबार में बल्कि पूरे देश में फ़क्र से देखी और अमल की जाती है। इन सबका जीवन्त चित्रण 'टोडरमल' में हुआ है। टोडरमल का चरित्र हमारे अंदर आत्मविश्वास जगाता है।

मानसिंह भी अकबर के नवरत्नों में से एक था। प्रेमचन्द ने उसमें जो सबसे बड़ा गुण देखा वह था उसकी आजाद ख्याली और मजहबी एकता की भावना। वे लिखते हैं, 'आमेर के कछवाहा खानदान को आजाद ख्याल और मजहबी एकता के मैदान में अगुआई करने का गौरव प्राप्त है और जब तक इन गुणों की वक़त जमाने की निगाह में रहेगीइ इस खानदान के नाम पर इज्जत का फातिहा पढा जायेगा।'

'केशव' और 'बिहारी' की रचनात्मकता पर विचार करते समय प्रेमचन्द ने एक सच्चे समालोचक की भूमिका निभाई है।

केशव और तुलसी समकालीन थे और दोनों ने अपने प्रबन्ध काव्य का विषय रामकथा को बनाया। प्रेमचन्द की यथार्थपरक दृष्टि केशव को तुलसी से इस दृष्टि से श्रेष्ठ मानती है कि उन्होंने विभीषण के कारनामों की आलोचना की—उसे गद्दारों की श्रेणी में रक्खा प्रेमचन्द का कहना है कि यह देश प्रेम का दौर है सब जाति और कुनबे के हित

विभीषण के बर्ताव पर गौर नहीं किया और वह काम केशवदास के लिये छोड़ दिया। केशव राजा के दरबारी थे, दरबार के कायदे और अदब से वाकिफ थे। देशप्रेम की वकत समझते थे। चुनांचे उन्होंने रामचन्द्र के लडके लव की ज़बान मे विभीषण को खूब खरी-खोटी सुनाई। तुलसी जहाँ भक्ति का कवच पहनाकर दोष को भी गुण बना देते हैं वहाँ केशव यथार्थपरक दृष्टि से देखकर चरित्र को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं।

प्रेमचन्द केशव की नारी के प्रति रूढ़िवादी दृष्टि के आरोप का उत्तर देते हुए कहते है कि यद्यपि आज नारी स्वतन्त्रता पर बल दिया जा रहा है फिर भी पुराने उसूलों में कुछ ऐसी खूबियां हैं जिनसे कट्टर से कट्टर आलोचक भी इन्कार नहीं कर सकता और दूसरी बात कि यह तबदीली अभी आजमाइश के ही स्तर पर है। इसलिये इस मसले मे हम केशव को दोष नहीं दे सकते। यह प्रेमचन्द की प्राचीन और नवीन दोनो दृष्टियो के सामजस्य का सुन्दर मिसाल है।

बिहारी का मूल्याकन करते समय प्रेमचन्द ने न केवल उनकी कलात्मक खूबियो को दर्शाया बल्कि यह भी दिखाया कि कला के संसार में न कोई हिन्दू होता है न मुसलमान। शायरों को साम्प्रदायिकता से कोई मतलब नही। मजहबी भेदभाव के प्रेमचन्द हमेशा खिलाफ रहे और सभी महापुरुषों के जीवन के इस पक्ष को उन्होंने विशेष रूप से उजागर किया है। बिहारी हिन्दी के शायर थे पर मुसलमान शायरो ने उनकी खुले दिल स तारीफ की और 'सतसई' के टीकाकारों मे अधिकांश मुसलमान थे।

प्रेमचन्द की तत्वान्वेषी दृष्टि बदलते हुए युग के साथ कवि की मानसिकता मे होती हुई तबदीलियों को देखने में चूक नही करती। प्रेमचन्द का युग स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजो की गुलामी का था जिसमें वे देख रहे थे कि किस प्रकार कवियों की प्रकृति भाट की तरह होती जा रही थी। वह अंग्रेजों की तारीफ़ में पन्ने के पन्ने रंग रहा था चाहे वे उसके काबिलहों या नहीं। उसका कोई आत्मसम्मान न था। वह तो केवल इतने में ही खुश हो जाता अगर अंग्रेज कलक्टर उसके लिये बैठने को कुर्सी लाने का हुक्म कर दे या अपने साथ दस्तरखान पर खाने की इज्जत बख्श दे। मध्यकाल में हमारे राजा कद्रदान थे गुणों के पारखी थे और कवि आत्मसम्मानी था। प्रेमचन्द ने बिहारी के विषय में लिखते समय उन तमाम घटनाओं का विशेष जिक्र किया है जिनसे उस समय की राजनीतिक सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो का पता चलता है। शाही कद्रदानी की वजह से ही उस युग में कला और साहित्य का विकास सम्भव हो सका।

लेकिन इन कद्रदानियों का जिक्र करते समय भी प्रेमचन्द अपनी समसामयिक प्रगतिशील दृष्टि का पता देने से नहीं चूकते। बिहारी पर लिखते समय उन्होंने भूषण का जिक्र किया है जिनके कद्रदान आश्रयदाता छत्रसाल ने उन्हें अट्ठारह बार एक दोहा सुनाने के लिए अट्ठारह लाख रुपया दिया। प्रेमचन्द इतनी सी बात के लिये इतनी बडी धनराशि देने का समर्थन नहीं करते। उनके अनुसार यह धनराशि इससे ज्यादा अच्छे कामों मे भी खर्च की जा सकती थी।

टॉमस गेन्सबरो और 'जोश्वा रेनाल्ड 18वीं शती के योरोपीय चित्रकार हैं जिन

पर लिखे गये निवन्ध प्रेमचन्द की सौन्दर्य दृष्टि को रेखाकित करते है। उदाहरण के लिए 'टॉमस गेन्सबरो' का एक प्रसंग—'गेन्सबरो की तस्वीरों में छोटे-छोटे खुशहाल और सेहतमन्द बच्चों का आजादी से इधर-उधर दौड़ना बहुत प्यारा लगता है। खास तौर पर जब उसे रेनाल्ड की तस्वीर से मिलाया जाय। इसमें शक नही रेनाल्ड के बच्चे भी बहुत प्यारी चीज हैं—बेतकल्लुफ, आजाद और खूबसूरत लेकिन उन्हे देखने से ऐसा मालूम होता है कि उन्हे मखमली गद्दों पर सोने और सोने के चम्मचों से खाने की आदत है। गेन्सबरो के बच्चों मे ग्रामीण सौन्दर्य है---अल्हड़, सेहतमन्द और दुनिया से बेखबर बच्चे जिससे उनके देहाती और अक्खड़ होने का पता लगता है। वे कुदरत की सन्तान मालूम होते हैं जो उसकी गोद में आजादी और बेपरवाही से दौड़ रहे है। उनको इस बात की परवाह और जरूरत नही कि मेरे साटन के कोट खराब हो जायेंगे या मेरे नरम-नरम जूते भीग जायेंगे। वे हरी-हरी घास पर लेटने, खरगोशों की तरह झाड़ियों में फुदकते और नालों-झरनों में मछलियों की तरह तैरते फिरते हैं।' इस उद्धरण से जाहिर होता है कि प्रेमचन्द कला मे सहजता, स्वाभाविकता और यथार्थवादिता के पक्षधर थे। कला वही सुन्दर है जिसमें जीवन की अभिव्यक्ति उसके सहज और यथार्थ रूप में हो। प्रेमचन्द की सौन्दर्य दृष्टि के अनेक आयाम इन निबन्धों के माध्यम से खुलते हैं।

वस्तुतः महत्त्व उस दृष्टि का होता है जो रचनाकार अपने विषय को देता है लेकिन दर्शन अधूरा है अगर वह वर्णन से विहीन हो। भट्टतोत का कथन 'दर्शनाच्च वर्णनाच्च रूढा लोके कविश्रुतिः' इस सदर्भ में स्मरणीय है जिसमें दर्शन और वर्णन दोनों के संश्लिष्ट रूप को सृजनशीलता से सम्बद्ध किया गया है। प्रेमचन्द के सभी निबन्धो में उनके दर्शन का वैशिष्ट्य तो साफ जाहिर ही है, उर्दू भाषा की साफगोई बात कहने का अन्दाज और दिल पर असर डालने की ताकत भी किसी तरह कम नहीं।

शास्त्रों में सृजनशीलता के लिये प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास का योग आवश्यक माना गया है। इन निबन्धों से प्रेमचन्द की बहुज्ञता साफ जाहिर होती है। उन्होंने न केवल भारतीय महापुरुषों एवं साहित्यकारों के जीवन और दर्शन का अध्ययन मनन किया बल्कि पाश्चात्य महापुरुषों एव कलाकारों को भी उतने ही मनोयोग से जानना चाहा। उनकी रसग्राहिणी प्रतिभा न जाने कितने फूलों का रस संचित करके लाई है। अब यह हम पाठकों का दायित्व है कि उसका आस्वादन कर उसके मधु से अपने व्यक्तित्व को सिक्त करें।

पुस्तक के सम्बन्ध में दो बातें और कहना चाहूँगी। कुछ लोग इस पुस्तक के सदर्भ में यह शका उठा सकते हैं कि इसमें सकलित जीवन चरित अन्यत्र भी प्रकाशित हो चुके है। अतः इसकी मौलिकता व औचित्य क्या है? वस्तुतः प्रेमचन्द के अध्येता यह भली-भाँति जानते हैं कि उनके निबन्ध आदि प्रारम्भ में उर्दू के पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं जिनका संकलन आगे चलकर लोगों ने स्वतंत्र पुस्तकों में भी किया है लेकिन इससे इस पुस्तक की न मौलिकता प्रश्न चिह्नित होती है न उपादेयता एक स्थान पर इतनी व्यापक दृष्टि से जिन बाकमालों का जीवन दर्शन सकलित किया गया है वह अपने

आपमें विलक्षण है और इस पुस्तक के होने का सकेत जहाँ तक मुझे ज्ञात है अब तक प्रेमचन्द सम्बन्धी जितनी भी सामग्री प्राप्त है उसमे नही मिलता।

मात्र विषय की दृष्टि से ही नही भाषा की दृष्टि से भी यह सकलन उत्कृष्ट है। एक ओर उर्दू भाषा की सरलता, स्पष्टता, साफगोई दूसरी ओर कहने का खास अंदाज और शैली की खानगी जैसे वस्तु मे प्राण डाल देते है। फिर उसके अन्दर बैठे प्रेमचन्द जब अपनी तीसरी आंख से मर्म का उद्घाटन करते है तो जैसे जीवन का सहज दर्शन हो जाता है।

अनुवाद कार्य मौलिक लेखन से दुष्कर होता है क्योंकि हमे निरन्तर इस तथ्य के प्रति सजग रहना पडता है कि कही लेखक के मूल भाव का विरूपीकरण न हो जाय। मैंने यथासंभव प्रयत्न किया है कि उर्दू की रवानी और अन्दाज बयाँ बरकरार रहे और प्रेमचन्द की बात उन्ही की वाणी मे रखी जाये। इस प्रयास मे कितनी सफलता मिली है इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही करेंगे।

अन्त में केवल परम्परा निर्वाह की दृष्टि से नहीं बल्कि नहे दिल मे मै श्री एम० पी० राना के प्रति अपना आभार और उद्‌गार प्रेषित करती हूँ जिन्होंने इस संदर्भ में एक सच्चे मित्र और पथ प्रदर्शक की भूमिका निभायी है। उर्दू भाषा और साहित्य के अपने गहन ज्ञान से प्रेमचन्द की इस उर्दू की कृति को सही रूप मे समझने में मेरी अनेक रूपों में मदद की है। डॉ० मोहन अवस्थी के प्रति भी मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होने समय-समय पर इस कार्य में मेरा मार्गदर्शन किया और मेरा उत्साहवर्द्धन किया। श्रद्धेय गुरु द्वय प्रो० डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी और प्रो० डॉ० जगदीश गुप्त ने अपने अमूल्य अभिमतों से निश्चय ही मुझे गौरवान्वित किया है, मैं उन्हें नमन करती हूँ। अन्त में अपने पति डॉ० आर० के० अग्रवाल के प्रति मैं अपने उद्‌गार व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने सदैव मेरा साथ दिया और हौसला बढ़ाया अन्यथा यह कार्य सम्पन्न न हो पाना। पुस्तक के प्रकाशन में साहित्य भंडार का योगदान प्रशसनीय है। इस कार्य में प्रिय शान्ति चौधरी का सहयोग मेरे स्नेह और सराहना का हकदार है।

इन शब्दों के साथ यह पुस्तक मैं पाठक समाज को सौंपती हूँ। यदि एक भी पाठक इसके जीवन-दर्शन से प्रभावित और प्रेरित होता है तो वह मेरी सबसे बडी उपलब्धि होगी।

निशा अग्रवाल

अनुक्रम

राणा प्रताप

राजस्थान के इतिहास का हर पन्ना बहादुरी, शहादत और मर्दानगी के कारनामों से सजा है। बप्पा रावल, राणा सांगा और राणा प्रताप जैसे मशहूर नाम है जो बावजूद इसके कि ज़माने ने उन्हें मिटा देने में कोई कसर नहीं उठा रक्खा अभी तक जिन्दा है और इसी तरह हमेशा जिन्दा और चमकते रहेंगे। इनमें से किसी ने भी बादशाहत की नीव नहीं डाली, अधिकतर युद्धों में विजयी नहीं हुए और न ही नयी कौमें बनायी। मगर इन महान लोगों के सीने में एक ऐसी आग, एक ऐसा शोला दहक रहा था जिसे देश प्रेम करते है।

वे यह नहीं देख सकते कि कोई गैर शख्स आये हमारे मुल्क मे और हमारे बराबर होकर रहे। उन्होंने जिन्दगी की तकलीफें झेलीं। अपनी जानें गवायीं मगर अपने मुल्क पर कब्जा करने वालो की जड़ उखाड़ने के लिये मन ही मन बल खाते रहे। वे इस विचार से सहमत नहीं थे कि 'मैं भी रहूँ और तू भी रहे।' मर्दानगी, पौरुष और साहस से भरा उनका दावा यह था कि रहें तो हम या हमारे देशवासी, गैर कौम हरगिज न कदम जमाने पाये। उनके कारनामें हमारे धार्मिक ग्रन्थों में स्थान पाने के काबिल हैं। हम यहाँ पर इकबाले अकबरी का मुकाबला सामने तोहफा के तौर पर राणा प्रताप की जिन्दगी को पाठकों को पेश करते हैं जो मरते दम तक करता रहा।

उस वक्त जबकि कोटा, जैसलमेर, आमेर, मारवाड़ सभी देशों के राजा या तो दरबारे अकबरी की जय मनाने वाले या उसके मातहत बन चुके थे। शेर की तरह बहादुरी और सच्चाई पर चलने वाला केवल राणा प्रताप ही अपनी प्रतिज्ञा पर अटल अकेले दम उसकी ताकत का मुकाबला करता रहा। पहाड़ के दर्रों और पेड़ के कोटरों में छिप-छिपकर उस अनमोल हीरे को दुश्मन के कब्जे से बचाता रहा जिसे कौमी आजादी कहते हैं और जब मरा तो उसके पास सिर्फ अपनी चमकती तलवार और कुछ वफादार साथियो के सिवाय शान शौकत का कोई सामान न था। जितने और संगी-साथी थे वे या तो दोस्ती का हक अदा कर चुके थे या अकबरी इकबाल का दम भरने लगे थे। मगर यह गुमनामी और अकिंचन की मौत सोने के तख्त और खुशामदी लोगों के बीच मरने से हजार दरजे अच्छी थी जो कौम की आजादी, आत्मा की गुलामी और मुल्क के जिल्लत के बदले मिली हो।

राणा प्रताप उदयसिंह का सपूत बेटा और बहादुर दादा का पोता था। राणा सांगा और बाबर के फौजी रखरखाव और युद्धों की कहानियाँ इतिहास के पन्नों में लिखी हुई हैं। हालाँकि राणा की हार हुई मगर अपने देश की हिफाजत के लिये अपना खून बहाकर वह हमेशा के लिये अमर हो गया। उसके बेटे उदयसिंह को बाप के मर्दाना गुण नहीं मिले थे। वह कुछ दिनों तक तो चित्तौड़ को मुगलों के हाथ से बचाता रहा लेकिन ज्यों ही अकबर के तेवर बदले देखे अपना शहर जगमल को सुपुर्द करके स्वयं अरावली की पहाड़ी में जा छिपा और वहाँ एक नये शहर की नींव डाली जो आज उदयपुर के नाम से मशहूर है। जगमल ने जिस दिलेरी से दुश्मन का मुकाबला किया, चित्तौड़ के वासी जिस मर्दानगी से जान हथेली पर लेकर दुश्मन को भगाने को आमादा हुए और चित्तौड की रानियों ने जिस हिम्मत से अपनी इज्जत को बचाने के लिये जौहर करना ज्यादा पसन्द किया ये सारी बातें हर एक के जबान पर हैं और इतिहासकारों की कलम से उसे सुनकर लोग हमेशा गर्व करते रहेंगे।

उधर भगोड़ा उदयसिंह अपने पहाडी किले में अपने साथियों के साथ जिन्दगी बसर करता रहा। इधर इन्ही पहाड़ियो में राणा प्रताप ने कुदरत के नजारों से जीवन का सबक लिया। शेरों से मर्दानगी का तो पहाड़ों से अपने इरादों पर अटल रहने का। बाप के मरने तक उसे सिर्फ सैर और शिकार से ही मतलब था। हाँ, अपने देश की बर्बादी, अपने समकालीन हिन्दू राजे-महाराजे की कायरता, मुगल बादशाहों की जोर जबरदस्ती और मेवाड खानदान के साहसी कारनामों ने उसके स्वाभिमानी और जोश भरे दिल को टहोके दे-देकर उभार रक्खा था।

बाप के मरने के बाद जब वह गद्दी पर बैठा तो मेवाड की शानदार सल्तनत का केवल नाम मात्र बाकी रह गया था। न कोई राजधानी थी, न खजाना और न फौज। जो इनके मित्र मददगार थे बराबर हारने और नुकसान उठाने के कारण हिम्मत हार बैठे थे। प्रताप ने आते ही उनके दबे हुए हौसले को उभारा, सुलगती आग को दहकाया और उन्हें चित्तौड़ की तबाही और खून-खराबे का बदला लेने के लिये आमादा किया। उसका स्वाभिमानी हृदय कब इस बात को सहन कर सकता था कि जो जगह इसके नामवर बाप दादों के रहने की जगह रही हो, जिसके दरो-दीवार उनके खून से रंगे हों, जिसकी हिफाजत करने को कौम ने अपनी जानें दी हों, वह दुश्मन के कब्जे में रहे और उनके बेअदब पैरों से रौंदी जाय। उन्होंने अपने साथियों, सरदारों और आने वाली नस्लों को कसम दिलायी कि जब तक तुम्हारा चित्तौड़ पर कब्जा न हो जाय तुम किसी ऐश या दिखावे से दूर रहो। तुम क्या मुँह लेकर सोने चाँदी के बर्तनों में खाओगे और मखमली गद्दों पर सोओगे जब कि तुम्हारे बाप दादों का मुल्क दुश्मनों के कब्जे में बिलख रहा हो। तुम क्या मुँह लेकर अपनी फौज के आगे नक्कारे बजाते और अपनी कौम का निशान बुलन्द किये निकलोगे जबकि वह जगह जहाँ तुम्हारे बाप दादों की नालें गड़ी हैं और जो उनके कारनामों की जिन्दा यादगार हैं—दुश्मनों के कदमों से रौंदी जा रही हों। तुम क्षत्रिय हो तुम्हारे खून में जोश है तुम कसम खाओ कि जब तक चित्तौड पर कब्जा न

कर लोगे हरे पत्तल में खाओगे, बोरे पर सोओगे और फौज के पीछे नक्कारा रक्खोगे क्योंकि तुम मातम मना रहे हो और ये बातें सदा तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि अभी तुम्हें एक जबरदस्त कौमी फर्ज अदा करना है। राणा जब तक जिन्दा रहा इन पाबन्दियों को निभाता रहा और उसके बाद उसकी जगह पर बैठने वाले इसकी पाबन्दी करते रहे और अभी तक यही रस्म चली आ रही है। फ़र्क अब यह है कि पहले उस रस्म के कुछ मायने थे और अब वह बिलकुल बेमानी हो गये हैं। ऐश पसन्दों ने इसके निकास की सूरतें निकाल ली है। तब भी जब वे सोने के बर्तनों मे खाते है तो उस कसम की यादगार में चन्द पत्ते ऊपर से रख लेते हैं। मखमल के गद्दे पर सोते है तो इधर उधर पुआल के टुकड़े फैला देते है।

राणा ने इतने पर ही सन्तोष नहीं किया। उसने उदयपुर को छोडा और कुंभलमेर को अपनी राजधानी बनाया। अनावश्यक और बेजा खर्च जो केवल नाम के बडप्पन के लिये किये जाते थे, बन्द कर दिये। जागीरें नयी शर्तो पर दी और मेवाड़ की तमाम जमीनें जहाँ से किसी दुश्मन के गुजरने का शक भी हो सकता था जो पहाड़ी दीवारों से बाहर मैदान में स्थित थीं, सपाट मैदान बना दिया। कुँए तक पटवा दिये गये औरसारी आबादी पहाड़ी के अन्दर ले ली गयी। सैकड़ों मीलों तक वीरानी और तबाही का डंका बजने लगा और सब इसलिये कि अगर अकबर उधर रुख करे तो उसे मैदाने-कर्बला का सामना करना पड़े। उस उपजाऊ मैदान में अनाज के बजाय लम्बी-लम्बी घास लहराने लगी। बबूल के काँटों से रास्ते बन्द हो गये और जगल में बसने वाले जानवरों ने उसे अपने रहने की जगह बना ली। मगर अकबर भी विश्वविजय की कला में कुशल था। उसने राजपूतों के तलवारों की काट देखी थी और खूब जानता था कि जब ये अपनी जाने बेचते हैं तो सस्ती नहीं बेचते। इस शेर को छेडने से पहले उसने मारवाड़ के राजा मालदेव को मिलाया। आम्बर का राजा भगवानदास और उसका बहादुर बेटा मानसिंह दोनों पहले ही अकबर से जा मिले थे। जब दूसरे राजाओं ने देखा कि ऐसे-ऐसे प्रतापी राजे अपनी जान की खैर मना रहे हैं तो वे भी एक-एक करके उनके दल में आ गये। इनमें कोई तो राणा का मामा था और कोई फूफा, यहाँ तक कि उसका अपना चचेरा भाई सागरजी भी उसके खिलाफ होकर अकबर से जा मिला। पर क्या ताज्जुब है कि जब राणा ने अपने मुकाबले में मुगलों की फौज में अपनी ही कौम के शूरमाओं और बहादुर घुड़सवारों को आते देखा, अपने ही भाइयों, अपने ही अजीज और रिश्तेदारों को अपने मुकाबले में तलवार लेकर खड़ा हुआ पाया तो उसकी तलवार जैसे थोडी देर के लिये ठिठक गई। जरा देर के लिये, जैसे वह खुद ही ठिठक गया हो और महाराज युधिष्ठिर की तरह पुकार उठा हो, 'क्या मैं अपने ही भाई बन्धुओं से लड़ने आया हूँ।' इसमें शक नहीं, इन भाई बन्धुओं से वह कई बार लड चुका था। राजस्थान का इतिहास ऐसी लडाइयों से भरा पडा है मगर ये लड़ाइयाँ उन्हें एक दूसरे से जुदा नहीं करतीं थी। दिन भर एक दूसरे के खून में नेजे तर करने के बाद शाम को फिर मिल बैठते और आपस में गले मिल जाते थे। मगर आज राणा को ऐसा मालूम हुआ कि ये भाई बन्धु हमसे हमेशा के

लिये बिछड़ गये हैं, वे सच्चे राजपूत नहीं रह गये। उनकी बेटियाँ और बहनें हरम सराय अकबरी में दाखिल हो गई। अफसोस! इन राजपूतों का खून ऐसा सर्द हो गया कि इनमे गैरत और कौमी प्रेम नाम भर को नहीं रह गया। क्या बदनामी और जगहँसाई का ख्याल उनके दिलों से बिलकुल उठ गया। हाय! अफसोस है कि वही राजपूत ललनाएं जो चित्तौड़ घिर जाने पर अपनी इज्जत बचाने के लिए जौहर करके जल मरी थीं वे आज अकबर के पहलू में हैं और खुश हैं। उनके म्यान से तलवार क्यों नही निकल पड़ती? उनके कलेजे क्यो नही फट पड़ते? उनकी आँखों से खून क्यों नही टपक पड़ता? अफसोस! कछवाहा वंश और पृथ्वीराज के कुल की यह दुर्दशा हो रही है।

प्रताप ने उन राजाओं से जिन्होंने उसकी नजरो में राजपूतो को इस हद तक जलील किया था अपना रिश्ता सदा के लिये तोड़ लिया। उनके साथ शादी ब्याह तो दरकिनार खाना-पीना भी जायज न समझा और जब तक मुगल बादशाह तख्त पर रहे तब तक खानदान उदयपुर ने न सिर्फ शाही खानदान से ऐसे सम्बन्ध न रक्खे बल्कि आम्बेर और मारवाड़ को भी बिरादरी से अलग कर दिया। हालाँकि उदयपुर अपने स्वाभिमान की बदौलत पतन और तबाही की ओर जा रहा था और दूसरे खानदान अपनी इज्जत बेचने की बदौलत तरक्की और ऐश आराम कर रहे थे। मगर सारे राजस्थान मे ऐसा कोई राज्य न था जिस पर उदयपुर के सम्मान का रोब न पड़ा हो या जो उसके कुल गौरव को न मानते हो। यहाँ तक कि राजा जयसिंह और राजा बख्तसिंह जैसे बड़े-बड़े राजाओं ने जब बड़ी नम्र आवाज में उदयपुर से पवित्र सम्बन्ध की विनती की तब उनकी दरख्वास्त इस शर्त के साथ मंजूर हुई कि खानदान उदयपुर की लड़की चाहे जिस खानदान मे ब्याही जाय मगर हमेशा उसी की औलाद तख्तनशीन होगी।

काश! राणा इस नफरत को अपने दिल ही तक रखता और उसे जुबान तक न आने देता तो उसे बहुत सी मुसीबतों का सामना न करना पड़ता। पर उसका बहादुर दिल दबना जानता ही न था। मानसिंह, शोलापुर से लड़ाई जीत कर आ रहा था कि राणा से भेंट करने कुंभलमेर चला आया। राणा उसकी अगवानी खुद करने गया और बड़े धूमधाम से उसकी दावत की। मगर खाने का समय आया तो राणा ने कहला भेजा कि उसके सिर में दर्द है। मानसिंह ताड़ गया कि उन्हें मेरे साथ बैठकर खाने में हिचकिचाहट है। झल्लाकर उठ खड़ा हुआ और बोला 'अगर मैंने तुम्हारा घमंड न चूर कर दिया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।' तब तक राणा वहाँ पहुँच गया था, बोला, 'तुम्हारा जब जी चाहे चले आना मुझे हरदम तैयार पाओगे।' मानसिंह ने आकर अकबर को उभारा। बारूद में आग लग गई। फौरन राणा पर हमला करने के लिये फौज की तैयारी का हुक्म हुआ। शहजादा सलीम को सिपहसालार नियुक्त किया गया और मानसिंह तथा महाबत खाँ सलाहकार नियुक्त हुए।

राणा भी अपने बाईस हजार शूरमाओं और बहादुर राजपूतों के साथ हल्दी घाटी के मैदान में जमा खड़ा था। ज्यों ही दोनों फौजें आमने-सामने हुई मानो कयामत आ गयी मानसिंह के साथियों का यह कहना था कि अपने सरदार की बेइज्जती का बदला

लेंगे। राणा के साथियों को यह दिखाना मंजूर था कि हम अपनी आजादी को जान से भी ज्यादा चाहते हैं। राणा ने बहुत चाहा कि मानसिंह से मुठभेड़ हो जाय तो जरा दिल के अरमान पूरे हो जायें मगर इस कोशिश में उन्हें कामयाबी न मिली। हाँ उनका घोड़ा संयोग से शहजादा सलीम के हाथी के सामने आ गया फिर क्या था राणा ने चट रकाब पर पैर रखकर अपना भाला चलाया जिससे महावत का काम तमाम कर दिया और चाहता था कि दूसरा तुला हुआ हाथ चलाकर अकबर का चिराग गुल कर दें कि हाथी भागा। शहजादे को खतरे में देखकर उसके सिपाही लपके और राणा को घेर लिया। राणा के राजपूतों ने देखा कि सरदार घिर गया तो उन्होंने जी तोड़कर हमला किया और उसे उस घेरे से निकाल लाये। फिर तो वह घमासान युद्ध हुआ कि खून की नदियाँ बह गई। राणा जख्मों से चूर-चूर हो रहा था। बदन से खून के फौव्वारे जारी थे मगर हाथ में तलवार लिये बिफरे हुए शेर की तरह मैदान में डटा खड़ा था। शत्रु उस,के छत्र को देख-देख अपनी पूरी ताकत से उसी स्थान पर धावा करते मगर राणा ने सिवाय कदम आगे बढाने के पीछे हटाने का काम न लिया। यहाँ तक कि तीन बार दुश्मनों के निशाने में आते-आते बच गया। मगर उस वक्त तक लड़ाई का रुख पलटने लगा। दिल की दिलेरी और हिम्मत के जोश का तोप और गोला बारूद से कब तक मुकाबला हो सकता था। सरदार झाला ने जब यह रंग देखा तो चट छत्र वाहक के हाथ से छत्र छीन लिया और उसे हाथ में लेकर एक पेचीदा स्थान पर चला गया। दुश्मन ने समझा कि राणा जा रहा है उसके पीछे लपके इधर राणा के साथियों ने मौका पाया तो उसे मैदान से जिन्दा सलामत बचा लाये। मगर झाला अपने डेढ़ सौ बहादुर सिपाहियों के साथ मारा गया और अपनी वफादारी और बहादुरी का हक अदा कर दिया। चौदह हजार बहादुर राजपूत हल्दीघाटी के मैदान को अपने खून से सींच गये जिसमें पाँच सौ से ज्यादा राणा के ही खानदान के राजकुमार थे।

मेवाड़ में जब इस हार की खबर पहुँची तो घर-घर कोहराम मच गया। ऐसा कोई खानदान न था जिसका एक न एक सपूत मौत के घाट न उतरा हो। हल्दीघाटी के नाम पर मेवाड़ का बच्चा-बच्चा आज तक गर्व करता है। भाट और कवीश्वर गलियों और सड़कों पर हल्दीघाटी का वाकया लोगों को सुना-सुनाकर रुलाते हैं और जब तक मेवाड़ में कोई कवीश्वर जिन्दा रहेगा, उसके दिल दहला देने वाले कवित्त करने वाले बने रहेंगे तब तक हल्दीघाटी की याददाश्त एकदम ताजा रहेगी।

इधर राणा अपने वफादार घोड़े चेतक पर सवार होकर अकेले निकल पड़ा। दो मुगल सरदारों ने उसे पहचान लिया। चट उसके पीछे घोड़े डाल दिये। अब आगे-आगे जख्मी राणा बढ़ा जा रहा है और उसके पीछे दोनों सरदार घोड़ा दबाये बढ़े आते हैं। चेतक भी अपने मालिक की तरह जख्मों से चूर है। वह हर बार जोर मारता है, कदम आगे बढ़ाता है मगर पीछा करने वाले नजदीक आते जाते है। अब उनके कदमों की आहट सुनाई देने लगी। अब वह पहुँच गये। राणा तलवार निकाल लेता है कि एकाएक उसे पीछे से कोई ललकारता है 'ओ नीले घोड़े के सवार" जबान और लहजा बिलकुल मेवाड़ी

है। राणा भौचक्का होकर पीछे देखता है तो उसका चचेरा भाई सकट चला आ रहा है।

सकट प्रताप से नाराज होकर अकबर के खैरख्वाहो मे जा मिला था। उस समय शहजादा सलीम के साथियों में था मगर जब उसने नीले घोड़े के सवार को अकेले और खून से रगे हुए मैदान से जाते देखा तो बिरादराना खून जोश मार गया। पुरानी शिकायते और दुश्मनी दिल से एकदम गायब हो गयी। फौरन पीछा करने वालों मे जा मिला और आखिर उनको अपने नेजे से खाक में मिलाता हुआ राणा तक पहुँच गया और उस समय अपनी जिन्दगी में पहली बार दोनों भाई बिरादराना जोश से गले लग गये। यहाँ वफादार चेतक ने दम तोड दिया। सकट ने अपना घोडा भाई के नजर किया। जब राणा चेतक के पीठ पर से जीन उतारकर नये घोडे की पीठ पर रख रहा था तो बिलख-बिलख कर रो रहा था। उसे अपने अजीज के मर जाने का भी ऐसा सदमा न हुआ था। क्या सिकन्दर का घोड़ा बसफ़ाला चेतक से ज्यादा वफादार था? उसके मालिक ने तो उसक नाम पर एक शहर बसा दिया था लेकिन राणा का बुरा समय था उसने सिर्फ आँसू बहाने पर ही सब्र किया। आज उस जगह पर एक टूटा-फूटा चबूतरा नजर आता है जो चेतक की वफादारी का गवाह है।

शहजादा सलीम जीत के गीत गाता हुआ पहाडियो से निकला। उस समय तक बरसात का मौसम शुरू हो गया था और चूँकि उन पहाड़ियों में मौसम के ख्याल से वह समय बर्दाश्त के बाहर का होता था इसलिए राणा को तीन चार महीने इत्मीनान रहा लेकिन बसन्त के शुरू होते ही दुश्मनों ने फिर धावा किया। महावत खाँ उदयपुर पर हुकूमत कर रहा था। कोका शाहबाज खाँ ने कुभलमेर को घेर लिया। राणा और उसके साथियों ने यहाँ भी हिम्मत और बहादुरी की कई मिसालें पेश की लेकिन घर के किसी भेदी ने जो अकबर से मिला हुआ था किले के अन्दर कुएँ में जहर मिला दिया और राणा को महज इसके कि वहाँ से निकल जाय कोई और सूरत न नजर आई। हालाँकि उसके एक सरदार ने जिसका नाम भान था, मरते दम तक किले को दुश्मनों से बचाये रक्खा लेकिन उसके मारे जाने पर यह किला भी दुश्मनों के कब्जे में चला गया।

कुंभलमेर पर कब्जा कर लेने के बाद राजा मानसिंह ने धुरमेती और गोलकुंडा के किलों को जा घेरा। एक और सरदार अब्दुल्ला दक्षिण से बढा। फरीद खाँ ने पश्चिम से हमला किया। इस तरह चारों तरफ से घिर कर प्रताप के लिये समर्पण करने के सिवाय और दूसरा कोई चारा न रहा। मगर वह शेरदिल राजपूत उसी दमखम, उसी हौसले और दृढ़ता से अब तक दुश्मनों का सामना करता रहा। कभी दिन दहाड़े, कभी अंधेरी रात मे जबकि शाही फौज बेखबर सोती रहती वह अपने ठिकानों से निकल पडता, इशारों से अपने साथियों को इकट्ठा करता और जो शाही फौज नजदीक होती उस पर चढ़ बैठता। फरीद खाँ को जो राणा को गिरफ्तार करने के लिये जजीर बनवाये बैठा था उसने ऐसी होशियारी से घाटी में एक जगह पर घेरा कि उसकी सेना का एक आदमी भी जिन्दा न बचा। आखिर शाही फौज इस किस्म की लडाई से तग आ गई। मैदानों पर लड़ने वाले मुगल पहाड में लडना क्या जाने और उस पर भी जब बारिश हो जाती तो चौतरफा

जान लेवा मर्ज फैल जाता। ये बारिश के दिन प्रताप के लिए जरा दम लेने के दिन थे। इसी तरह कई बरस बीत गये। प्रताप के कुछ साथी तो लड़कर मरे, कुछ ऐसे ही मर खप गये और कुछ जो जरा बोदे थे इधर-उधर दुबक रहे। रसद और खुराक के लाले पड़ गये। प्रताप को हमेशा यह खटका बना रहता कि कही हमारे लड़के बच्चे दुश्मनों के पंजे में न फँस जाय। एक बार वहाँ के जगली भीलो ने उनको शाही फौज से बचाया। उन्होंने उन्हें टोकरे में रखकर जावरा की खानों में छिपा दिया जहाँ उनकी हर तरह से हिफाजत और निगरानी करते रहे। अभी तक वे बल्ले और जंजीरें मौजूद है जिनमें ये टोकरे लटकाये जाते थे ताकि लड़के दरिन्दों से बचे रह सकें। ऐसी-ऐसी सख्तियां झेलने पर भी उसकी हिम्मत कही से भी नहीं डगमगायी। अब भी वह किसी पहाड़ की दरार में अपने कुछ जान देने वाले आजमाये हुए साथियों के साथ उसी शान-शौकत से बैठता था जैसे तख्तशाही पर बैठता था। उनसे उसी बादशाही रोब-दाब से पेश आता था। ज्योनार के वक्त खास-खास आदमियों को पत्तल दिया करता था हालाकि ये दोने महज जगली फलों के होते थे मगर बड़े अदब और प्रेम से लिये जाते थे माथे पर चढ़ाये जाते और प्रसाद के तौर पर खाये जाते थे। इस लोह की सी दृढ़ता ने राणा को राजस्थान के तमाम राजाओं की निगाह में महान आदर्श वीर बना दिया। जो लोग दरबार अकबर में ऊँचे ओहदे पा गये थे वह भी अब राणा के नाम पर गर्व करने लगे। अकबर भी जो खुद स्वभाव से साहसी और जवाँ मर्द था, अपने दुश्मन की इज्जत करना जानता था, अपने सरदारों से प्रताप को हिम्मत और हौसले की तारीफ करता था। दरबारी कवि उसकी शान में कविन कहने लगे और अब्दुर रहीम खानखाना ने जो हिन्दी भाषा के निहायत अच्छे और नाजुक ख्याल शायर थे मेवाड़ी जबान मे उनकी बहादुरी की तारीफें कीं। क्या खूब। कैसे दरियादिल लोग थे कि दुश्मन की बहादुरी को सराह कर उसका दिल बढ़ाते और हौसला उभारते थे।

लेकिन कभी-कभी ऐसे भी मौके आ जाते कि अपने प्यारे बच्चों की मुसीबते उससे न देखी जाती। इस समय उसके हौसले पस्त हो जाते और अपने सीने में छुरी मार लेने को जी चाहता। शाही फौज उसकी घात मे ऐसी लगी रहती थी कि पका हुआ खाना खाने की नौबत न आती थी। खाना खाने के लिए हाथ मुँह धो रहे हैं कि जासूस ने खबर दी कि शाही फौज आ गई और उसी वक्त सब छोडछाड भागे। एक दिन वह एक पहाड़ के दर्रे में लेटा हुआ था। रानी और उसकी पुत्रवधू कद मूल की रोटियाँ पका रही थी। बच्चे खाना पाने की खुशी में कुलेलें करते फिरते थे। आज पाँच फाके हो चुके थे। राणा न मालूम किस ख्यालात में डूबा बच्चों की इन हरकतों को हसरत भरी निगाहों से देख रहा था। अफसोस। ये वो बच्चे हैं जिनको मखमली गद्दों पर नीद न आती थी, जो जमाने की न्यामतों की तरफ आँख उठाकर न देखते थे, जिनको अपने बेगाने गोद की बजाय सिर आँखों पर बिठाते थे, आज उनकी यह हालत है कि कोई बात नही पूछता, कपड़े न लत्ते, कंद मूल की रोटियों की उम्मीद पर खुश हो रहे हैं और उछल कूद रहे हैं वह इन्हीं अफसोसनाक में डूबा हुआ था कि एकाएक अपनी प्यारी

बेटी की चीख ने उसे चौंका दिया। देखता है कि जंगली बिल्ली उसके हाथ से रोटी छीने लिये जाती है, वह बेचारी बड़ी दर्दनाक आवाज में रो रही है। हाय गरीत्र! क्या न रोये? आज पाँच फाकों के बाद आधी रोटी मिली थी। फिर नहीं मालूम कै कड़ाके गुजरेंगे। यह देखकर राणा की आँखों में आँसू उमड़ आये। उसने अपने जवान-जवान बेटों को युद्ध के मैदान में दम तोड़ते देखा था। मगर कभी उसके दिल में बेबसी नहीं हुई थी। कभी आँखों में आँसू न आये थे। इसलिए कि मरना तो राजपूतों का धर्म है। इस पर कोई राजपूत क्यों आँसू बहाये? लेकिन आज लड़की के रोने ने उसे बेबस कर दिया। आज एक पल के लिये उसका साहस हिल गया। आज जरा देर के लिये इन्सानी कमजोरी ने उसके साहस को डिगा दिया। सहृदय लोग जितने दिलेर, बहादुर और हिम्मती होते हैं उतने ही दिल के प्रेमी और कोमल होते हैं। नेपोलियन बोनापार्ट ने हजारों आदमियों को मरते देखा था और हजारों को अपने ही हाथो से खाक पर सुला दिया था मगर एक भूखे, कमजोर और मरियल कुत्ते को अपने मालिक की बेजान लाश के इधर-उधर मंडराते देखकर उसकी आँखें आँसुओं के बाँध को न रोक पायी थीं। राणा ने लड़की को गोद में ले लिया और बोला, 'लानत है मुझ पर कि मैं महज नाम की बादशाहत के लिये अपने प्यारे बच्चों को ऐसी तकलीफें दे रहा हूँ।' अकबर के पास लिखकर भेजा कि अब तकलीफें बर्दाश्त नहीं की जातीं। कुछ मेरे हाल पर नजरे करम कीजिए।

अकबर के पास जब यह पैगाम पहुँचा तो गोया कि कोई न्यामत हाथ लग गयी। खुशी से वह फूला न समाया। राणा का खत अपने दरबार में लोगों को बड़े गर्व से दिखाने लगा। मगर बहुत कम लोग दरबार में ऐसे होंगे जो ऐसे आत्मसम्मानी आदमी को न पहचानते हों और जिन्होंने राणा के आत्मसमर्पण की खबर खुशी से सुनी हो। महाराज अगर अकबर की दरबारी करते भी थे तो यह कौमी हमदर्दी का तकाजा था और राणा की महानता। सभी के दिलो में जड़ जमाये थी। उनको इस बात का फख्र था कि हालाँकि हमने आत्मसमर्पण कर दिया है मगर हमारा एक भाई अभी तक बादशाहत को चुनौती दे रहा है और क्या ताज्जुब है कि कभी-कभी उनके दिलो में ऐसी आसानी से किये गये आत्मसमर्पण पर शर्म भी आती हो। इनमें महाराज बीकानेर का छोटा भाई पृथ्वीसिंह था जो बड़ा बहादुर, तलवार का धनी और शेरदिल था और शायद राणा के लिये उसके दिल में सच्ची इज्जत थी। उसने जो यह खबर सुनी तो यकीन नहीं हुआ मगर राणा की चिट्ठी देखी तो सख्त अफसोस हुआ। खानखाना की तरह वह न सिर्फ तलवार का धनी था बल्कि बहुत अच्छा कवि भी था और मर्दाना जजबात से भी कविता करता था। उसने अकबर से राणा की सेवा में एक खत भेजने की इजाजत चाही। इस बहाने से कि मैं उनके आत्मसमर्पण की बात पक्की कर लूँ मगर उस खत में उसने अपना दिल निकाल कर रख दिया। ऐसे मर्दाना जोश भरे, हौसला बढ़ाने वाले कवित्त कहे कि राणा के दिल पर जादू का काम कर गया। उसके दबे हुए हौसले ने फिर सिर उठाया। आजादी के जोश ने फिर दिल में हलचल पैदा की और आत्मसमर्पण का ख्याल काफूर हो गया।

मगर इस बार उसके इरादे ने दूसरा तरीका अख्तियार किया हारने और

नाकामयाब होने से उसने साबित कर दिया कि इकबाल अकबरी की विशाल फौज को गिने गिनाये साथियों और जंग लगे हथियारों से रोकना मुश्किल ही नही, गैरमुमकिन है। लिहाजा क्यों न इस मुल्क को जहाँ से आजादी हमेशा के लिए चली गई है, छोड़ दूँ, और ऐसे मुकाम पर सिसोदिया खानदान का झंडा गाड़ूँ जहाँ उसके झुकने का कोई खटका न हो। बहुत सोचने के बाद यह सलाह तय पाई कि अंघल नदी के किनारे जहाँ पहुँचने के लिए दुश्मन को रेगिस्तान तय करना पड़ेगा नया राज्य कायम किया जाय।

कैसा उदार दिल और कितना साहस कि इतनी हार पर भी ऐसे बुलन्द इरादे पैदा होते थे। यह पक्का इरादा करके वह अपने बाल बच्चो और बचे-खुचे साथियों के साथ इस जग पर चल पड़ा और अरावली के पश्चिम किनारे को पार करता हुआ रेगिस्तान के किनारे तक जा पहुँचा। मगर इसी दौरान ऐसा मुबारक वाकया हो गया जिसने उसके इरादे पलट दिये और अपने प्यारे देश मे लौटने की प्रेरणा दी।

राजस्थान का इतिहास न केवल सरफरोशी और जॉबाजी के किस्सों से भरा हुआ है बल्कि इसमें स्वामिभक्ति, वफादारी और एतबार के भी गर्व करने के काबिल किस्से उसी तरह मौजूद है। भामाशाह ने जिसके बाप दादे चित्तौड़ के वजीर रहे थे, जब अपने मालिक को देश छोड़ते देखा तो नमकख्वारी का जोश उमड़ आया। हाथ बाँधकर राणा की खिदमद में हाजिर हुआ और बोला 'महाराज, मै पुश्तों से आपका नमकख्वार हूँ। मेरे पास जो भी है आपका दिया है, मेरा शरीर भी आपका ही पाला हुआ है। क्या मेरे जीते जी आप अपने प्यारे देश को हमेशा के लिए त्याग देंगे?' यह कहकर उस वफा की मूर्ति ने अपने खजाने की चाभी राणा के कदमों पर रख दी। कहते हैं इस खजाने में इतनी दौलत थी कि उसको खर्च करने में पचीस हजार आदमी बारह साल तक खुशहाली मे जिन्दगी बसर कर सकते थे। यह जरूरी है कि आज जहाँ राणा प्रताप के नाम पर श्रद्धा के फूल चढाये जाये वहाँ भामाशाह के नाम पर भी चन्द फूल डाल दिये जायें। कुछ तो इतने अधिक दौलत ने और कुछ पृथ्वी सिह के जोशीले कवित्त ने राणा के डगमगाये कदम को सम्हाला। उसने अपने साथियों को जो इधर-उधर बिखर गये थे झटपट फिर जमा कर लिया। दुश्मन तो बेफिक्र होकर बैठे थे कि यह बला अरावली के उस पार रेगिस्तानों में सर मार रही होगी कि राणा अपने बहादुरों के साथ शेर की तरह टूट पडा और कोका शहबाज खाँ को जो दोयर के मुकाम पर फौज को ले बेखबर पड़ा था जा घेरा और दम के दम पर सारी फौज खाक मे मिला दी। दुश्मन पूरी तौर पर चौकन्ना न होने पाया था कि राणा कुंभलमेर पर जा धमका और अब्दुल्ला और उसकी फौज को तलवार के घाट उतार दिया और जब तक दरबार शाही तक खबर पहुँचे राणा का झडा बत्तीस किलों पर लहरा रहा था। साल भर भी न गुजरने पाया था कि उसने अपने हाथों से गयी सल्तनत वापस ले ली। सिर्फ चित्तौड़, अजमेर और मंडलगढ़ पर कब्जा न हो सका। इसी अचानक हमले में उसने राजा मानसिंह को थोड़ा झटका दिया। आम्बर पर चढ दौडा और वहाँ की मशहूर मंडी मालपुरा को लूट लिया।

अब ख्याल यह पैदा होता है कि अकबर ने राणा को क्यों इत्मीनान से बैठने

दिया? उसकी ताकत अब पहले के मुकाबले मे बहुत ज्यादा हो गई थी। उसकी सल्तनत का हिस्सा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था जिस तरफ रुख करता उधर जीत हाथ बाँध कर सामने खडी होती। उनके उमरों में एक से एक अनुभवी युद्ध विशारद मौजूद थे। ऐसी हालत मे वह क्यो राणा की ज्यादतियो को खामोशी से देखते रहे? शायद इसका कारण यह हो कि वह उन दिनो दूसरे मुल्कों को फतेह करने में उलझा हुआ था या अपने दरबार को राणा का हमदर्द पाकर उसने उसे फिर छेड़ने की हिम्मत न की। बहरहाल उसने तय कर लिया कि राणा को उन पहाडियों मे चुपचाप रहने दिया जाय। मगर उसके साथ ही यह निगाह रखी जाय कि वह मैदान की तरफ न बढ सके। अगर राणा के बजाय कोई दूसरा शख्स होता तो इस आराम और सुकून को हजार गनीमत समझता और इतनी तकलीफों को झेलने के बाद इस आराम को भगवान की छिपी हुई मदद समझता।

मगर बहादुर और इरादे के पक्के राणा का चैन कहाँ? जब तक वह अकबर से भागा करता था, जब तक अकबर उसकी तलाश मे जंगल व पहाड़ों से सर टकराता फिरता था, उस समय तक राणा के दिल को तसल्ली थी, जब तक अकबर की ये फिक्र उसकी आत्मा के लिए रेती बनी हुई थी तब तक राणा सतुष्ट था। वह सच्चा राजपूत था। वह दुश्मन का गुस्सा, कहर और यहाँ तक कि नफरत को भी बर्दाश्त कर सकता था मगर उसका दिल इसको कभी गवारा नही कर सकता था कि कोई उसको रहम से देखे या उस पर तरस खाये। उसका स्वाभिमानी दिल कभी इस ख्याल को बर्दाश्त नही कर सकता था।

जो दिल अपनी कौम की आजादी पर बिका हुआ हो उसे पहाडी मे बन्द होकर हुकूमत करने में कैसे तसल्ली हो सकती थी? वह कभी-कभी पहाड़ों से बाहर निकलकर उदयपुर और चित्तौड़ की तरफ हसरत भरी आशिकाना निगाहो से देखता था कि अफसोस अब ये मेरे कब्जे में न आयेगे। क्या ये पहाड़ियाँ मेरी उम्मीदों की सीमा हैं? अक्सर वह अकेले पैदल या पहाड़ के दरों मे बैठकर घंटों सोचा करता, उसके दिल में उस समय आजादी के जोश का समुन्दर लहरें मारता, आँखें लाल हो जाती, रग फड़कने लगती वह अपनी कल्पना की निगाहो से दुश्मन को आते देखता फिर खुद अपनी तलवार निकालकर लड़ाई के लिये आमादा हो जाता फिर सोचता, हाँ क्या मै बप्पा रावल के खानदान से हूँ? राणा सांगा मेरा दादा था? मैं उसका पोता हूँ? वीर जगमल मेरा एक सरदार था? देखो तो अपना यह केसरिया झडा कहाँ-कहाँ गाडता हूँ। अगर पृथ्वीराज की तख्त पर झंडा न गाड़ दूँ, तो मेरे जीवन को धिक्कार है।

ये ख्यालात, ये मंसूबे, यह आजादी की तमन्ना, यह जलन हमेशा उसकी रूह को जलाती रहती थी और आखिर में इस छिपी हुई आग ने वक्त के पहले ही उसे मौत की गोद में सुला दिया। उसके गेंडे के से मजबूत हाथ पाँव, शेर का सा बेखौफ दिल भी इस आग की जलन को बहुत अर्से तक न बर्दाश्त कर सका। आखिरी वक्त तक मुल्क की आजादी और कौम का ख्याल उसे बना रहा मरते वक्त उसके सरदार जिन्होंने

शोक में डूबे हृदय से खड़े थे। राणा की टकटकी दीवार की तरफ लगी हुई थी और उसे कोई ख्याल बेचैन करता हुआ मालूम होता था। एक सरदार ने कहा—'महाराज राम नाम लीजिए।' राणा ने मृत्यु की यंत्रणा से कराह कर कहा—'मेरी आत्मा को तब चैन होगा जब तुम लोग अपनी-अपनी तलवारें हाथ मे लेकर कसम खाओगे कि हमारा यह प्यारा मुल्क तुर्कों के कब्जे मे न जायेगा। तुम्हारी रगों में जब तक एक-एक कतरा खून बाकी रहेगा तुम इसे तुर्कों से बचाते रहोगे और बेटा अमरसिंह तुमसे खास तौर पर गुजारिश है कि तुम अपने बाप दादों के नाम पर धब्बा मत लगाना और अपनी आजादी को अपनी जान से ज्यादा अजीज समझते रहना। मुझे डर है कि ऐशपरस्ती और आरामतलबी तुम्हारे दिल पर न छा जाये और तुम मेवाड की आजादी को हाथ से न धो दो जिसके लिए मेवाड के वीरो ने अपने खून बहाये है।' जो लोग वहाँ मौजूद थे एक स्वर से कसम खायें कि जब तक हमारे दम मे दम है बुरी निगाहों से हमेशा मेवाड़ की आजादी को बचाते रहेंगे। प्रताप को तसल्ली हो गयी और सरदारों को रोता बिलखता छोड उनकी रूह इस पार्थिव शरीर को छोड गई गोया कि मौत ने उसे अपने सरदारों से यह कसम लेने की मोहलत दे रखी हो।

इस तरह उस शेरदिल राजपूत की जिन्दगी तमाम हुई जिसकी जीतों के कारनामे, जिसकी मुसीबत की दास्तानें मेवाड के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। जो इस काबिल है कि इसके नाम पर मन्दिर और शिवाले गाँव-गाँवऔर कस्बों-कस्बों में बनवाये जाये और इसमें आजादी की देवी की पूजा की जाय। लोग जब इन मन्दिरों में जायें तो आजादी का नाम लेते हुए जायँ और वहाँ इस राजपूत के जीवन की कहानी से आजादी की सच्ची सीख लें।

राजा टोडरमल

यों तो अकबर का दरबार आला दर्जे के विद्वानों और बाकमालों का गढ़ था मगर इतिहास के पन्ने पर जिस आबो-ताब के साथ टोडरमल का नाम चमका और सियासत की नीतियों और बन्दोबस्त की जो यादगारें इनके नाम से जुड़ी हैं वह उनके समकालीनों से किसी और को प्राप्त न हुई। खानखाना, खानजमाँ और खानआजम की जानलेवा तलवारों ने अकबरी संसार में तूफान मचा रक्खा था मगर वे बिजलियां थीं एकाएक कौंधी और फिर नजरो से ओझल हो गई। अबुल फजल और फैजी की जी तोड़ कोशिश ऐसी थी कि ज्ञान के जिज्ञासु आज भी उनसे सबक ले सकते हैं। मगर टोडरमल की अमर यादगारें सियासत की वे नीतियां है जो बावजूद इसके कि दुनिया इतनी तरक्की कर गई है आज भी फ़ख्र से देखी जाती और आदर से अमल की जाती हैं। न तो जमाने की रौ ने और न ही हुकूमत के बदलाव ने उनकी नीतियों को बदलने या छोड़ने की हिम्मत की।

टोडरमल जाति के खत्री और कतनान गोत्री थे। उनके वतन के सम्बन्ध में मतभेद है लेकिन 'एशियाटिक सोसाइटी' की नई खोजों से यह तय हुआ है कि मौजा लाहरपुर इलाका अवध को इनका वतन होने का गौरव प्राप्त है। माता-पिता बहुत गरीब थे और उस पर और मुसीबत यह आ पड़ी कि अभी टोडरमल के हाथ पाँव भी न सम्हलने पाये थे कि पिता का साया सिर से उठ गया। विधवा माता ने न जाने कितनी कठिनाइयों से इस होनहार बच्चे को पाला-पोसा। मगर खुदा की मेहरबानी देखिये कि यही यतीम और नादान बच्चा शहंशाह अकबर का वज़ीर आज़म हुआ जिसकी धाक सारे हिन्दुस्तान पर जमी हुई थी। दुनिया मे बहुत कम ऐसी माताएं होंगी जिनके लड़के इतने सपूत निकले होंगे और खुदा के दरबार में लाख फरियाद करने पर भी बहुत कम की ही ख्वाहिशें पूरी हुई होगी।

उस जमाने में जब शिक्षा बहुत ऊँचे खानदान के लोगों तक ही सीमित थी और आज की विद्यार्जन की सुविधाओं का नाम भी न था, उस गरीब बच्चे की क्या पढ़ाई होती। वह स्वभाव से ही जहीन, मेहनती और शिष्ट लड़का था और ये आदतें उम्र के साथ पक्की होती गयीं। अभी बालिग भी न होने पाया था कि रोटी की जरूरत ने घर से बाहर निकाला शेरशाह सूरी उस समय भारत का भाग्य विधाता हो रहा था उसका

की जगह मिल गई लेकिन प्रतिभा और स्वाभाविक गुण कब तक छिपे रहते? अपनी काबलियत और मेहनत की बदौलत वह हमेशा आगे-आगे रहता और जल्दी ही दफ्तर के कई विभाग उसके अधीन हो गये। चूँकि उसे शुरू से ही पढ़ने और तहकीकात करने का शौक था इसलिए बहुत जल्द दफ्तर के कायदे कानून और सारी बातो से पूरी तरह वाकिफ हो गया। इसी बीच समय ने करवट बदली। सूरी खानदान के बुरे दिन आये और हुमायूँ के भाग्य जागे। मगर वह भी चन्द दिनो में स्वर्ग सिधार गया और अकबर बादशाह हो गया। वह आदमी का पारखी था। एक ही नजर मे ताड़ गया कि यह नौजवान मुशी एक दिन जरूर नाम कमायेगा। इसे अपनी सियासत मे शामिल कर लिया औ" अपने दरबार में रहने का हुक्म दिया।

मगर अकबर का दरबार वह गुलशन न था जिसमें कोई अदना सिपाही या मुशी शोहरत और इज्जत के फूल चुन सकता था। टोडरमल अब तक कलम का जौहर दिखाता रहा था मगर 1565 ई० में जरूरत हुई कि वह यह दिखलाये कि वह किस हिम्मत, मर्दानगी और दम खम का सिपाही है?

उन दिनो हुसैन कुली खाँ और खाँ जमाँ ने फसाद पर कमर कस ली थी। वह अपने जमाने का निहायत मशहूर, काबिल और शेरदिल सिपाही था और कई बार अपनी बहादुरी का सबूत भी दे चुका था। खुद तो बिहार और जौनपुर के सूबे दबाये बैठा था और अपने छोटे भाई बहादुर खाँ को जो दिलेरी में इसके टक्कर का था, अवध की ओर रवाना किया। अकबर ने मीर मुइज्जुलमुल्क को भेजा कि बहादुर खॉ को गिरफ्तार करके दरबार में हाजिर करे। मगर जनाब से कोई काम बनते न देखकर टोडरमल को भेजा कि गुस्ताख नमकहरामों को सबक सिखाये और अनुशासन से सफल न हो तो उनको किसी प्रकार लानत देकर सामने पेश करें। टोडरमल फौरन इस मुहिम पर रवाना हुआ। मगर मुकाबला इतना कड़ा था और मीर मुईज्जुलमुल्क जो वहाँ का सिपहसालार था इतना नालायक था कि उसकी शाही फौज को पीछे हटना पडा। हाँ टोडरमल को शाबासी है कि वह मैदान से न हटा और हार में भी गोया उसकी जीत ही रही। अकबर ने पहली बार इम्तेहान लिया था उसमें पूरा उतरा फिर तो इसकी कलम की तरह इसकी तलवार भी जौहर दिखाने लगी और जिस मुहिम पर जाता खुशकिस्मती से कामयाबी का सेहरा पहनता और इज्जत और बहादुरी की जयमाल गले मे पड़ती। चित्तौड़ रणथम्भौर और सूरत की मुहिम में उसने अपना लोहा मनवा दिया। उसकी गिनती उस समय के वफादार सिपहसालारो में होने लगी।

मगर सबसे बड़ी लड़ाई जिसने इसकी जाँबाजी का सिक्का बिठा दिया और जिसमें उसने अपनी जिन्दगी के सात साल लगाये वह थी बंगाल की लड़ाई। 1567 ई० में खानजमाँ अपना कार्यकाल पूरा होने पर अपने पद से नीचे उतरा और मुनइम खाँ खानखाना उसकी जगह सेनापति बन गया। मगर कुछ तो खानखाना खुद ही सुलह पसन्द था और कुछ बंगाल के अफगान बडे झगडालू थे। लडाई ने तूल खींचा आखिर शाही मुलाजिमों की आठों पहर की दौड़ धूप और दवा दारू से नाक में दम आ गया, जी चुराने लगा, अकबर

को इन तमाम माजरों की खबर गुप्त रूप से मिलती रहती थी। इरादा हुआ कि इस वक्त किसी ऐसे हिम्मत वाले आदमी को बगाल में भेजा जाय जो अपने सिपाहियों को कायदे के शिकजे में जकड़कर उनकी रगें ढीली कर दे। ऐसा शख्स सिवा टोडरमल के कोई और नज़र न आया। चुनान्चे राजा टोडरमल कुछ नामी बहादुर दिलावरों के साथ बंगाल को चला।

बगाल मे राजा टोडरमल ने वो काम किये जिससे इतिहास के पन्ने सदा चमकते रहेंगे और यह उसी की काबलियत थी कि उसने सारे बगाल मे अकबर के नाम की धूम मचा दी। उसके एक हाथ मे तलवार थी दूसरे मे तेगा। दुनिया भर के कामों से उसे फुर्सत न थी। कहीं तो वह बहादुरी में जौहर दिखाता, कहीं कागजी घोडे दौड़ाता। जग की जगह जहाॅ जम जाता वहाॅ से हटना नहीं जानता। सिपाहियों को ऐसा बढ़ाता है ऐसा ललकारता कि हारी हुई लडाई जीत लेता। यह इसी का गुर्दा है कि तुर्क और तातारी सिपाहियों को, गद्दारी जिनकी घुट्टी में पड़ी है कही दोस्ताना तरीके मे, कहीं भय दिखाकर और कही लालच से काबू में रखता। इसकी बराबर होती हुई जीत ने अफगानों के छक्के छुडा दिये। दाऊद खाँ आखिरी बार अपने दिल के अरमान निकालकर भाग गया। सूबा बगाल पर अकबरी झडा लहराने लगा और टोडरमल जीत के नगाड़े बजाता शोहरत के घोडे पर सवार अपनी राजधानी लोटा और वजीर की गद्दी सम्भाल ली। उसे मोतमिदुद्दौला का खिताब मिला और नगाड़े और झंडे ने उसकी और भी इज्जत और शोहरत बढ़ाई।

इसी दरम्यान खबर पहुँची कि वजीर खाँ की बदइन्तजामी से गुजरात मे गडबडी मच रही है। टोडरमल को फोरन हुक्म हुआ कि वहाँ जाकर मामला सुधारे। राजा साहब रवाना हुए और वहाँ पहुँचकर माल महकमे आदि का मुआयना करने लगे। इतने ही मे यह शगूफा निकला कि गुजरात के चन्द फसादियों ने बगावत कर दी। वजीर खाँ की हिम्मत टूट गई। किला बन्द कर लिया और आदमी दौडाया कि टोडरमल को खबर करें। राजा को इतना सब्र कहाँ कि ऐसी भयानक और मनहूस खबर सुने। दम भर मे बागियों पर हमला कर दिया और वजीर खाॅ को किले के बाहर निकाला और दुश्मनों को दोलका के तंग मैदान में घेर लिया और वहाॅ खूब घमासान जंग हुआ। दुश्मनों की नीयत थी कि राजा को ठिकाने लगा दे, पहले ही से घात लगाये बैठे थे। मगर राजा की शेराना ललकार और बिजली की चमक की तरह कौंधने वाली तलवार ने उनका ताना बाना तोड डाला और इस लड़ाई मे कामयाबी हासिल कर वह राजधानी लौटा। दरबार में उन्हें ऊँचा ओहदा दिया गया। मगर वह जमाना ही कुछ ऐसे वाकयों से भरा हुआ था और वफादार सेवकों की ऐसी कमी थी कि टोडरमल जैसे बहादुर और उत्साही सेवक के लिये चैन से बैठना मुमकिन नहीं था। गुजरात से लौटा ही था कि बगाल मे जोर-शोर से गुबार उठा। मगर अब की आँधी का रंग कुछ और ही था। सेना और सरदार सेनापति से बागी हो गये थे। अकबर ने टोडरमल को रवाना किया। इस बलवे को राजा ने ऐसी कुशल नीतियों और तदबीरों से शान्त किया कि किसी को कानोंकान खबर न हुई नहीं

लगाये बैठे थे कि इसी समय राजा का काम तमाम कर देंगे मगर वह भी एक ही सयाना था ऐसे लोगों के चगुल में कैसे फंस सकता था। साफ निकल गया।

1582 ई० में आगरे लौटा। अपनी वफादारी और सेवाओं के कारण वह राज्य का 'दीवाने माल' बना दिया गया और बाइस सूबों पर उसकी कलम दौड़ने लगी और उस वक्त से मरते दम तक टोडरमल को अपनी कलम का जौहर और सियासती काबलियत दिखाने का खूब मौका मिला। सिर्फ एक बार यूसुफजइयों की लड़ाई में राजा मानसिह को मदद को जाना पड़ा था।

हालाँकि राजा निहायत नेक और शरीफ किस्म का इन्सान था फिर भी 1589 ई० में किसी दुश्मन ने उस पर वार किया। खुशकिस्मती से राजा तो बाल-बाल बच गया लकिन इसका खामियाजा एक बदनसीब खत्री बच्चे को भुगतना पड़ा। ऐसा मालूम होता है कि इशारा किसी उमरा की ओर से किया गया था जो इससे दुश्मनी रखता था।

शायद यह हमला मौत ही का था क्योंकि उस हादसे के थोडे ही दिनों बाद राजा को दुनिया से उठ जाना पडा। 1594 ई० मे जालिम ने दूसरा हमला बुखार की सूरत में किया और अब की बार जान लेकर ही छोडा।

टोडरमल पर इतिहासकारों ने खूब कलम चलाई है। जिन लोगों का इनसे पूरी तौर से मतभेद है वे भी उनका नाम आदर से लेते हैं। वह अकबर के तमाम उमरों मे सबसे ज्यादा ईमानदार, वफादार और खैरख्वाह था। इसके अलावा और कोई ऐसा अमीर न था जिस पर बेवफाई और नमकहरामी का दाग न लगा हो। यही एक मर्द था जिसकी नेकनामी की चादर बगुले के पर की तरह साफ थी। इतिहासकारों की तंग नजर ने उस पर दाग लगाने की भरसक कोशिश जरूर की है मगर नाकाम रहे। उसकी कार-गुजारियों को बयान करना मानो अकबर के जमाने का इतिहास लिखना है। ऐसा कौन सा विभाग था—दीवानी, माल या सेना जिस पर टोडरमल की काबलियत और नीतियों की छाप न हो। पहले शाही फौज कोसों में फैली रहती थी, हाथीखाना कुछ यहाँ थे कुछ वहाँ, तोपखाने का कुछ हिस्सा इस सिरे पर था कुछ उस सिरे पर, मतलब यह कि सब चीजें बडी अस्त-व्यस्त पडी थी। टोडरमल की व्यवस्था पसन्द प्रकृति ने पैदल, घुडसवार, हथियार, रसद, बाजार, लश्कर वगैरह को सिलसिलेवार करने की व्यवस्था की। इसी सिलसिले में इनकी नीतियों के बारे मे भी विस्तार से जानना जरूरी है। पहले स्थायी फौजें न रक्खी जाती थी। उमरा को दरबार से शाही जागीरें मिल जाया करती थीं और उनको हुक्म था जब जरूरत हो अपनी मुकर्रर फौज को लेकर दरबार मे हाजिर हुआ करें। उमरा इसमें दाँव-पेंच निकालकर अपनी जेबें भरते थे। जाँच के वक्त हुकुम के अनुसार घोड़ों की सख्या इधर-उधर से माँग जाँच कर दिखा देते। जब यह बला सिर से टल जाती तो फिर वही तरीका अख्तियार कर लेते। टोडरमल ने इसका हल यह निकाला कि जाँच के वक्त घोडों पर निशान लगा दिया जाय ताकि आगे जालसाजी का कोई मौका न मिले।

सिकन्दर लोदी के जमाने तक हिन्दू अमूमन फारसी या अरबी नहीं पढते थे। इसे 'मलेच्छ विद्या' कहते थे राजा ने प्रस्ताव किया कि पूरे सूबे में फारसी सरकारी

भाषा हो जाय। पहले तो इस योजना से हिन्दू चौंके मगर टोडरमल ने इनके दिलों पर यह ख्याल अच्छी तरह जमा दिया कि शाही वक्त की भाषा रोजी रोटी का जरिया है। अगर ऊँचा ओहदा और इज्जत चाहते हो तो इस जबान को सीखकर पा सकते हो। अकबर ने भी सहारा दिया और चन्द सालों मे बहुत से हिन्दू फारसी जानने वाले और फारसी पढ़ने वाले बन गये। इस लिहाज से हम कह सकत है कि टोडरमल वह पहले व्यक्ति है जिन्होंने उर्दू भाषा की बुनियाद रक्खी क्योंकि उन्हीं की दूरदर्शिता का नतीजा है कि फारसी का चलन हिन्दुओं मे हो गया। फारसी शब्द मामूली घरेलू बोलचाल में इस्तेमाल होने लगी और इस तरह उर्दू की बुनियाद रेखता से मजबूत हो गई।

टोडरमल लेखा-जोखा के काम में अपने समय के सबसे काबिल व्यक्ति था। पहले शाही दफ्तरों में हिसाब बिगडा हुआ था कहो कागजात फारसी में थे कहीं हिन्दी में। टोडरमल ने इस बदइन्तजामी को कायदे कानून की बेडी में बाँधा। हालांकि इसमे ख्वाजाशाह मंसूर मुजफ्फर खाँ और आसिफ खाँ ने भी बड़े-बडे काम किये थे मगर टोडरमल की काबलियत और तजबीज के आगे उनकी कुछ वकत न रही। बहुत से नक्श और डॉक्यूमेन्ट के नमूने 'आईने-अकबरी' मे दर्ज हैं। आज भी उनकी खानापूरी का जाती है। यहाँ तक कि उनकी साकेनिक शब्दावली मे भी कोई तब्दीली नही हुई है। मगर सबसे ज्यादा तारीफ के काबिल और शानदार काम जो टोडरमल की यादगार है जिसका लोहा आज के जमाने के अर्थशास्त्री भी मानते है वह है इनका—मालगुजारी का बन्दोबस्त। विस्तार का भय होते हुए भी हम इसको सक्षेप में बताना जरूरी समझते है।

पहले मालगुजारी का इन्तजाम अन्दाज पर था। टोडरमल की तजबीज से कुल जमीन की नाप तौल की गई। पहले नाप रस्सी की होती थी जिससे तर और सूखी जमीन मे फर्क आ जाता था। इसलिए बाँस के लट्ठों के छल्ले डालकर जरीबे तैयार किये गये। तमाम जमीन गीली हो या सूखी, मय पहाड, बियावान, जगल, ऊसर और बजर के नाप डाली गयी। चन्द गाँवों का परगना, चन्द परगनों की सरकार और चन्द सरकारो का एक सूबा माना गया। बन्दोबस्त दस साल के लिये मुकर्रर किया गया। अब 30 साल का है।

कर का एक नियम यह मुकर्रर किया गया कि गल्ला जो वर्षा के जल से जमीन में पैदा होता हो आधा काश्तकार का और आधा बादशाह का। सिंचाई वाली जमीन के हर टुकड़े पर चौथाई खर्चे के लिये निकाल लिया और उसकी खरीद फरोख्त की लागत लगाकर गल्ले में एक तिहाई बादशाही। शक्कर, गुड़, अव्वल दर्जे के जिस कहे जाते है। पानी, निगरानी और कमाई आदि की मेहनत गल्ले वगैरह से ज्यादा खाते हैं प्रकार के अनुसार इन पर 1/4 1/5, 1/6, 1/7 हक बादशाही, बाकी हक काश्तकार का। इसका दस्तूर अमले आईन-ए-अकबरी में जिन्सवार लिखा हुआ है। समय के अनुसार हर काम को उसूल और योरप के पढ़-लिखे लोगों की तरह करने को टोडरमल ने भी अपना आदर्श बनाया। तमाम विभागों के कर्मचारी कठपुतली की तरह इनके इशारे पर काम करते थे मुमकिन न था कि अकबर जैसा पारखी इन गुणों की कद्र न करता बेशक इसकी

बंदिशें और पाबन्दियाँ उमरा के दिलो को जलाती थी। यही वजह है कि अकबर के जमाने के इतिहासकारों ने इसे बुरा और घमंडी बताया। मगर ध्यान रहे कि जो लोग बाकायदा और तरीके अख्तियार करते हैं वह अक्सर स्वार्थी लोगों की झूठी तहमतो के शिकार हो जाते है। यह तो टोडरमल का हुनर और शराफत थी कि अपनी इज्जत आबरू सम्हाले रहा वरना उमरा ने तो उसकी जिल्लत मे कोई कसर न रक्खी थी। उसको घमंडी और नाकाबिल कहना सच्चाइयों पर परदा डालना है। बंगाल मे उन्होंने सालों तक तलवार चलाई। हालांकि पूरी फौज इसकी ऑखों के इशारे पर चलती थी मगर उसने कभी सिपहसालारी का दावा नही किया। उसने अपने को बुलन्द करना सीखा ही न था। और अकबर जैसा हीरे का पारखी न मिल जाता तो यह केवल मुसद्दियो का ओहदा पाकर रह जाता। इस विनम्रता के साथ उसके स्वभाव मे आजाद ख्याली इतनी थी कि बंगाल मे जिस वक्त मुनइम खाँ खानखाना ने दाऊद खॉ से सुलह की तो टोडरमल ने उसका विरोध किया और अपनी बात पर ऐसा अड़ा कि सुलहनामे पर अपनी मुहर तक न लगायी। इस आजाद पसन्दी का ईर्ष्यालुओं की तंग नजर ने इसका घमड और अहकार जताना बताया। इस आजाद पसन्दी के साथ साफगोई भी उसके हिस्से मे खूब आई थी। बादशाह के मुँह पर भी सच कहने से न चूकता। सैकड़ों दाढी वाले मुल्लाओं ने दरबार की हवा मे आकर इस्लाम के खिलाफ कलमा पढना शुरू कर दिया था लेकिन राजा ने मरते दम तक अपने धर्म के प्रति निष्ठा रखा। हिन्दू बना रहा। जब तक ठाकुर जी की पूजा न कर लेता खाना न खाता। इससे बढ़कर आजाद ख्याल होने का और क्या सबूत मिल सकता है?

❐

राजा मानसिंह

'दरबारे अकबरी' के तिलस्मी चित्रकार ने क्या खूब कहा है, 'इस आली खानदान राजा की तस्वीर अकबरी दरबार के सजे हुए खाके में सोने के पानी से खींचा जाना चाहिए।' बेशक, और न सिर्फ मानसिंह की बल्कि इसके नामवर बाप राजा भगवान दास और मशहूर दादा राजा पहाड़ामल की तस्वीरें भी इसी इज्जत और सजावट की मुस्तहक हैं। राजा पहाडामल ने जो बहुत आलिम और दूरंदेश था हजारों सालों की मजहबी दुश्मनी को देश के फायदे के लिए कुर्बान करके मुसलमानो से नाता जोड़ा और 969 हिजरी में अपनी निहायत खूबसूरत, खुशमिजाज गुणवन्ती बेटी की शादी अकबर से कर दिया। अम्बेर के कछवाहा खानदान को आजाद ख्याली और मजहबी एकता के मैदान में अगुआई करने की इज्जत मिली और जब तक इन गुणों की वकत जमाने की निगाहों मे रहेगी इस खानदान के नाम पर इज्जत का फ़ातिहा पढ़ा जायेगा।

मानसिंह अम्बेर में पैदा हुआ और इसका बचपन इसी मुल्क के साहसी और बहादुर लोगो के बीच गुजरा जिनसे इसने बहादुरी और जाँबाजी का सबक लिया। मगर जब जवानी ने जोश और जोश ने ख्वाहिशें पैदा कीं तब वह अकबर के दरबार की ओर चला जो उस जमाने मे इज्जत, ओहदा, शानशौकत और बड़प्पन का मुकाम समझा जाता था। भगवान दास की वफादारी और जाँनिसारियों की बदौलत उसे सुल्तान के दरबार में इज्जत की जगह मिली थी। उसके होनहार नौजवान बेटे की जितनी आवभगत होनी चाहिए थी उससे कहीं ज्यादा हुई। अकबर ने इसके साथ पिता का सा बर्ताव किया और जब सन् 1572 मे गुजरात पर हमला किया तब इसे नौजवान कुँवर को अपने साथ रहने की इज्जत बख्शी। जंग में उसने इतनी बहादुरी दिखायी कि अकबर की निगाह में वह चढ गया। अगर कुछ कोर कसर बची तो वह उस समय पूरी हो गयी जब खान आजम अहमदाबाद में घिर गये और अकबर ने आगरे से कूच कर दो महीने का रास्ता सात दिनो में तय किया। नौजवान कुँवर इस हमले में भी बादशाह के साथ था। यह गोया उसकी तालीम और इम्तहान के दिन थे। अब वह समय आया जब इन खिदमतों के बदले उसके सिर इज्जत का सेहरा बाँधा जाता। इत्तफ़ाक से यह मौका भी जल्द ही सामने आ गया। शोलापुर की लड़ाई जीतकर वह लौट रहा था कि रास्ते में कुंभलमेर मे राणा प्रताप सिंह से मुलाकात हो गयी। राणा कछवाहा खानदान से उनकी आजाद ख्याली की वजह से तना बैठा था क्योंकि उन्होंने राजपूतों के माथे पर कलंक का टीका लगाया था, उसने

मानसिह पर चुभते हुए व्यंग्य बाण चलाये जिसने उसके कलेजे को बेध दिया। इन जख्मों के लिये सिवाय बदला लेने के कोई और मरहम नहीं था।

मानसिंह ने आगरे में जाकर तमाम किस्सा बयान किया। अकबर गुस्से में आ गया और राणा पर हमला करने की ठान ली। शहजादा सलीम सिपहसालार और मानसिह उनके सलाहकार नियुक्त हुए।

शाही फौज पहाड़ों, जंगलों को पार करती हुई राणा के मुल्क में दाखिल हुई। राणा प्रताप सिह भी अपने बाईस हजार दिलेर राजपूतों के साथ हल्दी घाटी के मैदान मे अड़ा खडा था। यहॉ खूब घमासान लड़ाई हुई। खून की नदियॉ बह गई। पहाडो के पत्थर लाल हो गये। मेवाडी वीर मानसिंह के खून के प्यासे हो रहे थे। ऐसे जी तोड-तोडकर हमले किये कि सिकन्दर की फ़ौज भी होती तो अपनी जगह पर टिक न पाती। मगर मानसिह भी शेर का दिल रखता था। उस पर जवानी का जोश और हौसला कहता था कि सारी फौज की निगाहें तुम पर हैं, दिखा दे कि राजपूत अपनी तलवार का कैसा धनी होता है। आखिरकार अकबरी इकबाल ने विजय पायी। राणा के बहादुरों के कदम उखड गये। चौदह हजार सूरमा खेत रहे। केवल आठ हजार अपनी जानें सलामत ले गये। कहॉ हैं स्पार्टा की तारीफ में पन्ने के पन्ने रंगने वाले, देखें कि हिन्दुस्तान के जाँबाज कैसी दिलेरी से अपनी जानें दे देते हैं।

राणा लडाई तो हारा मगर हिम्मत न हारा। उसकी हेकडी उसके गले का हार बनी रही। जब कभी मैदान खाली पाता तो अपने जाँबाज साथियो के साथ किले से निकल पडता और आसपास में तूफान मचा देता। अकबर ने कुछ दिनो तक तरह दी मगर जब राणा की ज्यादतियाँ बर्दाश्त के बाहर हो गयी तब सन् 1576 ई० में उस पर फिर हमले की तैयारी की। खुद तो अजमेर में आकर ठहरा और मानसिंह को खिताब फर्जन्दी के साथ इस मुहिम का सिपहसालार बना दिया। राजा हवा के घोड़े पर सवार होकर पल भर में गोकुन्दा पर जा धमका जहाँ राणा अपने बुरे दिन काट रहा था। राणा ने भी इस बार मरने मारने की ठान ली थी। ज्यों ही दोनों फौजे मुकाबले मे आमने-सामने खडी हुई और डंके पर चोट पडी त्यो ही पैदल सेना आपस में गुँथ गयी। राणा के बहादुर राजपूत सिपाही ऐसी हिम्मत से झपटे की शाही फौज के दोनों अग तितर-बितर हो गये। मगर मानसिह जो फौज के बीच में था, हिम्मत से खडा रहा। एकाएक उसके तेवर बदले, शेर की तरह गरजा, अपने साथियो को ललकारा और बिजली की तरह राणा की फ़ौज पर टूट पड़ा।

राणा गुस्से में भरा ताल ठोंककर सामने आया और दोनो बहादुर गुँथ गये। ऊपर-नीचे कई वार हुए और राणा घायल होकर पीछे हटा। उसके हटते ही उसकी फौज मे खलबली मच गयी। उनके कदम उखड़ गये। मानसिंह के जानलेवा बहादुरों ने हजारों को मौत के घाट उतार दिया। उनकी बहादुरी ने आज वे करतब दिखाये कि अच्छे-अच्छे पुराने मुगल फ़ौजी जो बाबरी तलवार की काट देखे हुए थे दॉतों तले उंगली दबाकर रह गये।

इस जीत ने कुँवर मानसिह की की घूम मचा दी मगर सन् 1581

दिये। मुल्क बंगाल में चंद अमीरों ने बगावत की और अकबर के सौतेले भाई मिर्जा हकीम को उकसा कर हमला करने की योजना बनानी शुरू की। मिर्जा जोश में आकर पंजाब की तरफ अपनी फौज लेकर बढा। उधर से राजा मानसिंह सिपहसालार बनकर इसके मुकाबले को आये। दिलेर मिर्जा काको शादमान जो अटक को घेरे हुए था नक्कारे की गरजती आवाज सुनकर चौंक उठा कि अब क्या हो? मानसिंह सिर पर आ पहुँचा। उसकी फौज पल भर मे तितर-बितर हो गयी और शादमान खाक पर पड़ा दिखायी दिया।

मिर्जा ने जब यह बुरी खबर सुनी तो बहुत क्रुद्ध हुआ और फौरन हिम्मत के साथ यह सोचकर कि अकबर बंगाल के मामले मे फसा हुआ है, लाहौर तक दनदनाता हुआ घुस आया लेकिन ज्यो ही सुना कि अकबर धावा बोलता इधर की ओर चला आ रहा है तो हक्का-बक्का रह गया और पहाडो को फॉदता दरियाओ को पार करता काबुल को भागा। बादशाह के हुक्म के अनुसार मानसिंह ने पेशावर पहुँचकर काबुल की तरफ बढना शुरू किया। अकबर अपनी शान-शौकत के साथ शाही फौज लिए इसके पीछे-पीछे चला।

मानसिंह बेखौफ दनदनाता हुआ काबुल के अन्दर तक जा पहुँचा और वहाँ पड़ाव डाला यह सोचकर कि दुश्मन मैदान मे आये तो दूरदराज मंजिलों की थकान दूर हो। मिर्जा हकीम भी बड़े पसोपेश के बाद फौज लिये एक घोडी से निकला और फिर लड़ाई का बाजार गर्म हो गया। दोनों तरफ से दिलावर सिपाही खूब दिल तोड़कर लड़े। हालाँकि मुकाबला बहुत सख्त था और राजपूत ऐसी ऊबड़-खाबड़ जमीन पर लड़ने के आदो न थे लेकिन मानसिंह ने सिपाहियों को ऐसा उभारा और ऐसे-ऐसे मौके से कुमक पहुँचाई कि आखिर में मैदान मार ही लिया। दुश्मन भेड़ों की तरह भागे। राजपूतों के अरमान दिल के दिल ही मे रह गये। मगर दूसरे दिन सूरज भी न निकलने पाया था कि मिर्जा का मामा फरीदूँ खाँ फिर फौज लेकर आ पहुँचा। मानसिंह ने भी अपनी फौज इसके मुकाबले में खड़ी की और चटपट खून की प्यासी तलवारे म्यानो से निकलीं, तोपो ने गोले उगले और रेलपेल होने लगी। दो घंटे तक तलवारें चलती रहीं। आखिर दुश्मन पीछे हट गया और मानसिंह विजेता की तरह काबुल में दाखिल हुआ। मगर अकबर की उदारता और दरियादिली तारीफ के काबिल है जिसने इस मुल्क को जिसे इतना खून बहाने के बाद फतह किया था अपने कब्जे में नहीं लिया बल्कि मिर्जा की गल्तियाँ माफ कर उसका मुल्क उसे वापस दे दिया और पेशावर तथा उसके आसपास के इलाके का अख्तियार मानसिंह के हाथों मे सौंप दिया। दो वर्षो तक राजा मानसिंह ने इस काम को बड़ी कुशलता से किया। इस मुल्क का हर हिस्सा दगा फसाद का गढ़ हो रहा था, राजा ने अपनी नीतियों और कुशल प्रशासन से बड़े-बड़े दंगाइयो की रगें ढीली कर दी। उसकी शराफत का वहाँ के रईसों पर बहुत अच्छा असर हुआ। वे जत्थे के जत्थे इसे सलाम करने आने लगे। हालाकि अवाम को वह बहुत दिनों तक खुश नहीं रख सका क्योंकि उसके सिपाही आखिर राजपूत थे। अफगानो के जुल्म जब याद करते तो पेशानियों पर बल पड जाते और इस ख्याल के आते ही वे अवाम को सताने लगते। इनकी शिकायतें जब अकबर के दरबार में पहुँची राजा मानसिंह बिहार में भेज दिये गये

होकर हमेशा षड्यंत्र रचा करते थे। अफगानो ने अपने तीन सौ वर्षो के शासन में इस पर अच्छी तरह कब्जा जमा लिया था और बहुत से वही आबाद हो गये थे। हालाँकि अकबर ने कई बार इनका नशा हिरन कर दिया था मगर अब भी चन्द ऐसे बागी लोग थे जिनके दिमाग में सल्तनत का सपना समाया हुआ था और वे अक्सर दंगा किया करते थे। वहाँ के हिन्दू राजाओं ने उनसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे और वक्त जरूरत पडने पर दोस्ती का हक अदा करते थे।

कुँवर मानसिह के पहुँचते ही राजा पूरनमल कंधोरिया पर चढ गया, और उसने घमड का किला ढाह दिया। राजा संग्राम सिंह को भी तलवार के घाट उतार दिया और चन्द दूसरे राजाओं को हराकर बिहार को बागियो से आजाद और माफ कर दिया। इतनी काबिल सेवा के बदले उसे 'राजगी' का खिताब, खिलअत खास, बेहतरीन घोडा, धन दौलत, सोना चाँदी और पंचहजारी का ओहदा मिला।

मगर ऐसे पक्के इरादे का जोशीला राजपूत जो हर फन में उस्ताद था चुपचाप कैसे बैठता? 1950 ई० में उसने घोड़े में एड लगायी और उड़ीसा मे दाखिल हो गया। इन दिनो यहाँ कल्लू खाँ अफगान शासन करता था। मुकाबले को आमादा हुआ मगर इत्तिफाकन इसी दौरान अफगानों मे आपस मे फूट पैदा हो गयी। कल्लू खाँ का कत्ल हो गया। बाकी सरदारों ने आत्मसर्म्पण कर दिया और कई सालों तक उसके साथ रहे मगर एकाएक उनकी हिम्मत ने सिर उठाया और बादशाह के मुल्क पर चढ़ आये। राजा मानसिह की जान के लिये बेकारी मुसीबत हो रही थी। उन्हे बहाना मिला। फ़ौरन फोज लेकर बढ़े और दुश्मनो के इलाके में अकबर का झंडा गाड़ दिया। अफगान बड़े जोश खरोश से मुकाबले को आये मगर राजपूत सूरमाओं के आगे उनकी एक न चली। दम के दम मे उनका सफाया हो गया। बाकी तलवार धारी अपनी जान लेकर भागे और फिर बिहार से लेकर समुद्री तट तक अकबरी इकबाल का झंडा गड़ गया।

राजा मानसिंह जैसा जंग में माहिर था वैसा ही कुशल प्रशासक भी था। उसकी दूरदेशी ने देख लिया कि बेल मुंडेरे चढ़ने की नहीं। यों इस प्रकार का शासन ज्यादा दिन टिकने नही पायेगा जब तक ऐसा शहर न बसाया जाये जो दरियाई हमले से बचा हो और जो ऐसे बीचोबीच स्थान पर बसा हो जहाँ चारो तरफ आसानी से फौजी सहायता पहुँचाई जा सके। आखिर बडे सोच-विचार के बाद 'अकबर नगर' की नीव डाली गयी। गोया जगल मे मंगल हो गया। चद सालों में ही यह नगर इतनी तरक्की कर गया कि लगा जैसे जादू हो गया हो।

यह शहर आज 'राजमहल' के नाम से मशहूर है और जब तक यह दुनिया में रहेगा अपने निर्माताओं का नाम रौशन करता रहेगा। इस शहर के बीचोबीच बहुत बड़ा मजबूत किला बनाया गया। फिर दोबारा अफगानो को इधर आने की हिम्मत नहीं हुई। राजा की चार ही पाँच साल की जी तोड़ मेहनत और लगन ने सारे बंगाल को अकबर के कदमों में झुका दिया। खान जमाँ, खानखाना, राजा टोडरमल जैसे नामी लोगो ने बंगाल पर जादू फूँके मगर वहाँ कब्जा करने में नाकामयाब रहे। इतिहासकारों ने इस कामयाबी का सेहरा मानसिंह के नाम लिखा है इन लडाइयों में नौजवान जगतसिंह ने भी मर्दानगी

साल मानसिंह के लिये निहायत मनहूस था। इसके दो बेटे भरी जवानी में मौत के शिकार हो गये और पिता की उम्मीदों की कमर तोड़ गये।

हालाँकि राजा तमाम नियामतों का फायदा उठा चुका था जो किस्मत ने उसके माथे पर लिखा था लेकिन इस अफसोसजनक जान लेवा वाकयों के दो ही साल बाद इसके दिल ने ऐसे-ऐसे जख्म खाये कि वह उनसे उबर नहीं पाया।

मेवाड़ का राणा अभी तक उसके सैनिको के कब्जे में नही आया था और अकबर के दिल मे यह लगी हुई थी कि इसे किसी तरह आत्मसमर्पण का जुआ पहनाया जाय। अब तक जितनी फौजें इस लड़ाई के लिये भेजी गयी नाकाम रही। इस बार बडे पेमाने पर जंग की तैयारी हुई। शहजादा सलीम के नाम सिपहसालारी हुई और राजा मानसिंह इसके सलाहकार नियुक्त हुए। होनहार जगतसिंह ने बंगाल मे अपने पिता की जगह ली। वह खुश-खुश पंजाब से आगरे आया और जाने की तैयारी कर ही रहा था कि एकाएक दुनिया से उठ गया। निहायत रूपवान, शिष्ट और सभ्य जवान था। कछवाहा खानदान के घर-घर में कोहराम मच गया। मानसिंह को जब यह खबर मिली तो उसकी आँखों मे दुनिया सूनी हो गयी। दो बेटों के जख्म अभी भरने न पाये थे कि यह जख्म और गहरा लगा। जवान और होनहार बेटे के जख्म का सदमा कोई उसके दिल से पूछे। अकबर को भी इस जवान मौत से बहुत दुःख हुआ। मरने वाले को वह बहुत चाहता था। उसके बेटे महान सिंह को बंगाल भेजा लेकिन कुँवर अभी अनुभवहीन था। अफगानों से हार गया और सारे बंगाल में बागियों ने सिर उठा लिया। इधर शहजादा सलीम की तबियत भी राणा पर चढ़ाई करने से उचाट हो गयी। ऐश आराम का आदी था, पहाडों से सिर टकराना पसन्द न आया। बिना बादशाह की इजाजत लिये इलाहाबाद लौट आया। मानसिंह बंगाल को चला कि बगावत की आग को बागियों के खून से बुझाये। मगर अफसोस! बुढापे में बदनामी का दाग लगा जिसका राजा को बहुत गम रहा। अकबर को शक हुआ कि शहजादा सलीम मानसिंह के इशारे से लौट आया है हालाँकि इसकी कोई वजह नही थी क्योंकि शहजादा राजा से पहले ही से कुढा हुआ था। मगर राजा की कारगुजारी, वफादारी और दिलेरी की वजह से उसका शक बहुत जल्दी दूर हो गया और चन्द ही महीनों मे बंगाल को फिर से जीत लिया और 1604 ई० मे अकबर की कद्रदानी ने उसको शहजादा खुशरू का उस्ताद बनाकर 'हफ्तहजारी' के खिताब से सम्मानित किया। अब तक यह इज्जत किसी अमीर को मुयस्सर नही हुई थी। राजा टोडरमल के सिवाय दूसरा कौन था जो वफादारी और जाँनिसारी में इसकी बराबरी कर सकता। इस पर तुर्रा यह कि वह इतना जाना-माना खानदानी था जिसके साथ बीस हजार बहादुर हर समय पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहते थे। मगर अफसोस! जालिम तकदीर ने इस इज्जत और इनाम से ज्यादा दिन दामन भरने नही दिया। सन् 1605 ई० मे अकबर इस नाशवान दुनिया से उठ गया और इसी तारीख से मानसिंह का सितारा भी गर्दिश मे आ गया। हालाँकि जहाँगीर के जमाने में भी उसने नौ वर्ष इज्जत आबरू के साथ गुजारा किया। उसकी बुद्धि और बर्ताव को दाद देनी चाहिये कि जमाने के अनुसार काम करता था और जहाँगीर के बुलन्द हौसले को भी दाद है कि हालाँकि वह जानता था कि खुशरू भी जो बागी हो रहा है वह इसी की शह से, पर उसने इसका ओहदा और इज्जत सब पहले की ही

तरह बरकरार रक्खा। खानखाना और मिर्जा अजीज उतने दूरंदेश नहीं थे। अकबर के बाद जब तक जिये जीते जी मुर्दे की तरह रहे और ज़लालत की मुसीबतें झेलते रहे।

1614 ई० में जहाँगीर ने जबरदस्त फौज खानजमाँ की सिपहसालारी में दक्षिण की मुहिम पर भेजा। राजा मानसिंह भी जो दरबार की बेरुखी से तंग आ चुका था इस फौज के साथ चला कि अगर मुमकिन हो तो बुढ़ापे में जवानी का जोश दिखाकर बादशाह के दिल में जगह पा ले। मगर मौत ने यह अरमान पूरा न होने दिया। बेटों में केवल भावसिंह जिन्दा बचा था। जहाँगीर ने उसे 'मिर्जा राजा' का खिताब देकर चार हजारी ओहदे पर नियुक्त किया।

राजा शासन नीति और जग नीति दोनों में कुशल था और उनके उसूलों पर भली-भाँति अमल करता था। जिस मुहिम पर जाता जीत कर लौटता। अफगानिस्तान के लोग अभी तक उसका नाम इज्जत से लेते हैं। इन गुणो के साथ इसकी मिलनसारिता, अच्छा बर्ताव, खुशमिजाजी और दरियादिली इस जमाने में भी अपना सानी नहीं रखती जिसकी कहानी इस तरह बयान की जाती है 'जिस वक्त दक्षिण को सेना जा रही थी बालाघाट में गल्ले का ऐसा अकाल पड़ा कि एक रुपये के आटे मे भी आदमी का पेट नहीं भरता था। एक दिन राजा ने कचहरी से उठकर कहा कि अगर मै मुसलमान होता तो एक वक्त का खाना हजार मुसलमानों के साथ खाता। मगर मैं सफेद बाल हूँ, सबसे अलग हूँ अगर मेरा पान आप कबूल करें। सबसे पहले खान जहाँ लोदी ने हाथ सिर पर रखकर कहा—'मुझे कबूल है' फिर औरों ने भी कबूल किया। राजा ने प्रतिदिन एक सौ रुपया पचहजारी का और उसी हिसाब से औरों के लिये खाने का खर्चा बांध दिया। हर रात लिफाफे में हर शख्स के पास यह रुपया पहुँच जाता। लिफाफे पर उसका नाम लिखा होता। सिपाहियो को रसद पहुँचने तक सस्ती कीमत पर अनाज देता। यहाँ तक कि रास्ते में मुसलमानों के वास्ते हमाम और कपड़े की मस्जिद बनाकर नमाज अदा करने का इन्तजाम कराता। इसको फैयाजी कहते हैं—दरियादिली इसका नाम है। 'बागोबहार' में शहजादी बसरा का किस्सा पढ़िये और इसकी तुलना इस ऐतिहासिक किस्से से कीजिए।

राजा टोडरमल की तरह राजा मानसिंह भी अपने बाप दादों के मजहब पर अडा रहा। मगर मजहबी भेदभाव की भावना इसके मिजाज में जरा भी न थी नहीं तो अकबर के दरबार में इज्जत और तरक्की पाना नामुमकिन था। अकबर ने राजा से एक बार इशारे में मजहब बदलने की बात कही थी मगर राजा ने ऐसा दो टूक जवाब दिया कि बादशाह को खामोश हो जाना पड़ा। किताबों में बहुत सी मिसालें हैं जिनसे जाहिर होता है कि राजा लतीफागोई, चुटकुलेबाजी और नुकताफहमी करने में भी दो कदम सबसे आगे थे। ये ही खूबियाँ इनकी सफलता के राज हैं।

मगर हमारी नजरों मे उनकी वक़त इसलिए है कि उन्होंने खानदान मे सबसे पहले सभी विरोधी विचार वालों को एक जगह लाने की कोशिश की।

❐

बिहारी

संस्कृत काव्य मर्मज्ञों ने काव्य को नौ रसों में बाँटा है। रस का मतलब है काव्य का रंग जैसे हुस्न, इश्क, वीरता, क्रोध, हास, भक्ति वगैरह। सूरदास शान्त और भक्ति रस के गायक थे, बिहारी हुस्न और इश्क के। इनका रंग उर्दू की गजलों से बहुत मिलता-जुलता है। सब हिन्दी के कवियों में बिहारी की यह अपनी खासियत है। यह मालूम नहीं कि बिहारी ने फारसी पढ़ी थी या नहीं, इसका अभी कोई पूरा सबूत नहीं मिला है। मगर उनकी कविता के रंग पर फारसी गजलों का बहुत चोखा रंग नज़र आता है। मुमकिन है कि यह उनका पैदाइशी मिजाज ही हो। हुस्न और इश्क के सिवाय उन्होंने किसी दूसरे रंग में कविता की ही नहीं या की भी हो तो नहीं के बराबर है। मगर बावजूद इसके कि उनका दायरा सीमित है वह भावों की जिस बुलन्दी और गहराई तक पहुँच गये वह इस रंग के किसी और कवि को नसीब नहीं। अश्लील तथा अशिष्ट ख्यालात पर कुछ नहीं लिखते। उनकी नफासत पसन्द तबियत आम विषयों से दूर भागती है। उनमें गालिब का सा पैनापन है। गालिब की तरह इन्होंने भी इश्क का ऊँचा मेयार अपने सामने रक्खा है और भावों को कभी गम्भीरता के ऊँचे पाये से नीचे नहीं गिरने दिया। यह कहना मुश्किल है कि इन्होंने शोखी की ही नहीं हुस्न और इश्क के दायरे में आकर कोरा मुल्ला और नीरस नसीहत देने वाला बन कर रहना मुश्किल है, लेकिन बिहारी के यहाँ संयमहीनता के मिसाल कम है। गालिब की तरह बिहारी भी कम लिखते थे। उनकी यादगार, जीवन भर की कमाई सिर्फ सात सौ दोहे हैं। मगर ऐसा माना जाता है कि उन्होंने सिर्फ सात सौ दोहे नहीं लिखे बल्कि यह उनके चुने हुए दोहों का संग्रह है। जिस कवि ने जीवन भर कविता ही की हो, कैसे मुमकिन है कि वह केवल सात सौ दोहे अपनी यादगार रूप में छोड़े। यह समझ के बाहर की बात है। जरूर उन्होंने और कवियों की तरह बहुत कुछ कहा होगा। बाद में अपने दिल पर पत्थर रखकर उन ठीकरों में से हीरे छाँट लिये होंगे। वे हीरे आज उनके नाम को चमका रहे हैं। अगर उनकी सब कविता मौजूद होती तो यह लाल गुदड़ी में छिप जाते या नजर आते तो केवल पारखियों को। पाँच-सात हजार दोहों में से पाँच-सात सौ निकाल लेना कोई खास बात न होती। लगभग सभी कवियों की कविताओं में कुछ खासियत मौजूद होती है। जिस कवि ने सारी उम्र कविता की हो उसने अगर सौ-दो सौ भी जानदार फड़कती हुए अनूठी कविता न कहीं हो तो

उसे कवि कहना ही बकार है। ऐसी हालत मे बिहारी मे भी कोई खास बात न होती। मगर उनके चुने हुए दोहरे ने तादाद को घटा कर उनको बुलन्दी की चोटी पर पहुँचा दिया। यह हीरे की माला सतसई के नाम से मशहूर है—यानी सात सौ दोहों का सग्रह। हालाँकि गिनती मे दोहे सात सौ से कुछ अधिक नहीं है लेकिन इस छोटे से दीवान मे कवि ने हुस्न और इश्क का दरिया बन्द कर दिया है। हसरत, अरमान और शौक, विरह मिलन और गम, मतलब यह कि कोई भाव ऑख से ओझल नहीं हुआ है। उस पर कहने का अन्दाज और अलंकारों का प्रयोग उनके दोहों को और ऊँचाई दे देता है। अलकार अपने आप में एक कविता है। कोई रूखा फीका विषय भी अलकारों का जामा पहनकर सॅवर जाता है। जो सेनापति सौ सिपाहियों का काम दस सिपाहियों से पूरा कर ले वह बेशक अपने फन का उस्ताद है। अच्छे से अच्छा अछूता अनोखा विषय भी अगर अलंकारो से न सजाया गया हो तो बेमज़ा हो जाता है। कई विद्वानो ने तो अलंकारों को इतनी अहमियत दी है कि उनके अनुसार कविता अलंकारो का ही नाम है। उनके ख्याल मे कविता अलंकार के सिवा कुछ नहीं। संस्कृत के आचार्य अलकार कला में बेजोड़ है। उन्होने सारे उपनिषद और पिंगल शास्त्र सूत्रों में लिखे हैं। सूत्र वह पात्र है जिसमें दरिया को बन्द कर देते हैं। आज भी संसार के विद्वान इन सूत्रों को देखते हैं और देखकर आश्चर्य से दाँतों तले उगली दबा लेते है। सूत्र तीन चार शब्दों का एक टुकडा है जिसमें इतना अर्थ भरा होता है कि उसे ढेरो शब्दों मे भी मुश्किल से अदा किया जा सकता है। किसी सूत्र की टीका लिखने मे तो विद्वानो ने पोथे के पोथे रंग डाले हैं। उर्दू में गालिब और नसीम ने कमाल दिखाया है। हिन्दी मे यह सेहरा बिहारी के सिर है।

कवि के दर्जे की पहचान समाज से मिली कबूलियत से होती है। इस दृष्टि से तुलसी का स्थान सबसे ऊँचा है मगर बिहारी उनसे बहुत पीछे नहीं। कम से कम तीस कवियो ने सतसई की टीका गद्य और पद्य में लिखी है। पिछले बीस वर्षों में इसकी तीन टीकाएँ निकल चुकी हैं जिनमे एक गद्य में है और दो पद्य मे।

कवियों ने इन दोहो को लेकर किताबें लिखे हैं। बासोख्त, तरजीह मुकम्मल सब कुछ हे।

बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी में हाल के जमाने में बाकमाल लेखक हो गये हैं। उन्होंने गद्य और पद्य में कितनी ही जानदार मशहूर रचनाएं छोड़ी हैं और मौजूदा आधुनिक हिन्दी नाटक के तो वे खुदा हैं। उन्होने सतसई पर कुण्डलियाँ चिपकाने का इरादा किया पर सत्तर-अस्सी दोहों से ज्यादा न जा सके। इतने काबिल होने पर भी उनकी रचनाशक्ति ने जवाब दे दिया। बिहारी ने दोहे क्या कहे है—वे कवियों के लिये लोहे के चने है। जब तक कि उसी दर्जे का कवि सारी उम्र उन दोहों में जान न खपाये, कामयाब नही हो सकता। हिन्दी में बिहारी की विशेषता यह है कि इनके दोहों का संस्कृत में अनुवाद हुआ है। यह तो उस कबूलियत का हाल है तो बिहारी को और दूसरे कवियो के मुकाबले मे मिला है। यह सब मानते हैं कि तुलसी और सूर के बाद इन्ही का दर्जा है। मुसलमान कवियों ने भी सतसई की बहुत कद्र की है उस जमाने के मुसलमान लोग हिन्दी म

शेरो शायरी करना अपना अपमान न समझते थे। अगर उर्दू मे नसीम और तुफ्ता थे तो हिन्दी में भी कितने ही मुसलमान कवि मौजूद थे। आलमगीर औरंगजेब के तीसरे बेटे आजमशाह हिन्दी कविता के बडे पारखी थे। उन्हीं के कहने से सतसई की मौजूदा तरतीब सामने आयी। हालाँकि और लोगों ने भी इस काम को किया लेकिन यह तरतीब सबसे अच्छी है। इसलिये अच्छी है क्योंकि इसका क्रम कला के हिसाब से रक्खा गया है। बिहारी के सभी दोहरे सजे हुए हैं। आजमशाह ने यह तरतीब बनाकर अपनी काव्य मर्मज्ञता का अच्छा सबूत दिया है। मुसलमान रईसो और शायरो ने सतसई की खूब दाद दी। इस जमाने की सियासती उलट फेर के बावजूद शायरी के आशिकों की कमी न थी। शायरी की दुनिया मे मजहबी भेदभाव को ताक पर रख दिया जाता है। सतसई के तीस टीकाकारो मे पाँच मुसलमान हैं।

(1) जुल्फिकार खाँ—ये बहादुरशाह के बाद जहाँदारशाह के जमाने मे अमीरुल उमरा के पद पर थे। ये सियासत के पूरे जानकार थे। जहाँदारशाह तो ऐय्याशी में डूब रहते थे। अमूरुल ममालिक जुल्फिकार खाँ अजाम देते थे। शहजादा फर्रुखशियर ने बगाल से लौटकर जहाँदारशाह पर हमला किया और कई लडाइयो के बाद दिल्ली पर काबिज हो गया। जुल्फिकार खाँ ने धोखा करके जहाँदारशाह को गिरफ्तार कर दिया लेकिन फर्रुखशियर ने जुल्फिकार खाँ को तख्त पर बैठते ही कत्ल करा दिया। हजरत जुल्फिकार हिन्दी शायरी के कद्रदान थे। इन्ही की फरमाइश से शायरो ने सतसई की एक बहुत अच्छी टीका बनाई जो आज तक मौजूद है। सभवतः वो खुद शायर थे मगर इससे तो इन्कार ही नहीं किया जा सकता कि वह शायरी के आला दर्जे के पारखी थे।

(2) 'अनवरचन्द्रिका' नाम से नवाब अनवर खाँ के दरबार के शायरो ने सतसई पर टीका लिखी जो 1828 में छपी।

(3) 'रसचन्द्रिका' ईसा खाँ 19वी शताब्दी में हिन्दी के अच्छे कवि हो चुके हैं। नरवरगढ के राजा छत्रसिंह के कहने से इन्होंने टीका पद्य में तैयार की। बिहारी के दोहों का सग्रह उन्होने अकारादि क्रम मे 1866 में बनाया।

(4) यूसुफ खाँ की टीका—इसका विस्तृत विवरण नही मालूम लेकिन इनकी टीका बहुत मार्के की है, तारीख तकरीबन 1860 ई० है।

(5) पठान सुल्तान की टीका—रियासत भोपाल के जिला राजगढ के नवाब सुल्तान पठान ने 1817 ई० में यह टीका पद्य में लिखी। यह हिन्दी के अच्छे कवि थे। यह शायद उनके दरबार के कवियों की लिखी नही है। यह इन्ही के काव्य प्रेम का नतीजा है। यह टीका अब प्राप्य नहीं है।

मगर कितने अफसोस की बात है कि इतनी लोकप्रियता और कमाल के बावजूद बिहारी की जिन्दगी गुमनामी के परदे में छिपी है। न उनके जमाने के कवियो ने उनका जिक्र किया न उन्होंने खुद अपने बारे में कुछ लिखा। इनके समकालीनों की कमी नही थी। कम से कम साठ कवि उन्ही के जमाने के थे' इन सबकी रचनाए आपस मे मिलती हैं लेकिन बिहारी के बारे में किसी ने कुछ न लिखा, उनकी जाती जिन्दगी का तारीखवार

कुल दो तीन दोहों पर है मगर वह भी साफ तौर पर समझ में नही आता। हिन्दी के खोजकर्ता बहुत अर्से से जाँच पड़ताल कर रहे हैं और अब तक तमाम तहकीकातो का नतीजा यह है कि बिहारी 18वी शताब्दी के आरम्भ में पैदा हुए। सतसई के पूरी होने की तारीख बिहारी ने 1776 ई० दी है। मुमकिन है इसके बाद कुछ दिन और जिन्दा रहे हों। अनुमान से पता लगता है कि उन्होंने बड़ी उमर पाई। ग्वालियर के नजदीक एक गाँवमें पैदा हुए। लड़कपन बुन्देलखण्ड में गुजरा। मथुरा मे इनकी शादी हुई। वही उम्र का अधिकांश समय गुजरा। इनकी जबान ब्रजभाषा है मगर इसमे बुन्देलखण्डी शब्द बहुत आये है। इससे इस अनुमान की सच्चाई सिद्ध होती है कि उनका ब्रज और बुन्देलखण्ड दोनों ही से जरूर ताल्लुक था। जाति के चौबे ब्राह्मण थे। कुछ विद्वानों ने उन्हें भाट बतलाया है पर इस ख्याल की पुष्टि नहीं होती। अनुमानतः जिस जमाने में सतसई खत्म हुई उनकी उम्र साठ से कुछ ही कम थी लेकिन इतना समय उन्होंने किस काम में गुजारा इसका कुछ पता नहीं। मुमकिन है कुछ कविता की हो जो जमाने के हाथों बर्बाद हो गयी हो। वे गरीब न थे लेकिन इस जमाने के रिवाज के मुताबिक राजाओं--रईसो के दरबार मे हाजिर होना अपनी आजीविका के लिये जरूरी था लेकिन सतसई लिखने के पहले उनका किसी की खिदमत में हाजिर होना पता नहीं चलता। उम्र का बहुत बड़ा हिस्सा ना मालूम तरीके से काटने के बाद ये जयपुर पहुँचे। वहाँ उस समय सवाई राजा जयसिंह गद्दी पर थे। इन्होंने दूसरे दरबारियों से महाराज की खिदमत में सलाम करने की दरख्वास्त की।

महाराज इन दिनों एक माशूक कमसिन के प्रेमजाल में गिरफ्तार थे। सल्तनत का काम छोड़ बैठे थे। रनिवास में बैठे माशूक का दीदार करते बैठे रहते थे। सैरो-शिकार से नफ़रत थी। दरबारी लोग महाराज की सूरत महीनों नहीं देख पाते थे। उन्होंने बिहारी से इस काम के लिये मजबूरी जाहिर करते हुए माफी माँगी। जब महाराज बाहर निकलते ही नही तो सिफारिश कौन करे और किससे करे? लेकिन बिहारी मायूस नही हुए। एक दिन उन्हें मालिन फूलों की टोकरी लिये महल में जाती नज़र आई। उन्होंने ख्याल किया ये फूल महाराज की सेज पर बिछाने के लिये जा रहे होंगे। उन्होंने यह दोहरा लिखकर मालिन की टोकरी में डाल दिया—

नहि पराग नहि मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सों बिन्ध्यो आगे कौन हवाल।।

यानी अभी न रस है, न खुशबू है, न विकास है, अभी तो वह अधखिली कली है। अभी ही से इस तरह उलझ गये तो आगे क्या हालत होगा?

यह कागज का पुर्जा महाराज के हाथ लगा। दोहा पढ़ा—आँखें खुल गई। दरबारियों को तलब किया। लोग बहुत खुश हुए। भगवान की कृपा से महाराज आये तो दरबार में महाराज ने यह दोहा पढ़ा और कहा जिसने यह दोहा लिखा है उसे हाजिर करो।

बिहारी ने आगे बढकर सलाम किया महाराज बहुत खुश हुए बिहारी की बहुत

की और रोज़ चन्द दोहरे कह कर महाराज को सुनाने लगे। महाराज के यहाँ ये पुर्जे नत्थी किये जाने लगे। कुछ दिनो बाद बिहारी को अपने वतन को याद आई—महाराज से विदा माँगी। महाराज ने दोहो को गिनने का हुक्म दिया। सात सौ से कुछ ज्यादा निकले। महाराज ने सात सौ अशर्फियाँ इनाम के तौर पर देकर बिहारी को विदा किया। मौजूदा हालात का ख्याल कीजिए तो यह रकम कम न थी। यह तकरीबन बीस हजार रुपये होते हैं और उस समय एक रुपये की कीमत 5 रुपये से कम न होगी लेकिन वह जमाना इतनी सस्ती कद्रदानी का न था। आजकल के कवियों की तबियत तो मामूली जलसा से ही आसमान पर पहुँच जाती है और जंट साहब बहादुर नौशेर वाँ से मिला दिये जाते हैं, कही साहब कलक्टर, बहादुर रुस्तम और इसफ़दियार से भी बढ़ा दिये जाते है। इनकी इज्जत तो आज बस इतने में ही है कि जब ये कवि कभी उनके घर पर हाजिर हो तो कलक्टर साहब उनके लिये एक गुर्राती हुई आवाज में हुक्म करते सुनाई दे--'खुर्सी लाओ' या जब ये किसी रईस के दस्तरखान पर पहुँचे तो इन्हे भी उनके साथ बैठकर उस लजीज खाने का जायका लेने दिया जाय। इतने में तो इन कवियों की कल्पना पक्षी की तरह आसमान में पहुँचकर वहाँ से सितारों की खबर लाती है। शुक्र है कि हमारे कवि दिनो दिन भाट के ऐब से पाक होते जा रहे है।

मगर बिहारी के जमाने मे कवियो को उनकी काबलियत के हिसाब से इनाम इकराम और जागीरें देने का आम रिवाज था। रईस लोग इनाम देने में एक दुसरे से होड़ लेते थे। भूषण को महाराज शिवाजी ने एक कवित्त के बदले बीस हजार रुपये और पच्चीस हाथी दिये थे। अगर कही सुनी बातों पर एतबार किया जाय तो एक कवित्त के बदले इसी देशभक्त राजा ने उस खुशनसीब कवि को अट्ठारह लाख रुपये दिये थे। उस कवित्त को सुनकर वह इतना खुश हुआ कि भूषण से बार-बार पढने की फरमाइश की। भूषण ने अट्ठारह बार पढने के अट्ठारह लाख रुपये दिये और अफसोस जाहिर किया कि उसने सब्र से काम क्यों न लिया। इन भूषण को पन्ना के महाराज छत्रसाल कुछ इनाम देने के बाद जब वह चलने लगे तो उनकी पालकी अपने कन्धे पर उठाकर कई कदम ले गये। इन कद्रदानियो के मुकाबले में बिहारी को जो इनाम मिला वह इतना हौसला बढाने वाला न था। ये मिसालें इस समय ताजा थी।

बिहारी ने उसके चर्चे सुने थे। वे जयपुर से बहुत मायूस होकर वापस लौटे। शायद यही वजह हो कि सतसई में सवाई जयसिंह की तारीफ में एक दोहा भी नही है। एक दोहा सिर्फ उनके शीशमहल की तारीफ में है और दो दोहों में तो उन्होंने इशारे से जयसिह की ना कद्री की। शिकायत भी की है। हालाँकि पाक निगाहें उनमें तारीफ ही देखती हैं। इस इनाम की बात अगर छोड़ भी दे तो भी जयपुर में बिहारी को वह इज्जत नही मिली जिसकी उन्हें इतने कद्रदान दरबार से उम्मीद थी।

भूषण ने राजा छत्रसाल द्वारा दी गई इज्जत को शिवाजी की दानशीलता से ज्यादा अच्छा समझा। कवि को केवल धन दौलत की चाह नहीं होती उसे कद्रदानी की भी इच्छा होती है अगर कविता की तारीफ के साथ थोड़ी सी दुनियावी इज्जत भी मिल जाय तो

वह बाग-बाग हो जाता है। मगर तारीफ के बगैर कारू का खजाना भी उसे खुश नही कर सकता। राजा छत्रसाल अभी जिन्दा थे। बिहारी जयपुर से मायूस होकर उसी पारखी राजा के दरबार में पहुँचे और सतसई उनकी खिदमत मे पेश कर उनसे तारीफ की उम्मीद की। छत्रसाल खुद भी अच्छे कवि थे। दिल में उमग था। उनके दरबार मे बाकमाल कवियो का जमाव बना रहता था। इन कवियों ने सतसई को गौर से देखा, परखा, तोला और बिहारी के कमाल के कायल हो गये। हालाँकि उसी दरबार के एक कवि ने जलन वश बिहारी की निन्दा भी की मगर उसका कोई असर नहीं हुआ। राजा साहब ने पाँच गाँवकी जागीर बिहारी को दी। इस दरबार द्वारा मिली इज्जत और खातिर से वे बहुत खुश हुए लेकिन यहाँ वे दाद की गरज से आये थे जागीर की गरज से नहीं। जागीर शुक्रिया के साथ वापस कर दी।

महाराज जयसिंह को भी इस घटना की खबर मिली। उनके इस इन्कार पर बहुत खुश हुए। फिर उन्हें दरबार में बुलाया और पुरानी बातों की भूल मान कर दो अच्छी आमदनी वाले मौजे दिये। बिहारी ने इसे शुक्रिया के साथ कबूल कर लिया। इनके वारिस अब तक इन गाँवो पर काबिज हैं।

बिहारी का अब बुढ़ापा आ गया था। साठ से ऊपर हो गये थे। ज्यादा सैर और सफर की ताकत न थी। मथुरा लौट आये। यहाँ इन दिनों जोधपुर के महाराज जसवन्त सिह भी आये हुए थे। उन्होंने अर्से से बिहारी की तारीफ सुनी थी। उनसे मिलने के ख्वाहिशमन्द थे। खुद भी काव्य मर्मज्ञ थे।

'काव्यालकारों' पर एक मार्के की किताब लिखी थी जिसे आज तक कवि लोग अपना आदर्श समझते है।बिहारी को भी उनसे मिलने की कम ख्वाहिश न थी। महाराज ने इनकी कविता की तारीफ की, कहा 'थारी कविता में सूलो लग्या।' यानी तुम्हारी कविता में कीडे पड़ गये। बिहारी ने इस दोहरे अर्थ वाले दाद को न समझा और घर चले आये। मायूस थे। उनकी लड़की होशियार थी। मायूसी की वजह पूछी। बिहारी ने राजा जसवन्त सिह का वह कथन बयान किया। लड़की इसका अर्थ समझ गई। बोली महाराज का मतलब है कि आपकी शायरी में जान पड गई। बिहारी को भी यह अर्थ माकूल लगा। महाराज जसवन्त सिंह से जब दूसरे दिन जिक्र आया तो वह बहुत खुश हुए और कहा, 'हाँ यही मेरी मंशा थी।'

बिहारी के सम्बन्ध में इससे और ज्यादा कुछ नहीं मालूम है। वह कब मरे, कहाँ मरे? हाँ उनके एक बेटे कृष्ण नाम के थे। वह भी कवि हुए हैं। बिहारी के कलाम के कुछ नमूने पेश करने जरूरी हैं।हालाँकि उर्दु लिबास पहनकर उनकी शक्ल बहुत कुछ बदल जाती है। गालिब के दीवान की तरह बिहारी सतसई के अर्थो के सम्बन्ध में टीकाकारों मे अक्सर मतभेद हो जाता है। उनके दोहे निहायत कठिन और पेचीदे होते हैं। वे मोती हैं जो डूबने से हाथ आते हैं—

मानहुं विधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबै काज
दृग पग पोंछन को किये भूषन

यहाँ बिहारी ने नाजुक ख्याली का कमाल दिखाया है। मानो प्रकृति रूपी कारीगर ने माशूक के नाजुक बदन पर जेवरों का पायंदाज बना दिया है ताकि निगाह के पाव से उस पर गर्द न आ जाय। 'पाअंदाज' उर्दू शब्द है जिसका कवि ने इस्तेमाल किया है। बिहारी अक्सर उर्दू फारसी, अरबी शब्दों को लाते हैं और बडी खूबी से लाते है। मतलब यह कि माशूक का बदन इतना नाजुक और सुथरा है कि निगाहो से भी मैला हो जाता है। इसलिये जरूरी है कि जेवरों पर पैर साफ करके तब निगाह उसके हुस्न के साफ फर्श पर कदम रक्खे। क्या सफाई हुस्न है जो निगाहो से मेली हो जाती है। 'पाये निगाह' का गालिब ने भी इस्तेमाल किया है। जेवर माशूक के हुस्न को बढ़ाने के लिये नही बल्कि निगाहो के पैर की गर्द पोंछने के लिये है। एक उर्दू शायर ने माशूक की नजाकत की यो कल्पना की हैं—

1. क्या नजाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये
   हमने तो बोसा लिया था ख्वाब मे तस्वीर का
2 ह्वै कपूरमनि से रही मिलि तन दुति मुकतालि
   छन छन खरी बिचछनों लखति छ्वाये तिनआलि

कपूरमणि को उर्दू मे कहरुबा कहते हैं यानी माशूक के गले में मोतियो की माला उसके जिस्म के कुन्दनी रग में मिलकर कहरुबा सी हो गई है। उसकी सखी को धोखा होता है। वह घास के तिनके से उस माला को छूती है क्योंकि कहरूबा मे घास को खीचने की सिफ़त होती है। वह सोचती है यह तो मोतियो की माला थी, कहरूबा क्योकर हो गई? इस शक को हटाने के लिये वह उसकी कोहरुबाई गुण का इम्तहान लती है।

अमीर लखनवी का एक शेर देखिये—

मुनकिरे यक रंगिये माशूको आशिक थे जो लोग
देख लें क्या रंगे काहो कहरुबा मिलता नहीं
कहे जु बचन बियोगिनी बिरह बिकल अकुलाई।
किये न को असुवा सहित सुवा तिबोल सुनाइ।।

इस दोहे में कवि ने कल्पना की उड़ान की सीमा पार कर दी। इस विषय मे शायद ही किसी उर्दू शायर ने लिखा हो यानी माशूक जुदाई के सदमें से बेचैन हो-होकर तन्हाई के क्षण में अपने दर्द भरे दिल से जो बात करता है उसे पिजड़े में बैठा सुग्गा सुन लेता है। बाद में वह वही दर्दनाक बोल दुहराता है, सुनकर लोगों की ऑखों में आँसू भर आता है। माशूक ने छिपाने की कितनी कोशिश की पर राज़ खुल गया। इसमें काव्य की कितनी खूबियाँ हैं और इस तोते के दुहराने में भी इतनी मार्मिकता है कि सुनने वाले दिल को थाम लेते हैं और रोने लगते हैं। इमसे उस दर्द के सदमे का अन्दाज हो सकता है।

फारसी का एक मशहूर शेर है—

सब्ज खत्ते बखते सब्ज मरा कर्दे-असीर

सायब ने इस शेर के बदले अपना सारा दीवान देना चाहा था। बिहारी के इस दोहे मे शुद्धता और कोमलता उसकी तुलना में ज्यादा है—

तच्यो आँच अति विरह की रह्यो प्रेम रस भीजि

नैननु के मगु जलु भये, हियो पसीजि पसीजि

इसी ख्याल को फारसी शायर ने यूँ अदा किया है—

ये मीपुरसी ज़े-हाले-मा दिले-गम दीदा अस्त चूँ शवद

दिलम शुद खूँ व खूँ शुद आब वा आब अज चश्मे-बेरूँ शुद

इस दोहे और फारसी शेर मे इतनी समानता है कि इसे भाव साम्य कहना चाहिए क्याकि दोनो शायर कमाल हैं और एक दूसरे की नकल का गुमान कोई नही कर सकता।

बैठि रही अति सघन बन पेठि सदन तन माँह।

निरखि दुपहरी जेठ की छाँहौ चाहति छाँह।

मतलब यह कि जेठ की जलती दुपहरी से घबराकर साया भी साया ढूँढता है। इसलिये वह घने जगल और मकानो के पीछे छिपा फिरता है। मौसमों पर भी बिहारी ने लिखा है। हेमन्त यानी पूस का जिक्र यों करते हैं—

आवत जात न जानिये तेजहिं तजि सियरान

घरहि जंवाई लौं घट्यो खरो पूस दिनमान।।

यानी जिस तरह घर जमाई की इज्जत ससुराल में नही होती उसके आने-जाने का कोई ख्याल नहीं करना, मालूम नहीं वह कब आता और कब जाता है उसी तरह पूस मे दिन के आने-जाने की खबर नही होती। बरसात का जिक्र यो करते है—

हठ ना हठीली करि सकै यहि पावस ऋतु पाय।

आन गाँठ घुटि जाति ज्यों मान गाँठ छुटि जाय।।

यानी बरसान के मौसम मे मानवती माशुका भी मान नहीं कर पाती। बरसात में रस्सी की गाँठ मजबूत हो जाती है। मान की गाँठ ढीली पड़ जाती है।

दूसरे बाकमाल शायरों की तरह बिहारी को प्रकृति और इन्सान के स्वभाव की गहरी पहचान थी। खास तौर से हुस्न और इश्क के जज़बात की जैसी सही और साफ तस्वीर उन्होंने खींची है, किसी दूसरे हिन्दी कवि के वश की बात नहीं। मगर इस बागीचे में इतने काँटे है कि किसी कवि का दामन काँटा चुभे बगैर नहीं रह सकता। जब गालिब जैसा चौकस व्यक्ति भी इन काँटो में उलझने से न बचा तो औरों का क्या कहना।

❐

केशव

काव्य मर्मज्ञो ने केशव को हिन्दी का तीसरा कवि माना है। वैसे केशव में कल्पना की वह उड़ान नहीं जो बिहारी का खास गुण है। तुलसी, सूर बिहारी और भूषण आदि कवियो ने खास रंग की कविता में अपनी बेहतरीन काबलियत दिखायी है। तुलसी भक्ति की तरफ झुके, सूरदास प्रेम की तरफ। बिहारी ने इश्क की बारीकियों की ओर इशारा किया और भूषण बहादुरी के मैदान में उतरे लेकिन केशव ने खास तौर से किसी एक रंग को अख्तियार नहीं किया। वह हुस्न, अध्यात्म, बहादुरी और भक्ति सभी रंगों की ओर लपके। और यही वजह है कि किसी रंग मे चोटी पर न पहुँच सके। केशव मे कविता करने की काबलियत कम न थी और मुमकिन था कि वे किसी एक रंग के पाबन्द रहकर दूसरे तुलसी बन जाते लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वे आखिरी दम तक अपने को समझ न सके। अपनी प्रकृति की थाह न पा सके। और यह कमी केवल इन्ही तक सीमित नहीं। हमारे कवियो और विद्वानों मे बहुत लोग ऐसे है जिन्होंने अपनी प्रकृति को नहीं पहचाना। वैसे अपनी प्रकृति को पहचानना आसान काम भी नहीं है। फ़िर भी केशव की कविता हुस्न और इश्क की तरफ ज्यादा झुकी मालूम पड़ती है। एक मौके पर अपने बुढापे का रोना रोते हुए वह कहते हैं अब हसीन औरतें उन्हे मोहब्बत की निगाह मे नहीं, इज्जत की निगाह से देखती हैं और उन्हें बाबा कहकर पुकारतो हैं लेकिन मजे की बात यह है कि उनकी शोहरत रोमांटिक कविता पर नही बल्कि कथा काव्य पर कायम है। 'रामचन्द्रिका' जो इनकी सबसे ज्यादा मशहूर रचना है शायद तुलसीदास की रामायण के बाद हिन्दी जबान में दूसरी सबसे अधिक लोकप्रिय रचना है। केशव तुलसीदास के जमाने के थे। हालाँकि इनकी पैदाइश की तारीख निश्चित नही लेकिन अनुमान से यह 1552 ई० के लगभग ठहरती है और मृत्यु की तारीख लगभग 1612 ई० है। सूरदास के देहान्त के समय केशव की अवस्था बारह साल की थी। तुलसीदास का देहान्त 1625 ई० में हुआ। इस हिसाब से केशव की मृत्यु तुलसी से बारह-तेरह वर्ष पहले हुई। इनका वतन ओरछा था जो अब भी बुदेलखंड की एक मशहूर रियासत है। उस जमाने में तो सारा बुंदेलखंड ओरछा के अधीन था। अकबरी दरबार में ओरछा के बादशाह की खास इज्जत थी यह अकबर का जमाना था ओरछा में राजा रामसिंह गद्दी पर थे और रामसिंह

थे। रियासत का इन्तजाम इन्द्रजीत के लायक हाथों में था। केशवदास इस राज्य के नमकखार थे। उन्होंने अपने काव्य में जगह-जगह पर इन्द्रजीत की मेहरबानियों और दानशीलता की तारीफ की है। ओरछा बेतवा नदी के किनारे बसा है। यह जमुना की सहायक नदी है जो हमीरपुर में जमुना से आकर मिल जाती है। ज्यादातर पहाड़ी इलाकों से गुजरने की वजह से नदी का पानी बहुत साफ और सेहतबख्श है और जहाँ कहीं वह वादियों में होकर बहा है वहाँ पर निहायत मोहक नजारा है। केशव ने जगह-जगह पर बेतवा नदी की तारीफ़ की है। इन्द्रजीत रंगीन तबियत का राजा था। उसकी नज़र एक रायपरवीन नामक वेश्या पर थी जिसकी खूबसूरती की दूर-दूर तक शोहरत थी। शायरी में भी वह अपना दखल रखती थी। अकबर ने भी उसकी तारीफ सुनी और उसे देखने का शोक पैदा हुआ। इन्द्रजीत को फरमाइश की कि उसको हाजिर करो। इन्द्रजीत पसोपेश मे पडा। हुक्म न मानने की हिम्मत न थी। उस समय रायपरवीन ने दरबार में जाकर अपना एक कवित्त पढा जिसका मतलब यह था कि 'आप आइने-सियासत से वाकिफ है, मेरे लिये एक ऐसी राह निकालिये कि आपकी आन भी कायम रहे और मेरी अस्मत पर दाग भी न लगे।'

> जामे रहे प्रभु की प्रभुता अरु
> मोर पतिव्रत भग न होई।

इस कवित्त ने इन्द्रजीत की हिम्मत मजबूत कर दी और उसने रायपरवीन को शाही दरबार में न भेजा। अकबर इस पर इतना बौखलाया कि उसने इन्द्रजीत पर हुक्म न मानने का जुर्माना एक करोड़ रुपया कर दिया। मालूम नहीं यह वाकया कहाँ तक सही है क्योंकि अकबर की कुल लगान वसूली बीस करोड़ सालाना से ज्यादा नही थी। एक करोड की रकम एक ऐसे जुर्म के लिये निहायत नाकाबिल ख्याल कहा जा सकता है। बहरहाल जुर्माना हुआ। अब इन्द्रजीत को किसी ऐसे मीठे जबान वाले आदमी की जरूरत हुई जो इस जुर्माने को माफ करवा सके।

केशव की ओर उनकी नजर गयी। वह आगरा पहुँचे। वहाँ राजा बीरबल अकबर के खास दरबारियो में थे और उनके मिज़ाज को समझते थे। वह खुद भी आला दर्जे के शायर थे और शायरों की कद्र भी करते थे। केशव ने उनका दामन पकड़ा और उनकी शान में एक कवित्त कहा। बीरबल उससे इस तरह खुश हुए कि अकबर से सिफारिश करके केवल जुर्माना ही नही माफ करवा दिया बल्कि छह लाख हुडिया जो उनकी जेब मे थी निकालकर उन्हें दे दिया। अगर यह वाकया सही है तो उस जमाने की कविता के प्रति प्रेम और उदारता का यह एक अनोखा मिसाल है। कैसे दानी लोग थे कि एक-एक कवित्त पर लाखो लुटा देते थे। हम यह नही कहते कि यह दान मौके के हिसाब से था या ऐसी बड़ी रकमे इससे ज्यादा अच्छे काम के लिये न खर्च हो सकती थीं लेकिन इससे कौन इन्कार कर सकता है कि वे बड़े जिगरे के लोग थे। फ़िजूल खर्च के लिये बदनाम होना चाहते थे लेकिन कजूसी की बदनामी गवारा न थी। केशव यहाँ की कामयाबी से खुश होकर विदा हुए और ओरछा पहुँचे। ओरछा में उनका ... स्वागत हुआ

ओर वह अब राजदरबारियों मे शुमार होने लगे। उधर रायपरवीन ने अकबर के पास एक दोहा लिखकर भेजा जिससे उसकी गहरी सूझबूझ का पता लगता है -

बिनती रायप्रवीन की सुनिये साह सुजान

जूटी पातर भखत है बारी बायस स्वान

यानी जूठी पत्तल बारी, कुत्ते वगैरह खाते है—मेरी यह अर्ज कबूल हो। इस दोहे का अकबर पर जो असर हुआ होगा उसका अन्दाज किया जा सकता है। उसने फिर रायपरवीन का नाम नहीं लिया।

केशवदास ने अपनी यादगार के रूप मे चार रचनाए छोडी है। उनमें दो को तो जमाने ने भुला दिया लेकिन दो जो अभी भी जानी जाती है उनमें एक है—'कविपिया' और दूसरी 'रामचन्द्रिका'। 'कविपिया' मे कवि ने अपनी जिन्दगी के हालात और अपनी कविता के दरियादिल कद्रदानों के बारे मे लिखा है। इसके अलावा इसमें कविता के गुण दोष और प्राकृतिक सौन्दर्य आदि पर भी लिखा है। कवि ने इस रचना मे अपनी सारी काबलियत दिखा दी है और इसका कई मोको पर बडे गर्व से जिक्र भी किया है लेकिन जाहिर है कि ऐसी किताबे आम लोगो में लोकप्रिय नही हो सकती। मगर कवियो के समाज में आज भी इसकी इज्जत की जाती है और नये कवियो के लिय इसका पढना जरूरी समझा जाता है। सच तो यह है कि इस किताब ने केशव का शुमार आचार्यो म कर दिया। कवि अपनी कविता का रुतबा उसमें लगी मेहनत के आधार पर कायम करता है। चूँकि ऐसी पांडित्यपूर्ण रचना मे कवि का इशारा दूसरे कवियो की ही तरफ होता है इसलिये उसे कदम-कदम पर सम्हलने की जरूरत होती है कही उसके आचार्यत्व का दावा उपहास का विषय न बन जाय। आलोचक बड़ी गम्भीर और पैनी निगाह से इसके दावे की जाँच पड़ताल करते हैं। और उसके गुणों को चाहे एक बार नजर अन्दाज कर जाये पर दोषों को हरगिज नहीं छोड़ते। वह देखते हैं कि जिन उसूलों को वहाँ स्थापित किया गया है उनकी पाबन्दी उन्होंने खुद भी की है कि नहीं। अगर कवि इस मेयार पर पूरा न उतरा तो सजावार समझा जाता है। सब दरबारों मे रिश्वत चलती है पर कवियों के समाज में रिश्वत की बात नही चलती। यह अदालत कभी रहम करने की गलती नही करती। इस दरबार ने 'कविप्रिया' को तौला परखा और केशवदास को भाषा के कवियो की उस मंडली मे तीसरा दर्जा दे दिया जिसमें पहला दर्जा सूर का और दूसरा तुलसी का था।

लेकिन जैसा हम कह चुके है कि 'कविप्रिया' की शोहरत खास लोगों तक ही सीमित है। आम लोगों मे जो इन्हें लोकप्रियता मिली है वह उनकी जीवन्त रचना 'रामचन्द्रिका' की वजह से। इसमें रामचन्द्र की कहानी लिखी गयी है लेकिन केशव ने उनको अवतार मानकर और खुद सच्चा भक्त बनकर अपने आपको एकदम बेजबान नहीं कर दिया है। उन्होने तुलसीदास की तुलना में ज्यादा आजादी से काम लिया है और जहाँ कहीं रामचन्द्र या दूसरे चरित्र में कोई ऐब नजर आया उन्होंने उसे आदर्श बनाकर पेश

ने रावण के साथ अन्याय किया है और उसे एक हठी, घमंडी, खुदपरवर, बुरी हरकतों वाला और ऐबों से भरपूर राजा के रूप में पेश किया है। हालाँकि इन बुराइयों के बावजूद वह रावण का कोई ऐसा आचरण न दिखा सके जो इन बुराइयों को साबित करता। रावण ने अगर कोई गुनाह किया तो यह कि उसने रामचन्द्र को हर आदमी से बड़ा मानकर अपने आपको उनके हवाले नहीं किया। विभीषण रावण का छोटा भाई था। मुमकिन है वह खुदा से खौफ खाने वाला नेम धरम का पक्का रहा हो। मुमकिन है उसे रावण के सियासी तरीके और उसका बर्ताव न पसन्द आता हो लेकिन यह कोई वजह नहीं कि वह अपने भाई के दुश्मन से मिल जाये और घर का भेदी बनकर लंका ढाये। उसकी यह हरकत कौमी निगाह से बहुत बुरी और लोमड़ी की तरह चालबाजी वाली है। इसके बावजूद तुलसीदास ने उसे आस्तीन के साँप के बदले भक्त बनाकर दिखाना चाहा है। मगर उसके चरित्र को शायराना रंग में रंगने के बाद भी वह उसे केवल बगुला भगत बनाने में ही कामयाब हुए है। हिन्दुस्तान के लिये जयचन्द ने जो किया, राजपूताना के लिये समरसिंह ने जो किया, दारा के लिये सरहंगों ने जो किया वही विभीषण ने रावण के साथ किया। रामचन्द्र के हाथों ऐसे चालबाज की वही दुर्गत होनी चाहिये थी जो सिकन्दर के हाथों सरहंगों की हुई थी लेकिन रामचन्द्र ने उसे राजगद्दी देकर मानो उसकी गद्दारी और कुनबाकुशी को उकसाया है। जिस कथा पर सारी कौम आस्था रखती हो उसमें ऐसे गद्दार और धोखेबाज की हरकतों को गैरत की नज़र से न देखना बहुत अफसोस की बात है। हिन्दुस्तान का इतिहास गद्दारी और दगाबाजी से भरा है लेकिन क्या अजब है विभीषण को उचित दंड देना इन गुमराहियों में से कुछ को ठीक कर सकता। आज अगर इंग्लैंड के संसद का कोई सदस्य इन्साफ और नैतिकता के आधार पर किसी ऐसी बात की हिमायत करता है जिससे इंग्लैंड को नुकसान पहुँचता है तो उस पर चारों तरफ से नफरत की बौछार पड़ने लगती है। यह देश प्रेम का दौर है जब जाति और कुनबे के हित को मुल्क के ऊपर न्योछावर कर दिया जाता है। ताज्जुब यह है कि संस्कृत के कवियों ने विभीषण के बर्ताव पर गौर नहीं किया और यह काम केशवदास के लिये छोड दिया। केशव एक राजा के दरबारी थे। शाही दरबार के कायदे और अदब से वाकिफ थे। देशप्रेम की वकत समझते थे। चुनाचे उन्होंने रामचन्द्र के बड़े लडके लव की ज़बान से विभीषण को खूब खरी खोटी सुनाई है। जब रामचन्द्र अपना दल सजाकर लव के मुकाबले में चले तब विभीषण भी उनके साथ था। लव ने उसे देखकर खूब आड़े हाथो लिया, 'जालिम! खानदान के नाम पर दाग लगाने वाला। अगर तुझे रावण का काम पसन्द न था तो जिस वक्त रावण रामचन्द्र की बीवी को हर लाया था उसी वक्त तू रावण को छोडकर राम के पास क्यो नही चला आया? तुझ पर लानत है। तू जहर क्यों नहीं पी लेता। जाकर चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरता? तुझे अब भी शरम नही आती की तू हथियार बाँध कर लडने निकला है। बदकार! तुझे अपनी भाभी से शादी करने मे शर्म नहीं आयी जिसे तूने कई बार माँ कहकर पुकारा होगा।'

संस्कृत में पद्यबद्ध लिखने के मुख्य रूप से दो तरीके हैं एक में

कवि की निगाह कहानी पर रहती है। वह किस्से को मुख्य समझता है और अलंकारों को गौण। दूसरे में कवि की निगाह मुख्य तौर से अलंकारो और काव्यगत चमत्कार पर होती है। किस्से को वह केवल काव्यात्मक कमाल और रचना कौशल का जरिया मात्र समझता है। पहला तरीका वाल्मीकि और व्यास का है दूसरा कालिदास और भवभूति का। तुलसीदास ने पहले तरीके को अख्तियार किया। केशव ने दूसरे को और अपनी कवित्व योग्यता की दृष्टि से उनका यह चुनाव शायद अच्छा भी रहा क्योंकि उनमें वह शायराना नजाकत और हुस्न जज़बात नही था जिसने तुलसी को सदाबहार फूल बना रखा था। इस कमी को पूरी करने के लिये भाषा में साज-सजावट और अलंकार की जरूरत थी। यही कारण है कि केशवदास की कविता कठिन है लेकिन इसके कठिन होने की एक वजह यह भी है कि उस समय तक हिन्दी भाषा उतनी प्रौढ नही हुई थी। विद्वानों के समाज मे संस्कृत का चलन ठीक उसी प्रकार था जैसे सौदा के जमाने में फारसी का। चुनांचे केशव और तुलसी दोनों भाषा मे कविता करते हुए झेपते थे और इस डर से कि कही उनका भाषा प्रेम सस्कृत की अज्ञानता की वजह न मानी जाय वे अक्सर अपने ज्ञान का सबूत देने के लिए सस्कृत के कठिन शब्दों का इस्तेमाल करते थे। तुलसीदास चूँकि संत थे उन्हे किसी की तारीफ या निन्दा की परवाह न थी लेकिन केशव तो राजा के दरबारी थे और बड़े-बड़े पंडितों के बीच इनका उठना बैठना था इसलिए इनका मुश्किल पसन्द होना लाजमी था। केशव मजहब के मामले मे लकीर के फकीर न थे। पूजा पाठ को मुक्ति का जरिया नही मानते थे। गगा स्नान और मूर्ति पूजा को वे मूर्खों की रस्म समझते थे। वे अद्वैत ब्रह्म के उपासक थे, एक परमात्मा की पूजा पर यकीन करते थे। देवताओं को उन्होंने बनावटी और आडम्बरपूर्ण कहा लेकिन इसके साथ ही आम जनता के लिये परमात्मा की अद्वैतता कायम करने की कभी कोशिश नही की। उनके लिये तो उन्होने केवल नाम साधना को काफी बताया। औरतों के लिये पतिव्रता धर्म को खास फर्ज बताया जो सनातन हिन्दू धर्म का खास अंग है। हालाँकि अब बदले हुए जमाने में पुराने ख्यालों मे काफी तब्दीलियाँ आ गयी हैं और औरत की हस्ती अब केवल अपने पति पर ही कायम न रहकर एक अलग सूरत अख्तियार कर चुकी है। औरतों के समाज मे अब अपने हक की माँग हो रही है। हालाँकि यह तबदीली अभी अपने आज़माइश के स्तर पर ही है और पुराने उसूल भी अभी जारी है। उन उसूलो में अभी कुछ ऐसी खूबियाँ है जिनसे बड़ा से बडा कट्टर से कट्टर आलोचक नही कर सकता। इस मसले मे हम केशव को कोई दोष नही दे सकते।

बेशक, भाषा के लिहाज से केशव सबसे पहली पंक्ति में बैठने के काबिल हैं लेकिन उनके मिजाज में सहजता की जगह बनावट अधिक हैं। वे गालिब या मीर न थे। वे नासिख और अमीर थे। उनके काव्य में भाषा का चमत्कार और बारीकियाँ अधिक हैं, कोमलता और जजबात कम। हालाँकि इनका काव्य कही-कहीं बहुत मधुर बन पड़ा है और ऊँचाई को पहुँचा है।

है। रामायण, सिकन्दरनामा, शाहनामा, मसनवी मौलाना, रोम की मसनवी "पैराडाइज लोस्ट", इलियड वगैरह की मशहूर कथाएँ इसी ढंग की है लेकिन केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में सैकड़ो बहरो का इस्तेमाल किया गया है। उसमें बहरें कही-कहीं इतनी तेजी से बदली है कि मूल कथा के प्रवाह में फ़र्क आया है। कुछ आलोचकों का ख्याल है कि बहरो के जल्दी-जल्दी बदलने के कारण इनका लेखन खुशगवार हो गया है लेकिन यह कुछ हद तक ज्यादती है। दुनिया की बडी-बड़ी मशनवियाँ शुरू से आखिर तक एकसार हैं। हाँ कहीं-कही कवियो ने स्वाद बदलने के लिये अलग-अलग बहरे इस्तेमाल की हैं। तुलसीदास की रामायण इसकी अनूठी मिसाल है। गालिबन केशव ने महाकाव्य मसनवी शैली में लिखकर इस रग मे तुलसी से टक्कर लेना अपने हक में नुकसानदेह समझा। इससे बदलाव का आनन्द नहीं आता अलबत्ता कहानी के प्रवाह में बाधा आती।

हमने विभीषण की गद्दारी का जिक्र ऊपर किया है। इसके मुकाबले में केशव ने अंगद की स्वामिभक्ति को खूब दिखाया है। अंगद बालि का बेटा था। बालि को रामचन्द्र ने कत्ल किया था और उसका राज्य बालि के भाई सुग्रीव को दिया था। इसलिये अगद को अपने पिता के हत्यारे से दुश्मनी रखना स्वाभाविक था लेकिन जब वह रावण के दरबार में गया और रावण ने राम के इस बर्ताव का इशारा कर उसे फोड़ना चाहा तो अगद ने रावण को खूब दाँत तोड़ने वाले जवाब दिये। अपनी स्वामिभक्ति जाहिर करने के जोश मे वह क्या कह रहा है इसका उसने ख्याल न रक्खा। अंगद के दिल मे दुश्मनी थी और जरूर थी। आखिर में उसने उसको जाहिर भी किया लेकिन जिससे एक बार रिश्ता कायम कर लिया। उसके दुश्मन के अगुआ के सामने इन्कार करना मर्दानगी के खिलाफ था।

अब हम आपके सामने विचार करने के लिये केशव की कुछ कविताओं को मिसाल के तौर पर पेश करते हैं। उनके काव्य को हूबहू असली रूप में न लिखकर हमने उसके सार को यहाँ पर लिखा है—

1 कवि ने पंचवटी की तारीफ की है। कहता है कि यहाँ गम और तकलीफ की चादर तार-तार हो जाती है और दिल दगा फरेब से मुक्त हो जाता है। उसके मोहक नजारों से सन्यासियो तक का ध्यान भंग हो जाता है।

2 रावण सीता को हर ले गया है और राम वियोग में विकल होकर पेड़ों और लताओं से सीता का पता पूछते फिरते हैं। वह उसकी ओर मुखातिब होकर कहते है— 'चम्पा भौंरे को अपने पास नही आने देती इसलिये उसमें दर्द नहीं है। अशोक ने गम को भुला दिया है इसलिये इसमे भी कोई दर्द नही है। केवड़ा, केतकी और गुलाब कटीले हैं। वे दर्दे दिल से वाकिफ नहीं। मैं इसीलिये तुम्हारी खिदमत में आया हूँ कि सीता का पता बताओ। तुम खामोश क्यों खड़े हो?'

3 हनुमान लका में सीता जी को देखने गये। उन्हें अशोक वाटिका में देखकर रामचन्द्र जी की विरह की पीड़ा का बयान इन शब्दों में करते हैं, 'जैसे घने जगल में शेर रहता है वैसे ही रहते हैं यानी जमीन पर सोते बैठते हैं आराम की जरा भी

ख्वाहिश नही। जैसे उल्लू दिन की राशनी की तरफ आंख उठाकर नहा देखता उसी तरह रामचन्द्र किसी चीज की तरफ नही देखते। जैसे चकोर चाँद को देखकर बेकरार हो जाता है वैसे ही चाँद को देखकर रामचन्द्र के दिल की बेचैनी बढ़ जाती है। मोर की आवाज सुनकर जैसे साँप छिप जाता है उसी तरह रामचन्द्र छिप जाते है। वर्षा से जैसे मदार का पेड़ जल जाता है उसी तरह रामचन्द्र घुलते जाते है। भौंरे की तरह इधर-उधर घूमा करते हैं। योगी की तरह रात को जागते हैं और तेरे ही नाम की रट लगाते हे।

4. शायर ने शरद ऋतु को एक सुन्दरी माना है। इस मौसम मे कुन्द खिलता हे ये गोया उस सुन्दरी के दाँत हैं। चाँद उसका मुखड़ा है। इस मौसम मे चाद बहुत चमकता है। राजा लाग इन्ही दिनो पूजा करके दरबार को सजाते हैं। दरबार के चवर इस हसीना के बाल है। उनके कमान उसकी भौंहे हैं। खंजन पक्षी इसी मोसम मे आता है। वह इस हसीना की आँख है। इस मौसम में कमल खिलते है, वह इस हसीना के पाँव हैं। स्वाति की बूँद से मोती बन जाता है। ऐसी कवि प्रसिद्धि है। यह गोया उस हसीना के हार हैं। इस मौसम में बादल आसमान से मिल जाता है गोया कि हसीना ने अपना सीना नूरानी कपडे मे छिपा लिया है। इन दिनों चाँदनी खूब निखरती है गोया कि यह उस हसीना के लिये चन्दन का लेप है। इस मौसम में हस आते है, ये गोया इस हसीना की मस्तानी चाल हैं। इन गुणों वाली सुन्दरी दिलों को वश में कर लेती है।

रणजीत सिंह

हिन्दुस्तान के बादशाहों मे शायद ही काई ऐसा बादशाह हो जिसकी किसी पश्चिमी इतिहासकार और शोधकर्त्ता ने इतने विस्तार और गहराई से चर्चा की हो जितनी पंजाब के महाराजा रणजीत सिह की। उनके मिजाज़, उनके बर्ताव, उनकी हकपसन्दी, उनकी बहादुरी, उनकी सियासी काबलियत, उनकी मेहमाननवाजी, उनकी गरमजोशी और ऐसे ही अनेक गुणों से सम्बन्धित इतने किस्से मशहूर थे जिन्हें सुनकर योरप के मनचले लेखक और यात्रियों के दिलों में खुद ब खुद ख्वाहिश होने लगती थी कि चलकर ऐसे बाकमाल शख्स को देखें और उनमें जो भी आता महाराज के अच्छे बर्ताव और महानता का ऐसा गहरा असर दिल पर लेकर जाता कि पोथी की पोथी लिखने पर भी उनकी तारीफ पूरी न कर पाता।

योरप में सिराजुद्दौला, मीर ज़ाफर और अवध के नवाबों आदि की दास्ताने पढ-पढकर यह आम धारणा बन चली थी कि हिन्दुस्तान में काबिल शासक पैदा करने की ताकत ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा वहाँ कभी-कभी लुटेरे सिपाही अलबत्ता दिख जाते है और बस। मगर महाराज की शख्सियत ने इस आम धारणा का बड़े जोरों के साथ खंडन कर दिया और योरप की जनता को यह दिखा दिया कि बाकमाल शख्स को पैदा करना किसी मुल्क या कौम की मिलकियत नहीं बल्कि ऐसी शख्सियत हर मुल्क और कौम मे पैदा होती रहती है। हालाँकि रणजीत सिह के जीवनीकारों पर भी चली आती हुई धारणा का असर बाकी था और उनकी जीवनी लेखन के सिलसिले में वे इस ख्याल को अपने दिल से निकाल नहीं पा रहे थे लेकिन महाराज की शख्सियत ने उनकी कलम से अपनी अच्छाइयो को लिखवा ही लिया जो इस बात को गलत साबित करती है कि 18वी शताब्दी म ऐसा इन्सान सिवाय नेपोलियन बोनापार्ट के कोई और पैदा ही नही हुआ। सच पूछा जाय तो उन हालात और वाकयात को देखते हुए जिनके बीच रणजीत सिंह को काम करना पडा। यह कह सकते हैं कि शायद नेपोलियन मे भी वे गुण न थे जो महाराज मे थे। फ्रांस एक आजाद और आत्मनिर्भर मुल्क था। वहाँ के विचारको ने जनता में लोकतान्त्रिक मूल्यों का बीज बो दिया था। नेपोलियन को अधिक से अधिक यह करना पडा कि मौजूदा तैयार साधनों को इकट्ठा करके एक इमारत खडी कर दिया लेकिन इसके ठीक विपरीत हिन्दुस्तान सदियों से पैरों तले कुचला जा रहा था और इसके साथ रणजीत सिंह को

उन लोगों का मुकाबला करना था जो मुद्दतो से भारत के भाग्य विधाता रह चुके थे। बेशक नेपोलियन बोनापार्ट का रुतबा फ़ौजी सिपहसालार के रूप में बहुत ऊँचा था मगर मुल्की इन्तजाम और प्रशासन की दृष्टि से रणजीत सिंह उनसे बहुत आगे बढ़े हुए थे। हालाँकि उनका कायम किया हुआ राज्य उनके बाद बहुत दिनों तक नहीं चल सका मगर इसमें उनका कोई कसूर नहीं था—इसकी वजह आपसी मतभेद और फूट थी जिसने हिन्दुस्तान को हमेशा जलील और बदनाम किया है और जिसे दिलो से निकालने मे रणजीत सिह भी कुछ न कर पाये।

रणजीत सिह की पैदाइश और लड़कपन का समय अनेक आन्दोलनों और हलचलों से भरा था। वह सिक्ख कौम जो गुरु गोविन्द सिह के दिलो दिमाग से उपजी थी, जिसे शहीदों ने अपने खून से सींच कर जवान किया था, बहादुरी, दिलेरी और सिपहगिरी के मैदान में अपने झंडे गाड़ चुकी थी।

सन् 1862 में जब सिक्खों ने सरहिंद का किला जीता जिसे अहमदशाह अब्दाली भी उनसे छीन न सका, सिक्खों की शक्ति और ताकत बढ़ने लगी लेकिन वह जातीय प्रेम जो चन्द दिनों के लिये सिक्खो मे गर्म जोशी से उभरा था खत्म हो चुका था। चारों तरफ दलबंदी का बाजार गर्म था। कितनी ही छोटी-छोटी मिसलें कायम हो गयी थी जिनमें रात-दिन खून-खराबी होती रहती थी और वह मकसद जिसे लेकर सिक्ख कौम पैदा हुई थी, कुछ हद तक पूरा जरूर हुआ लेकिन इसके पहले कि उसमें पूरी कामयाबी हासिल हो सिक्खों मे खुद बिखराव और अलगाव पैदा करने वाली ताकतों ने जोर पकड़ लिया और उनका वह खास मकसद उनकी आँखों से ओझल हो गया। 18वीं शताब्दी के अन्त मे परिस्थिति बहुत नाजुक हो रही थी। विद्रोह और सीनाजोरी का राज था। जिस किसी ने कुछ लुटेरे सिपाहियों का एक दल बना लिया वह अपने किसी कमजोर पड़ोसी को दबाकर चार दिनों की हुकूमत कायम कर लेता था लेकिन कुछ ही दिनो में उसे खुद भी किसी अपने से ज्यादा ताकतवर शख्स के लिये जगह खाली करनी पड़ती थी। न कोई कानून था न कोई बाकायदा इन्तजाम। अमन चैन यतीम बच्चों की तरह पनाह ढूँढते फिर रहे थे। हर एक गाँवका राजा अलग, कानून अलग और दुनिया अलग थी। आत्मसम्मान सिक्ख धर्म की खास सीख है और न केवल सिक्ख धर्म की बल्कि हर धर्म मे मानव के सम्मान की सीख मौजूद है। यह आला और पाक सबक है। किसी इन्सान को क्या हक है कि वह दूसरों को अपना गुलाम बनाये और उससे फ़ायदा उठाये। दुनिया की नियामतों मे हर शख्स का हिस्सा बराबर है। जिस वक्त तक सिक्खों ने मानवता को इज्जत दी, उस पर अमल किया उस समय तक उनकी ताकत जोर पकड़ती गयी मगर जब गरूर और खुदगर्जी ने उनके दिलों मे घर कर लिया, दौलत और ताकत की चाट पड़ गयी तब उनके सम्मान को गहरा सदमा पहुँचा जिसका नतीजा यह हुआ कि बादशाहतें कायम हो गयीं और भाइयों में आपस में मारकाट होने लगी। गुरु गोविन्द सिंह ने आत्मसम्मान का जोश तो जगाया लेकिन उस आपसी हमदर्दी का जोश न पैदा कर सके जो भाईचारे के लिये संजीवनी बूटी का काम करता है

रणजीत सिंह सन् 1780 में गुजराँवाला में पैदा हुए। यह आम धारणा है कि उनके पिता एक गरीब जमीदार थे लेकिन यह सही नही। इनके पिता सरदार महानसिंह सकर चकिया मिसल के सरदार और बड़े सम्मानित व्यक्ति थे। वे सत्ताइस साल की उम्र मे ही गुजर गये। रणजीत सिंह उस समय केवल दस वर्ष के थे और इसी उम्र मे उनके सिर पर खासी जिम्मेदारियों का बोझ आ पडा। मगर अकबर की तरह रणजीत सिंह भी शासन और व्यवस्था की काबलियत माँ की कोख से ही लेकर पैदा हुए थे और इसी उम्र में अपने पिता के साथ कई लडाइयो में शरीक भी हो चुके थे। एक बार किसी घमासान लडाई में वे बाल-बाल बचे। गोया उनका बचपन लडाई के मैदान मे ही गुजरा और इसी की पाठशाला में उनकी तालीम हुई। आठ-दस साल का बालक जिसकी ऑखो से रोज मारकाट का नजारा गुजरता होगा, अपने खानदान के बडे-बूढ़ों को चौपाल मे बैठकर किसी पड़ोसी सरदार पर हमला करने के मंसूबे बॉधते या किसी ताकतवर हमला से बचने की तरकीबे सोचते देखता होगा और ये बातें उसके नरम दिल पर क्या कुछ न असर करती होगी। बाद की घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि यह कमसिन बालक बुद्धिमान और चतुर था। उसे जो कुछ सबक मिला उसकी शख्सियत का हिस्सा बन गया। उसने जो कुछ देखा सबकगीर की नजर से देखा। बारह साल की उम्र में वह सकर चकिया मिसल का सरदार करार किया गया और बीसवीं साल में कुछ अपने पौरुष और कुछ शतरंजबाजी से लाहौर का राजा बन बैठा। इसकी कैफियत दिलचस्प है। 1798 ई० में अहमदशाह अब्दाली का पोता अपने पुरखो के इलाकों को जीतने के इरादे से हिन्दुस्तान पर चढा और लाहौर तक चला आया। उसका मसूबा यह था कि वहाँ ठहरकर जीते हुए इलाकों से कर वसूल करें मगर इसी समय उसे खबर मिली कि उसके मुल्क मे उपद्रव हो रहा है। वह घबडाकर लौटा लेकिन झेलम में बाढ़ आई थी नतीजन युद्ध का सब सामान वह अपने साथ न ले जा सका। उसकी कई तोपे उसके साथ न जा सकी। सयोग से रणजीत सिंह कहीं पास में ही थे। वे शाहजमाँ से मिले तो उसने कहा कि अगर तुम मेरी तोपें फारस भिजवा दो तो उसके बदले मैं तुम्हें लाहौर दे दूँ। रणजीत सिह ने इस शर्त को खुशी से मंजूर कर लिया। हालाँकि शाहजमाँ का यह वायदा एकदम झूठा था। अगर रणजीत सिंह खुद ताकतवर न होते तो इससे कुछ भी फायदा न उठा पाते। उनकी शख्सियत और चारों ओर फैली शोहरत के कारण शाहजमाँ का यह वायदा एकदम पक्का हो गया। इसके थोड़े ही दिनों के बाद रणजीत सिह ने अमृतसर पर भी कब्जा कर लिया और अब उनकी शान और ताकत के सामने भारी सिक्ख मिसलें फीकी पड़ गयीं।

रणजीत सिंह को पश्चिमी जीवनीकारों ने खुदगर्जी, दगाबाजी, बेरहमी और बेवफाई के फतवे दिये हैं। किसी हद तक इनके फ़तवे ठीक थे। मुल्की मामलात में उस समय के बुजुर्गों ने किसी हद तक शतरजबाजी और सख्ती की इजाजत दी है जिसे दूसरे शब्दों में बेवफाई और बेरहमी कह सकते हैं। बिना इन उपायों के सल्तनत का नया पौधा कभी जड़ नहीं पकड़ सकता। रही खुदगर्जी—यह इलजाम हर आदमी पर आम तौर से और

हर राजा पर खास तौर से लगाया जा सकता है।

आज तक किसी कौम में ऐसा कोई बादशाह नहीं हुआ और शायद भविष्य मे भी न हो जिसने अपनी कौम पर महज नेकनीयती या जनता की राय से हुकूमत की हो। हमको तो यह मानने मे भी हिचक है कि यह नेकनीयती खुदगर्जी को दबाये हुए थी। खुदगर्जी तो हुकूमत के पैमानों में शामिल है। यह भी याद रहे कि रणजीत सिंह की कथनी और करनी तथा हुकूमत के ढग को मौजूदा पैमाने से परखना नाइन्साफी है। सौ वर्ष गुजरे जब रणजीत सिंह ने लाहौरी दरबार के रंगमंच पर अपनी भूमिका अदा की थी और इन सौ सालो मे तहजीब, ज्ञान और रहन-सहन के तौर तरीको में बड़ी तेजी से तरक्की हुई है। हर जमाने मे आम जनता का पैमाना बदलता रहता है। वह काम जो आज से सौ वर्ष पहले जायज समझा जाता था आज नाजायज है और मुमकिन है कि अक्सर वह काम जिसे आज हम बेझिझक कर लेते है आज से सौ साल बाद शर्मनाक समझा जाने लगे। सौ साल का जमाना तो बहुत होता है। अभी पच्चीस साल से ज्यादा नहीं गुजरे कि होली के दिनों में शहर के हर एक तबियतदार रईसों को वेश्याओं के साथ नशे में धुत्त गलियों मे सैर करते देखना एक मामूली नजारा था। मगर अब यह शर्मनाक समझा जाता है। आज तो कोई शरीफ़ आदमी शराब पीकर जनता के बीच निकलने की हिम्मत न करेगा। इन कायदों को नजर मे रखकर अगर रणजीत सिंह की बातों और कामों को जाँचे तो हम यकीनन इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि शाही पैमाने से देखते हुए उनसे बहुत कम काम ऐसे हुए होंगे जिनसे उन्हें शर्मिन्दगी उठानी पड़ी होगी क्योंकि ये सब शाही तौर-तरीके हैं।

महाराजा रणजीत सिंह आला दर्जे के पक्के इरादे वाले, मेहनती और दूरंदेश व्यक्ति थे। उनकी हिम्मत ने हार मानना सीखा ही न था। मेहनत का यह आलम था कि अक्सर दिन के दिन घोड़े पर ही गुजर जाते। अक्ल का माद्दा उनमें बहुत था। हालाँकि किताबी शिक्षा उन्हें नहीं मिली थी लेकिन बात-बर्त्ताव और देख सुनकर उन्होंने अपनी काबलियत यहाँ तक बढ़ा ली थी कि योरप के यात्रियों को भी इनकी जानकारी पर हैरत होती थी। साहस तो उनकी प्रकृति का अग था। बहादुरी के खास तौर से साहसिक यात्रा सम्बन्धी किस्से उन्हें बहुत पसन्द थे। योरप की नई तहकीकातो और ईजादो की उन्हें तलाश रहती थी। इनका पहनावा बहुत सादा और दिखावे से दूर होता था। हालाँकि वे खुद खूबसूरत नहीं थे और डील डौल के हिसाब से भी बहुत खुशनसीब लोगों में नहीं थे लेकिन यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि उनके महान गुणों ने उनकी बदसूरती को ढँक लिया था। उनके चेहरे पर बदनुमा चेचक के दाग थे और एक आँख भी इसी में जाती रही थी मगर बावजूद इसके उनके चेहरे पर एक तेज बरसा करता था। फ़कीर अजीजुद्दीन लाहौर के दरबार में विदेश विभाग का काम देखते थे। एक बार डिप्लोमैसी के कागजात लेकर लार्ड बेंटिंग की सेवा में गये। बातचीत के दौरान लार्ड बेंटिग ने फ़कीर से पूछा कि महाराज की कौन सी आँख जाती रही है? फकीर ने उसके जवाब में कहा 'जनाब। हमारे मालिक के चेहरे पर इतना तेज है कि हममें से किसी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि उनकी तरफ

आँख उठाकर देख सके।' जवाब हालांकि झूठ से खाली नही लेकिन इससे उस रोब का पता लगता है जो दरबार के सेवकों के दिलों पर छाया हुआ था।

रणजीत सिह पैदाइशी काबिल शासक थे। उनमें कुछ ऐसे गुण थे, कोई ऐसी ताकत थी, कोई ऐसा आकर्षण था जो बड़े-बड़े बागी और घमंडी को भी अपने सामने झुकने को मजबूर कर देता था। इन्सान को परखने की उनमें अद्‌भुत शक्ति थी और उनकी कामयाबी बहुत हद तक इन्ही गुणों पर निर्भर थी। कौन व्यक्ति किस काम का है, काम को कितनी काबलियत से कर सकता है इसको समझना इतना आसान नही। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब बड़े-बड़े बादशाह हुए। मगर उनकी सल्तनत मे आये दिन बगावत और जालसाजी होती रहती थी और सूबेदारों को ठीक करने के लिये अक्सर दिल्ली से फोज रवाना करनी पड़ती थी। रणजीत सिह की हुकूमत मे ऐसी घटना कभी-कभी होती थी और यह बड़े हैरत की बात है कि इस बुरे जमाने में भी उनके सेवक इतनी वफादारी से उनकी सेवा करते थे। महाराज धर्म निरपेक्षता के जिन्दा मिसाल थे। खास तौर पर दरबारी कर्मचारियो की बहाली में वे मजहबी ख्याल को कभी बीच में नहीं आने देते।

इस नीति में वे अकबर से भी आगे बढ़े हुए थे। सिक्खों को मुसलमानों से कभी कोई लाभ नहीं हुआ बल्कि मुसलमानों ने तो इनका नामोनिशान तक खत्म करने में कोई कोर कसर न उठा रक्खा था मगर रणजीत सिंह इन तंग ख्यालो से एकदम दूर थे। उनके राज्य में कई महत्वपूर्ण ओहदों पर मुसलमान मौजूद थे। फकीर अजीजुद्दीन, नूरुद्दीन इमामुद्दीन सब के सब ऊँचे ओहदों पर थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूत हर जाति से इन्होंने हुकूमत चलाने मे मदद ली। इन्सानी काबलियत जहाँ कहीं उन्हें दिखी उसकी कद्र की। राजा दीनानाथ, दीवान मुहकम चन्द, रामपाल मिश्र, दीवान साँवलमल—ये लाहौर दरबार के खास उमरा थे और बड़े-बडे ओहदों पर बहाल थे। रणजीत सिंह की पैनी दृष्टि ने भाँप लिया था कि अगर इन्साफ और अमन चैन से हुकूमत करना है तो बिना इन फिरको के काम न चलेगा जो लम्बे अर्से से सल्तनत की व्यवस्था में हाथ बँटाते आये थे। उस वक्त तक सिक्खों ने जंग के अलावा सल्तनत की व्यवस्था मे अपनी काबलियत का सबूत नहीं दिया था। इसीलिये फ़ौजी ओहदे ज्यादातर सिक्खों के हाथ में थे और दीवानो तथा राजस्व मुसलमानो, ब्राह्मणों, कायस्थो और क्षत्रियों के हाथ में। हाँ, जंग के समय सिपहसालार ज्यादातर सिक्खों में से ही बहाल किये जाते थे। उस वक्त से अब तक सिक्ख राजाओं ने धर्म निरपेक्षता को अपना उसूल बना रक्खा है। खासतौर पर नाभा, पटियाला, कपूरथला और भिंड में जो सिक्खों की सबसे बड़ी रियासतें हैं; इनके उदार विचार साफ़ तौर से दिखते हैं। अलबत्ता इस्लामी रियासतों में हालत इसके विपरीत है जैसे हैदराबाद दकन में जहाँ प्रधानमंत्री एक हिन्दू साहब नियुक्त है और इसके अलावा शायद कोई ऐसी रियासत नहीं है जहाँ साम्प्रदायिक उदारता से काम लिया गया हो। हिन्दुओं को साम्प्रदायिक और तग ख्यालों वाला कहना आसान है मगर सच्चाई इसके एकदम विपरीत है इधर हाल ही में महाराजा जयपुर ने प्रधानमंत्री के ओहदे पर एक

उस जमाने मे अक्सर छोटी तबियत वाले बादशाहो का यह कायदा था कि जब दुश्मन से लड़ाई जीत लेते तो या तो उसे मिट्टी मे मिला देते या उसके साथ ऐसी सख्तियाँ करते कि उसके दिल में बगावत और ईर्ष्या की आग भडकती रहती। रणजीत सिंह की नीति इस मामले मे शराफ़त और इन्सानियत की थी जो हालाँकि मौजूदा रिवाज के मुताबिक मामूली बात है लेकिन उस सकट के समय का ख्याल करते हुए बहुत बडी बात थी। वे लडाई जीतने के बाद अपने दुश्मनों के साथ ऐसे प्रेम से पेश आते कि वह उनसे दोस्ती का दम भरने लगता और इस तरह सख्तियों के बजाय सद्व्यवहार से वे उसे प्रेम के बन्धन मे बाँध लेते। मुल्तान पर अनेक घिरावों के बाद उनका कब्जा हुआ और नवाब मुजफ्फर खाँ अपने पाँच बेटों और तीन सो अजीजो के साथ किले के दरवाजे पर मारा गया। रणजीत सिंह ने नवाब के बाकी दो बेटों को दरबार मे बुलाकर उनके वज़ीफ़े तय कर दिये और दरबार में उन्हे सम्मानित ओहदा भी दे दिया। इसी तरह मुहम्मद यार खाँ तिवाना और दूसरी जातियो के हारे हुए सरदारों के साथ भी उन्होने शराफ़त का व्यवहार किया। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि दुश्मन पर फतह मिलने के बाद रणजीत सिंह ने उन्हे जिन्दा दीवार मे चुनवा दिया हो, सरे आम उसका गला कटवा दिया हो या उससे दुश्मनी का बदला लिया हो। जहाँ तक मुमकिन हुआ उन्हीं हारे हुए राजाओं पर उनकी कृपा दृष्टि रहती थी जिन्होंने मर्दानगी और दिलेरी से इनका मुकाबला किया। वे खुद दिलेर थे और दिलरो की इज्जत करते थे। जोधासिंह वजीराबाद का एक सिक्ख सरदार था। राजा किसी वजह से उस पर नाराज़ थे और उसे सबक सिखाना चाहते थे। मगर यह उनको मजूर न था कि इसके लिये कोई फौज भेजी जाय। बस राजा ने बहाने से जोधासिंह को दरबार में बुलाया और उसे गिरफ्तार करना चाहा। जोधासिंह ने फौरन तलवार खींच ली और मरने-मारने को उतारू हो गया। राजा उसकी मर्दानगी पर इतने खुश हुए कि उसी वक्त उसे गले से लगा लिया और आजीवन उसके साथ दोस्ती निभाते रहे।

रणजीत सिंह के पहले सिक्खों की फ़ौज केवल सवारों की होती थी, पैदल को नीची निगाह से देखा जाता था। इसके विपरीत योरप में जग का दारोमदार पैदल सेना पर होता था। अंग्रेज पैदल सेना को भारतीय घुडसवारो के मुकाबले मे कई बार खुल्लमखुल्ला कामयाबी मिली थी। यह देखकर राजा ने अपनी फ़ौज की भी कायापलट कर दी। सवारो के बजाय पैदल फ़ौजें शिक्षित करनी शुरू कर दा और उनके प्रशिक्षण के लिये फ्राँस और इटली के अनुभवी जनरल नियुक्त किये जिनमें से कई तो नेपोलियन बोनापार्ट की शानदार जीतों में भी शरीक हो चुके थे। जनरल बेन्टूरा इसमें सबसे ज्यादा होशियार अफसर था। इन जनरलों की तालीम ने सिक्ख पैदल सेना को योरप की बेहतरीन सेना के मुकाबले में तैयार कर दिया। पंजाब के चुने हुए जवान प्यादों में भर्ती किये जाते थे और राजा की ये कोशिश रहती थी कि सेना के इस अग को ज्यादा बेहतरीन बनाया जाय। सिक्ख पैदल की कड़ी मेहनत का यह हाल था कि महीनों बीस-बीस मील पैदल रोज कूच कर सकते थे। राजा की कुल फौज करीब एक लाख थी और जागीरदारों को मिलाकर सवा लाख

रणजीत सिंह की सल्तनत की सीमा में पंजाब खास, सतलज और इन्डस नदियो के बीच का प्रदेश, कश्मीर, मुल्तान, डेराजान, पेशावर और सरहदी जिले शामिल थे। हालाँकि इनका राज्य बहुत बड़ा नही था लेकिन इसमें हिन्दुस्तान के वे हिस्से शामिल थे जो भौगोलिक दृष्टि से बहुत बीहड़ और ताकतवर बागियों एवं दगाबाजो से भरे थे। यह इलाका हिन्दुस्तान के बादशाहो के जमाने में हमेशा से परेशानियों और मुश्किलातो की वजह रहा था। मुगल बादशाहों के जमाने में अक्सर वहाँ जो फौजे भेजी जाती थी कामयाबी हासिल नही कर पाती थीं। खर्च और जान के लिहाज से लडाई बहुत भयकर होती थी। यह इलाका मजहबी अलगाववादी अनपढ़ मुसलमान फिरकों से भरा हुआ था जो तालीम और तौर–तरीकों से हीन थे। उनकी जिन्दगी का मकसद था—चोरी, डाका ओर लूटपाट। बावजूद इसके कि इस हिस्से मे पचास सालों से अग्रेजी हुकूमत की बहुत सी उपयोगी योजनाए चल रही थीं, वे अभी भी अज्ञान और अशिक्षा के गर्त मे डूबे हुए थे और जब कभी मौका पाते सरहद के हिन्दुओं को और हिन्दू न मिले तो मुसलमानो को अपनी वहशी भावनाओं का शिकार बनाते। रणजीत सिंह को इन फ़िरको से बहुत नुकसान उठाना पड़ा। अनुभवी जनरल और चुनी हुई फौजे अक्सर इन सरहदी लड़ाइयों के भेंट चढ़ जाती थी। यों तो छेडछाड़ बारहों मास होती रहती थी मगर लगान वसूली का जमाना दूसरे शब्दो मे लड़ाई का जमाना होता था। रणजीत सिंह को अगर दक्खिन मे फैलने का मौका हाथ आता तो शायद इन सरहदी लड़ाइयों पर वे कभी ध्यान न देते क्योंकि उन पर हुकूमत करना सिर दर्द मोल लेना था। दक्खिन में ब्रिटिश सरकार ने इनके शासन की सीमा तय कर दी थी और पटियाला, नाभा तथा भिड आदि रियासतो को अपने कब्जे मे कर लिया था। शिक्षा कला और सस्कृति की दृष्टि से रणजीत सिह का जमाना उल्लेखनीय नहीं है। इनकी जिन्दगी तो अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने की कोशिशों में ही गुजर गयी। भवन निर्माण या पत्थरों पर की गई नक्काशी जैसी यादगारे जिनसे मुगल काल की याद अब तक कायम है, ये कुछ न छोड सके क्योंकि ये पौधे तो अमन चैन के वातावरण में ही फूलते–फलते हैं।

रणजीत सिंह की व्यक्तिगत जिन्दगी रश्क के काबिल नहीं। इस दृष्टि से उन्होंने उन कमजोरियों को गले लगाया था जो उस जमाने में रईसों और शरीफो के लिये इज्जत की वस्तुए समझी जाती थी और जिनसे रईसों का समाज आज भी पाक नही। उनकी शादी शुदा रानियाँ थीं और नौ रखैल। दासियों की तादाद तो सैकडो तक पहुँचती थी। जो शादी शुदा रानियाँ थी वे प्रायः बड़े ऊँचे सिक्ख खानदानो की बेटियाँ थीं जिन्हें उनके माता–पिता ने अपनी सामाजिक मर्यादा को बढ़ाने के लिये रनिवास मे दाखिल किया था। अक्सर हरम में साजिशें हुआ करती थीं। शराब पीना सिक्ख रईसो की एक खास कमजोरी थी और राजा बला के शराबी थे। उनकी शराब निहायत दर्जे की तेज होती थी। इसी वजह से कई बार वे फालिज के शिकार हुए और अन्तिम बार का हमला तो जानलेवा ही सिद्ध हुआ। यह हमला 1830 ई० के गर्मी के मौसम में हुआ और साल भर के बाद जान लेकर ही गया मगर इस जानलेवा मर्ज के होते हुए भी महाराज के

जरूरी काम को देखते रहे। उस शेर का, जिसकी दहाड़ से पंजाब और अफगानिस्तान काँप उठता था, अब एक डोली मे सवार होकर फौजो का परेड देखने जाना निहायत दर्दनाक नजारा था। हजारो आदमी उनके दर्शन के लिए सडक के दोनो ओर जमा हो जाते और उन्हे इस हालत में देखकर गम और बेबसी के आँसू बहाते। आखिर मौत का पैगाम आ ही पहुँचा। 27 जून 1839 को महाराज ने शहजादा खडगसिंह को बुलाकर अपना उत्तराधिकारी और राजा ध्यानसिंह को वजीर घोषित किया। पच्चीस लाख रुपया गरीबो और बेसहारा लोगों में बाँटा। शाम के वक्त जब रनिवास में चिराग रौशन हो रहा था महाराज की जिन्दगी का चिराग गुल हो गया। ध्यानसिंह को वजीर पद पर बहाल करना उनकी अन्तिम और भयंकर भूल थी। शायद उस वक्त शरीर की दूसरी शक्तियों की तरह दिमाग भी कमजोर हो गया था। महाराज के देहान्त के बाद छह साल तक का जमाना अराजकता और उथल-पुथल से भरा था। खडग सिंह और उनके पुत्र नौनिहाल सिंह दोनो कत्ल कर दिये गये। अब शेरसिंह गद्दी पर बैठा। इसका भी वही हाल हुआ और अन्तिम सिक्ख बादशाह अंग्रेजी हुकूमत का वजीफाकार हो गया। इस तरह वह आलीशान इमारत जो रणजीत सिंह ने खड़ी की थी छह ही साल मे ढह गई, बिखर गई।

राणा जंग बहादुर

नेपाल के राणा जग बहादुर उन मौका-महल समझने वाले, दूरदर्शी और विद्वान लोगों में थे जो मुल्कों और कौमों को आपसी झगड़ों और मतभेदो से निकालकर तरक्की की बुनियाद डालते हैं। वह उन्नीसवी सदी के आरम्भ में पैदा हुए। यह वो जमाना था जब हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य की ताकत बड़ी तेजी से फैल रही थी। दिल्ली की सल्तनत का चिराग गुल हो चुका था। मराठा उनका लोहा मान चुके थे। सिर्फ पजाब का वह हिस्सा जो रणजीत सिंह के कब्जे में था अभी तक अंग्रेजी प्रभाव से आजाद था। नेपाल भी अंग्रेजी तलवार का मजा चख चुका था और सुगौली समझौते के मुताबिक अपनी सल्तनत का एक हिस्सा अंग्रेजी सरकार की भेट चढ़ा चुका था। वही हिस्सा जो अब नैनीताल कहलाता है। ऐसे नाजुक वक्त मे जब हिन्दुस्तान की रियासतें कुछ तो आपसी झगडे और कुछ अपनी कमजोरियों का शिकार होती जा रही थी, नेपाल का भी वही हश्र होता क्योंकि नेपाल की अन्दरूनी हालत कुछ वैसी ही थी जैसी दिल्ली की सैयद वंश के जमाने में या पजाब की रणजीत सिह की मृत्यु के बाद। राणा जंग बहादुर ने ऐसे नाजुक वक्त में नेपाल की बागडोर सम्हाली और बदइन्तजामी तथा आपसी झगडो को मिटाकर एक मजबूत और बाकायदा हुकूमत कायम की। बेशक इस काम में वह हमेशा उसूलों की पाबन्दी न रख सके। जहाँ जरूरत हुई खुफिया तरकीबें और साजिशों का भी सहारा लिया। यहाँ तक कि उन्हें खुफिया कत्ल और खून से भी अपना दामन काला करना पडा लेकिन शायद उन हालात में ऐसा करना जरूरी भी था। नेपाल की हालत ऐसी हो गयी थी कि इन्सानियत धीरज और उदारता कमजोरी मानी जाने लगी थी। ऐसी हालत में खौफ और आतक ही ऐसा जरिया रह जाता है जिससे दंगाइयो और बागियों को वश में किया जा सके। अगर पजाब के अन्तिम दिनों में जंग बहादुर जैसा काबिल और बहादुर शासक होता तो उसका शायद इतनी आसानी से खात्मा न होता। जंग बहादुर को नेपाल का बिस्मार्क कह सकते हैं।

नेपाल राज्य की बुनियाद सोलहवीं शताब्दी में पड़ी। अकबर के हाथो चित्तौड तबाह होने के बाद राणा खानदान के कुछ लोग अमन की तलाश में यहाँ आये और यहाँ के कमजोर शासक को उनके लिये जगह खाली करनी पडी। तब से वही खानदान हुकूमत करता रहा मगर धीरे धीरे में कुछ ऐसी तब्दीलियाँ हुई कि

की बागडोर वज़ीर के हाथों चली गयी। वजीर अपनी मनमानी करने लगे। राजा केवल बिखरी हुई ताकतों को एकजुट करने का जरिया मात्र रह गया। वजीर जाति के भी दो गुट थे—एक 'पाडे' और दूसरा 'थापा' का। इन दोनों गुटो में आये दिन झगडा होता रहता था। जिस समय पांडे लोग ताकत मे होते थापा खानदान को मिटाने मे कोई कोर कसर न उठा रखते और इसी प्रकार जब थापा ताकत मे होते तो पाडे की जान के लाले पड जाते। राणा जग बहादुर यो तो शाही खानदान मे थे मगर उनकी रिश्तेदारियाँ ज्यादातर थापा खानदान मे थी। जब जग बहादुर ने अपनी तालीम पूरी कर ली उन्हे एक ऊँचा ओहदा मिला। उस समय थापा खानदान सत्ता मे था और भीमसेन थापा वजीर थे। महाराज ने वजीर की बढ़ती हुई ताकत से खौफ खाकर उन्हे झूठे इल्जाम मे कैद कर लिया। भीमसेन ने कारागार मे खुदकशी कर ली। इनके मरते ही इनके परिवार तथा नजदीकी रिश्तेदारो पर आफत आ गयी। इनका भतीजा जनरल मानबर सिह भागकर हिन्दुस्तान चला गया। जग बहादुर को भी देश निकाला हो गया। यह 1837 ई० की घटना है। उस वक्त जग बहादुर की उम्र इक्कीस वर्ष की थी। वह देश निकाला होने के बाद भागकर बनारस आये और यहाँ दो वर्ष तक तबाही की हालत मे फिरते रहे। उन्हें कही चैन न मिला तो फिर 1839 ई० में नेपाल गये। थापा लोगो के खिलाफ अब तक जोश ठडा हो गया था। जग बहादुर का किसी ने विरोध नहीं किया। इन्हे यहाँ अपनी बहादुरी और दिलेरी दिखाने के कुछ ऐसे मौके मिले कि राजा ने खुश होकर इन्हें युवराज सुरेन्द्र विक्रम का मुसाहिब बना दिया। मगर यह नौकरी जंग बहादुर के लिये बहुत खतरनाक साबित हुई क्योकि सुरेन्द्र विक्रम बहुत झक्की और कमजोर दिमाग का नौजवान था। उसे बेरहमाना नजारा देखने का खफ्त था। अपने मुसाहिबो को ऐसे-ऐसे काम करने का हुक्म देता था जिससे उनकी जान पर ही बन आती थी। जग बहादुर को भी कई बार इन जानलेवा इम्तेहानों से गुजरना पड़ा। मगर हर बार वह अपनी फोजी काबलियत या खुशकिस्मती से बच गया। एक बार उसे ऊँचे पुल पर से नीचे भयानक पहाडी नदी में कूदना पडा। इसी तरह एक बार उसे गहरे कुएँ मे कूदने का हुक्म हुआ जिसमे उन भैंसों की हड्डियाँ जमा की जाती थीं जिनकी खास त्योहारों पर वहाँ बलि दी जाती थी। इन दोनो इम्तेहानो में जंग बहादुर अपनी दिलेरी की वजह से कामयाब हुए। खैरियत यह हुई कि इस नोकरी पर इन्हें सिर्फ एक साल रहना पड़ा। सन् 1841 में इनके पिता का देहान्त हो गया और वह महाराजा राजेन्द्र विक्रम के अंगरक्षक बहाल हुए।

युवराज सुरेन्द्र विक्रम सिंह का यह जालिमाना वहशीपन दिनोंदिन बढता गया। दूसरों को एडियाँ रगड़-रगड़कर जान देते देख इसे मजा आता था। यहाँ तक कि कई बार उसने अपनी ही रानियो को पालकी समेत नदी मे डुबवा दिया। महाराजा साहब खुद एक कमजोर, कम अंदेश और नासमझ व्यक्ति थे। राज्य का इन्तजाम बडी रानी किया करती थीं और इनका दबाव कुछ न कुछ युवराज को भी मानना पड़ता था लेकिन अक्टूबर 1841 में इस काबिल रानी का भी इन्तकाल हो गया और उनके मरते ही नेपाल मे ... का दौर शुरू हो गया सुरेन्द्र विक्रम का अब किसी का डर न था उसने

दिल खोलकर जुल्म करना शुरू कर दिया। राजा साहब इन हरकतों को रफा-दफा करने के काबिल न थे। नतीजन राज्य के कर्मचारियों तथा अवाम सबकी नाक में दम हो गया। आखिर कोशिश यह होने लगी कि महाराज को अपने अख्तियार से वंचित कैसे किया जाय और छोटी रानी लक्ष्मी देवी के हाथों रियासत की बागडोर कैसे दे दी जाय?

लक्ष्मी देवी युवराज की सौतेली माँ थी और खुद अपने बेटे रण विक्रम को तख्त पर बैठाने की चाले सोच रही थी। इसलिए रियासत का इन्तजाम इनके हाथों मे आने से यह उम्मीद की जाती थी कि युवराज के इस कातिलाना जुल्म का खात्मा हो जायेगा। चुनाचे दिसम्बर 1842 में सब कर्मचारी और अवाम तथा वहाँ के नामवर लोग जिनकी तादाद करीब 700 थी इकट्ठे हुए और फौज के साथ बैड बजाते हुए राजा साहब के सामने हाजिर हुए और उनसे एक फरमान पर दस्तखत करने की फरियाद की कि सल्तनत का इन्तजाम और बागडोर लक्ष्मी देवी के हाथ में दे दिया जाय। महाराज पहले तो टालमटोल से काम लेते रहे और एक महीने तक वायदो को टालते रहे लेकिन अन्त में इस फरमान को मान लेने के सिवाय और दूसरा कोई चारा नजर नही आया।

रानी लक्ष्मीदेवी पाँडे लोगों को बुरा और थापा लोगों को अच्छा समझती थी। नतीजन अख्तियार पाते ही उन्होंने जनरल मोतबर सिंह को नेपाल बुलाया जिन्हें अंग्रेजी सरकार ने शिमला में नजरबन्द कर रक्खा था। मोतबर सिह जब नेपाल आये उनका बडा शानदार स्वागत हुआ। उनकी अगवानी के लिए शाही फौजें भेजी गयीं। जंग बहादुर भी इस समारोह में शामिल थे। मोतबर सिह को वजीर का ओहदा बख्शा गया और पाँडे वजीर को जान के डर से हिन्दुस्तान भागना पड़ा। रानी लक्ष्मी देवी का इस फेरबदल के पीछे यह मकसद था कि मोतबर सिंह को अपने बेटे रण विक्रम सिह का तरफदार बनायें और युवराज सुरेन्द्र विक्रम सिंह को रास्ते से हटा दें। मगर मोतबर सिंह इतने कमजोर और उसूलहीन शख्स न थे कि मिली हुई वजारत और अख्तियार के अहसान के बदले किसी के हक्क का खून कर दें। बडे बेटे की मौजूदगी में छोटे बेटे का युवराज पद पा जाना खानदानी उसूल और रिवाज के खिलाफ था। वह बावजूद इसके कि रानी को साफ तौर पर जवाब दे दें कोशिश यह करने लगे कि सुरेन्द्र विक्रम सिह के मिजाज मे ऐसी तबदीली ला दें कि महाराज साहब को उन्हें उत्तराधिकार का हक देने मे टालने की कोई गुजाइश न रहे। मगर महाराजा साहब खुद मोतबर सिंह से खुश नहीं थे। इधर रानी को भी धीरे-धीरे यह अन्देशा हो गया कि मोतबर सिंह से कोई उम्मीद रखना ठीक नहीं। चुनाचे वह भी अन्दर ही अन्दर उनके खून की प्यासी बन बैठीं।

बेचारे मोतबर सिह बड़े पसोपेश में पड़े हुए थे—इधर राजा भी दुश्मन उधर रानी भी दुश्मन। मगर वह भी धुन के पक्के थे। एक तरफ युवराज की तहजीब और शिक्षा दीक्षा दूसरी तरफ महाराजा साहब से उन्हें पूरा हक दिलाने की कोशिश। वे तदबीरो में लगे हुए थे मगर ये दोनों मंजिलें मुश्किल थी। बेरहमी जिस शख्स के मिजाज में समा जाये उसका सुधार होना बहुत मुश्किल होता है और महाराजा साहब जैसे कमजोर इरादे, कम अन्देश और अधिकार लोलुप शख्स के दिल का भी अनहोनी सी बात थी

मगर आखिरकार मोतबर सिंह की दोनों ही कोशिशें कामयाब हुई। 13 दिसम्बर 1844 को महाराजा साहब ने अपने सारे अधिकार युवराज को सौंप दिये और मोतबर सिंह ने यह फरमान पढ़कर रिआया को सुनाया।

धीरे-धीरे मोतबर सिंह की शक्ति और दबाव इतना बढ़ा कि रियासत के और सरदार घबड़ाने लगे। शक्ति और अहंकार का चोली दामन का साथ है जो इनके स्वभाव मे भी दिखाई पड़ने लगा। मोतबर सिंह अपने सामने किसी की भी नही सुनते थे। जग बहादुर उनके सगे भाँजे थे इसलिए कभी-कभी वे दरबार में इनके विरोध का साहस कर बैठते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि मामा भाँजे मे आपस में तनातनी हो गयी।

एक बार किसी मामले मे जंग बहादुर के चचेरे भाई देवी बहादुर ने मोतबर सिंह का सख्त विरोध किया और गुस्से की रौ मे रानी साहिबा के तोर तरीको पर भी कुछ नुक्ताचीनी कर दी। यह संगीन जुर्म था इसलिए उसे मौत की सजा मिली। जंग बहादुर ने मोतबर सिंह से अपने चचेरे भाई के बख्शे जाने की बहुत कोशिश और मिन्नतें की मगर मोतबर सिंह ने रानी के हुक्म मे दखलंदाजी करना मुनासिब न समझा। देवी बहादुर कत्ल कर दिया गया।

रानी लक्ष्मी देवी के तौर तरीकों पर देवी बहादुर ने जो हमला किया था वह सबको मालूम था। जनाना दरबार की जो खासियत होती है उससे इनका दरबार भी खाली न था। रनिवास क्या था परिस्तान था। बूढ़ी दासियाँ सब निकाल दी गयी थी। इनके बदले खूबसूरत औरतें रक्खी गयी थीं। इनमें से कई रानी साहिबा की मुँह लगी भी थी और रियासत के मामलों में भी रानी साहिबा अक्सर इन्हीं की राय पर चलती थीं। इसीलिये दासियों का दरबार में बहुत दखल था। रियासत के छोटे बड़े सभी सरदार जायज नाजायज की तरफ से आँख मूँदकर इन परियों मे से किसी एक को शीशे में उतारना जरूरी समझते थे। इससे इनके बड़े-बड़े काम निकलते थे।

महारानी की गगन सिंह नामक एक सरदार पर खास मेहरबान नजर थी। यह बात सबको मालूम थी। मगर किसी में इतनी हिम्मत न थी कि इस पर एक लब्ज भी अपनी जबान से निकाल सके। रानी साहिबा अधिकतर मामलों में गगन सिंह की ही सलाह लेती थी। उनकी इच्छा थी कि उसे वजीर के पद पर बैठा दें। मोतबर सिंह से वह पहले से ही नाराज थी। गगन सिंह ने भी मोतबर सिंह के खिलाफ़ उनके कान खूब भरे। यहाँ तक कि रानी साहिबा उनकी जान की प्यासी हो गयीं। जंग बहादुर को गगन सिंह ने मिला लिया। आखिर इन्हीं के हाथों रनिवास में मोतबर सिंह कत्ल हुए। जंग बहादुर सिंह के नाम से इस काली करतूत को मिटाना मुश्किल है। इस शर्मनाक और कायराना करतूत की खुदगर्जी के सिवाय और कोई वजह नहीं थी। सामान्य तौर पर तैश, इन्तकाम या मुल्की मामलात ही ऐसे कत्ल की वजह माने जाते हैं जो यहाँ लापता थे। अंग्रेजी मुहावरे में इसे ठंडे खून का कत्ल कहना चाहिये। उन्हे अधिकार और ओहदे की हवस में अपने मामा के कत्ल में भी कोई हिचकिचाहट न हुई' मोतबर सिंह के कत्ल से मुल्क में हलचल मच गयी, मगर कातिल का पता न लगा, इधर रानी की मंशा भी पूरी न हुई, वजीर

पद के दावेदार केवल गगन सिह ही न थे और लोग भी थे। जंग बहादुर इस समय एक ऊँचे फौजी ओहदे पर नियुक्त थे। तीन रेजिमेंट की फ़ौजें खास इन्हीं की भर्ती की हुई थी जो इनके सिवाय किसी और का हुक्म मानना जानती ही न थीं। इनके कई भाइयो को भी फौजी ओहदे मिल गये थे इसलिये दरबार में इनका खासा दबदबा था। इस पर मोतबर सिंह के कत्ल का मुआवजा इनके अनुसार वजीर पद के सिवाय कुछ और न हो सकता था। नतीजा यह हुआ कि गगन सिह को एक फ़ौजी ओहदे पर ही सब्र करना पडा और वजारत का काम पाँडे सरदार फतेह जग के सुपुर्द हुआ। पर यह स्थिति बहुत दिनो तक न रह सकी।

गगन सिंह महाराज की आँखो मे काँटे की तरह खटकता था। वह उसका किसी तरह कत्ल कराना चाहते थे। मगर रानी के डर से बेबस थे। आखिर मे यह जलन न सही गयी और उन्ही की राय से एक साजिश हुई जिसमे गगन सिंह का कत्ल होना तय हुआ। वह अपने मकान पर गोली का निशाना बना दिया गया।

गगन सिंह का कत्ल दरबार में बवंडर के आने का सूचक था। रानी इस घटना की सूचना जाते ही बिफ़री हुई शेरनी की तरह तलवार हाथ में लिये हुए रनिवास से निकली और गगन सिंह के मकान पर जा पहुँची। बदले की आग उसके दिल में भडक उठी। रात को फ़ौजी बिगुल बजा। रानी साहिबा की मंशा थी कि सब सरदारों को इकट्ठा कर उनमें कातिल को ढूँढ़ निकाले। जंग बहादुर ने बिगुल सुनते हुए भावी हादसे के अदेशे से अपनी फ़ौज को तैयार होने का हुक्म दिया और उसे लिये हुए वे सबसे पहले शाही महल में दाखिल हुए। उनकी फौज ने रनिवास को घेर लिया। रानी साहिबा घबडायी मगर जंग बहादुर ने उनको ढाँढ़स बधाया। धीरे-धीरे और सरदार भी जमा हुए और सारा आगन सरदारों से भर गया। रानी ने एक सरदार पर कत्ल का इल्जाम लगाकर उसे मारने का आदेश दिया। इससे और सरदारों में कानाफूसी होने लगी। एक, दूसरे को शक की निगाह से देखता था। दूसरे सेनानायकों ने भी अपनी फौजों को महल के करीब बुलाना चाहा। आपस में तीखी बातचीत होने लगी। जंग बहादुर के एक फ़ौजी पहरेदार ने एक सरदार का जो अपनी फ़ौज से मिलने महल के बाहर जा रहा था कत्ल कर दिया। अब क्या था मारकाट का बाजार गर्म हो गया। कितने ही सरदार उस आंगन में तलवार की घाट उतार दिये गये। वज़ीर आजम की भी जान न बच सकी। आखिर में जग बहादुर की फ़ौज ने अमन चैन कायम किया और सरदार लोग अपने-अपने घरों को लौट गये। इन घरेलू लड़ाइयों ने जंग बहादुर के लिये मैदान साफ़ कर दिया। इनके प्रतिद्वन्द्वियो में से कोई भी बाकी न रहा। 15 सितम्बर 1841 की यह घटना है और दूसरे दिन महारानी साहिबा ने वजारत का पद उनके सुपुर्द कर दिया और इस तरह घोर अंधकार के बाद इनकी तकदीर का सूरज चमका।

मगर इस नाजुक वक्त में यह ओहदा जितना बड़ा था उतना ही खतरनाक। महाराजा साहब को जंग बहादुर का वजीर होना नागवार लगा। उनको शक था कि इस मारकाट का जिम्मेदार जग बहादुर ही था, रानी साहिबा का इसमें स्वार्थ यह था कि वह नये

वजीर की मदद से अपने बेटे को तख्त पर बैठाने की फिकर मे थी। इधर गगन सिह के साथी इनकी जान के गाहक हो रहे थे। उन्होंने कई माह तक रानी के हुकुम को त्रहिचक माना और यहाँ तक कि युवराज और उनके भाई को बंदीघर मे डाल दिया। हालाँकि इसमें उनकी मंशा यह थी कि दोनो भाई रानी साहिबा की खुफिया साजिशों से बचे रहें। रानी युवराज का कत्ल कराना चाहती थी क्योंकि इसके सिवाय उनके पास दूसरा कोई चारा भी न था। उन्होंने जग बहादुर को इशारे से इसका संकेत भी दिया लेकिन वे हमेशा अनजान बने रहे। इशारे से काम चलते न देखकर रानी ने इन्हे इस सिलसिले में एक खत लिखा। जग बहादुर ने इसे अपने पास रख लिया और इसका बहुत बहादुरी मे मुँह तोड जवाव दिया जिससे रानी साहिबा उनसे मायूस ही नही हुई उनकी जान की भी दुश्मन हो गयी। उनके कत्ल की साजिश करने लगी। गगन सिह का लडका वजीर सिंह इस काम में रानी साहिवा का दाहिना हाथ था। साजिश तैयार हो गयी --इसका हर आदमी अपने-अपने काम को करने पर मुस्तैद हो गया। वायदा भी हो गया और उसका इनाम भी तय हो गया। सिर्फ इतना ही होना वाकी था कि जंग बहादुर रानी साहिबा के महल मे बुलाये जायें। मगर ऐन मौके पर जग बहादुर की पैनी बुद्धि ने भाँडा फोड़ दिया- राज खुल गया। उन्होंने फौरन फ़ौज बुलाई और उसे लिये रानी साहिबा के महल मे जा धमके। कातिल घात लगाये बैठे थे और जग बहादुर ने उन्हे घेर लिया। उन्हे जान बचाने का भी मौका नही मिला। कितने वहीं तलवार के घाट उतार दिये गये। रानी साहिबा रंगे हाथों पकड़ ली गयी। उन पर वली युवराज और वजीर के कत्ल करने की साजिश का इल्जाम लगाया गया। सबूत मौजूद थे। रानी को बचने का कोई मौका न मिला। वजीरो की सभा में यह मामला पेश हुआ और रानी साहिबा को सदा के लिये देश निकाला दे दिया गया। इनके दोनो बेटों ने माँ के साथ रहने में अपनी खेर समझी। जग बहादुर ने इसमे कोई रुकावट नहीं डाली बल्कि बडी उदारता से अट्ठारह लाख रुपये रानी साहिबा को उनके खर्च के लिये खजाने से देकर विदा किया। इस वाकया से जाहिर होता है कि जग बहादुर कितने जीवट और उदार दिल के शख्स थे जो हालात को किसी प्रकार अपने अनुकूल बना लेते थे। रानी साहिबा के शाही शान शौकत और रोब-दाब को पल भर में मिटा देना कोई मामूली काम न था। जिस रानी के डर से सारा नेपाल थरथर काँपता था। उसकी ताकत को उनकी सूझबूझ और नीति ने देखते-देखते मिट्टी में मिला दिया।

महाराजा साहब काफी दिनों से काशी यात्रा की तैयारी कर रहे थे। रानी साहिबा को देश निकाला हुआ तो वह भी उनके साथ बनारस जाने को तैयार हो गये। जंग बहादुर ने बहुत समझाया कि इस वक्त रानी साहिबा के साथ आपका जाना ठीक नही। आपके विरोधी कुछ और ही मतलब निकाल सकते हैं पर राजा साहब ने एक न सुनी और जाने की ठान ली। युवराज उनके उत्तराधिकारी घोषित कर दिये गये। जंग बहादुर ने एक होशियारी यह की कि अपने कुछ भरोसेमन्द लोगों को राजा के साथ भेज दिया ताकि वे उनकी गतिविधि का पूरा हाल देते रहें। वे राजा साहब की कमजोर प्रवृत्ति को जानते थे और उनको इसका अंदेशा था कि कहीं वह चापलूस दुष्टों के बहकाने में न आ जाये उनका अंदेशा एकदम

सही साबित हुआ। बनारस में नेपाल के बहुत से खुराफाती सरदारों ने, जिनका देश निकाला हुआ था महाराजा साहब को उकसाना शुरू किया कि वह नेपाल पर हमला करके जग बहादुर की हुकूमत का खात्मा कर दें। महाराजा साहब पहले तो इस जाल में नहीं फसे लेकिन हर वक्त वे उनके साथ रहते और कान फूँका करते जिससे आखिरकार उन पर असर हो ही गया। महाराज साहब को यकीन हो गया कि इस समय युवराज के नाम पर जग बहादुर खुद नेपाल पर राज्य कर रहा है। वह जब नेपाल की तरफ रवाना हुए तो विरोधियों का एक दल जिनकी संख्या दो सौ से कम न थी उनके साथ चला। महाराज साहब नेपाल की सरहद पर पहुँच कर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये? रानी साहिबा से खतो किताबत हो रही थी और हमले की तैयारी की जा रही थी। बागियो मे वजीर, सेनानायक, खजाची सब को बहाली हो गयी। बाकायदा फौज की भर्ती होने लगी। जग बहादुर के भरोसेमन्द लोगों ने बहुत समझाया कि आप इस हरकत से बाज आये पर राजा साहब अपनी धुन मे कब किसी की सुनते थे? बात करने में तो यही कहते थे कि ऐसा कुछ भी नहीं है लेकिन खुफिया तौर पर तैयारियाँ हो रही थी।

उधर जग बहादुर के पास यहाँ की गतिविधियो की जानकारी रोज पहुँचती रहती थी। जग बहादुर को अंदेशा हुआ कि इस साजिश की आग पूरे देश मे न फैल जाये। इसको दबाना उन्होंने जरूरी समझा। उन्होने सारी फौज और सेनानायकों को बुलाया ओर महाराजा साहब की खुफ़िया तैयारियों का खुलासा हाल कहकर उन्हें राजपद से हटाने की तजवीज पेश की। फौज ने वफादारी की कसम खाई। महाराजा साहब को एक खत भेजा गया जिसमे उन पर बागी होकर हमला करने का इल्जाम लगाया गया और उनकी जगह युवराज को राजगद्दी देने की सूचना दी गयी। महाराजा साहब खत पाते ही आपे से बाहर हो गये। सलाहकारों ने और भी आग में घी डाला। दो हजार जवान भर्ती हो चुके थे। उन्हें काटमॉडू पर धावा बोलने का हुक्म दिया गया। जंग बहादुर ने कुछ रेजिमेंट मुकाबले के लिये भेजी। बागी भगा दिये गये। महाराज साहब नजरबन्द कर दिये गये और उन पर कडी निगाह रखे जाने का इन्तजाम किया गया। अपनी वज़ारत के दूसरे ही साल जंग बहादुर इतने लोकप्रिय हो गये। रिआया को इन पर इतना भरोसा हो गया कि इनके मुकाबले में राजा साहब को भी हार माननी पड़ी।

इन परेशानियों से मुक्त होने के बाद जंग बहादुर ने फ़ौज और शासन नीतियो मे अनेक सुधार किये और रिआया की अनेक पुरानी शिकायतें दूर की जिनका उन्हें स्वयं अपने आरम्भिक जीवन में सरकारी मुलाजिमों द्वारा अनुभव हुआ था। वज़ीर बनने के तीन चार सालो में ही वे इतने लोकप्रिय हो गये कि लोग राजा को भूल गये और इन्ही को अपना सब कुछ समझने लगे। खासकर फौजी सिपाही तो इन पर जान देते थे। इसी बीच चन्द पुराने दुश्मनों ने उनका कत्ल करने की साजिश की। मगर जंग बहादुर पहले ही से किसी न किसी प्रकार खबरदार हो जाते थे। महाराजा सुरेन्द्र विक्रम ने रियासत के सारे अख्तियार इन्हीं को सौंप रक्खे थे और खुद उनमें बहुत कम दखल देते थे। वही बिगडे दिमाग वाला युवराज अब निहायत और राजा हो गया था

जग बहादुर अंग्रेजों की बहादुरी, दूरदेशी मौका सिनाशी और सियासी काबलियत के बडे कद्रदान थे और उन्हें ऐसे देश के सैर की दिली ख्वाहिश थी जहाँ ऐसी कौम पैदा हुई हो। वह मार्च 1850 में अपने कई रिश्तेदारों और भरोसेमन्द सरदारों के साथ इग्लैंड को रवाना हुए और इंग्लैंड, फ्रॉस घूमते हुए फरवरी 1851 मे लौट आये। इंग्लैंड मे उनकी खूब आवभगत हुई और उन्हे अंग्रेजो के समाज को देखने समझने का भरपूर मौका मिला। इसमे शक नहीं कि वे इंग्लैंड से रौशन ख्यालात, व्यापक दृष्टि और प्रशासनिक काबलियत का गुर सीख कर लौटे थे। अंग्रेज कोम के साथ नेपाल की दोस्ती और वफादारी उसी समय से शुरू हुई जो आज भी कायम है।

इग्लैंड वापसी के थोडे ही दिनों बाद नेपाल को तिब्बत से लड़ना पड़ा। इस अवसर पर जग बहादुर की सतर्कता और सियासी काबलियत से तिब्बत पर लगातार जीत मिली। आखिरकार मजबूर होकर तिब्बत ने सन् 1855 में नेपाल से सुलह कर ली। इस समझौते से नेपाल को व्यापारिक सुविधाएं मिल गयी। महाराजा साहब ने ऐसे काबिल वज़ीर के साथ सम्बन्ध और पक्का करने के लिये अपनी राजकुमारी की शादी जंगबहादुर के बेटे से कर दी।

लगातार कई वर्षों तक कठिन मेहनत करते रहने से जंग बहादुर की सेहत कुछ खराब हो गयी। सन् 1856 में उन्होंने वजीर पद से इस्तीफा दे दिया पर कौम उन्हें इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकती थी। सारे नेपाल के प्रभावशाली लोग इकट्ठे होकर जग बहादुर की खिदमत मे हाजिर हुए और अपना इस्तीफा वापस लेने की विनती की। यहाँ तक कि वे उन्हें महाराजा साहब के बदले गद्दी पर भी बैठाने को तैयार थे मगर जग बहादुर ने कहा, 'जिस शख्स को मैने अपने हाथो से सिंहासन पर बैठाया है उसके मुकाबले मे मैं अब किसी तरह नही आना चाहता।' महाराजा साहब ने उनकी वफ़ादारी का यह जिकर सुनकर दो खुशहाल सूबे उनके सुपुर्द कर दिये और उन्हें महाराणा की उपाधि भी बख्शी। जग बहादुर इन सूबों के पूरे मालिक बना दिये गये। इसके अलावा वजारत उनके खानदान के लिये पुश्तैनी मुकर्रर कर दिया गया। इन तमाम इनामों से मजबूर होकर जग बहादुर ने ठीक होते ही वजीर पद को सम्हाल लिया।

इसी समय हिन्दुस्तान में बगावत की आग भड़क उठी। बागियों का जोश देखकर लार्ड कैनिंग ने जग बहादुर से मदद माँगी। जंग बहादुर ने फौरन छह रेजीमेंटें रवाना की और जल्दी ही खुद एक बड़ी फ़ौज लेकर गये। गोरखपुर, आजमगढ, बस्ती एवं गोंडा आदि जगहों से बागियों के बड़े-बड़े दलों को तहस-नहस करते हुए वे लखनऊ में दाखिल हुए और लखनऊ से बागियों को निकालने में बड़ी मुस्तैदी से अंग्रेज अफ़सरों की मदद की। इनकी धाक वहाँ ऐसी जमी कि बागी इनका नाम ही सुनकर थर्रा जाते थे। इस तरह बगावत को शान्त करके वे नेपाल लौट गये। इधर जब बागियों का एक बड़ा दल नेपाल में पनाह लेने आया तो जंग बहादुर ने उनके गुजारे के लिये जमीन का बन्दोबस्त कर दिया उनकी सन्तानें आज भी तराई में आबाद हैं जंग बहादुर ने सन् 1876 तक

और उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनी तबदीलियाँ इन्हीं की मेधा की देन है। इन्हीं की सियासी काबलियत थी जिसने आपसी वैमनस्य और दुश्मनी मिटाकर मुल्क में खुशहाली और अमन चैन कायम की। जहाँ अफसरों की मर्जी ही कानून का काम कर रही थी वहाँ इन्होंने हर महकमे को कायदे कानून के अनुशासन में बाँध दिया।

जग बहादुर एक मुस्तकिल मिजाज उसूलपसन्द प्रशासक थे। बेशक वजाग्त सम्हालने के पहले इन्होने हमेशा हक और न्याय को अपना उसूल नही बनाया था लेकिन उनकी वजारत का जमाना नेपाल के इतिहास का सुनहला काल है। वह राजपूत थे और राजपूत धर्म को निभाना उनके लिये एक अहम विषय था। सिक्ख राज्य के पतन के बाद रानी चंद्र कुँवर चुनार के किले में नजरबन्द कर दी गयी थीं मगर वह कैद मे ज्यादा दिन नही रह सकीं। एक दिन एक कनीज के लिबास मे किले से निकलकर सफर की तकलीफें झेलती वह नेपाल पहुँची और जग बहादुर के पास अपनी इस परेशानी की हालत मे पहुँचने की खबर भेजी। जग बहादुर ने बड़ी खुशी से उनका स्वागत किया। पचीस हजार रुपया उनके महल के निर्माण के लिये दिया और पचीस सौ रुपये माहवार उनका गुजारा तय किया। हालांकि अंग्रेजी रेजीमेंट ने उन्हें अंग्रेजी हुकूमत की नाराजगी का खौफ दिखाया लेकिन उन्होंने साफ़ उत्तर दिया, 'मैं राजपूत हूँ और राजपूत लोग अपनी शरण मे आये लोगों की हिफाजत करना अपना धर्म समझते हैं।' हाँ उन्होंने यह यकीन दिलाया कि रानी चंद्र कुँवर अंग्रेजी सरकार के खिलाफ किसी प्रकार की साजिश न करने पायेंगी। रानी साहिबा का महल अभी तक कायम है।

जग बहादुर को शिकार का वेहद शौक का और इसी शिकार के चलते वे एक बार मरने से बचे। इनका निशाना कभी चूकता न था। सिपहगिरी के फ़न में वे बड़े उस्ताद थे। वह सिपाहियों की बहादुरी की कद्र करते थे। इसीलिये नेपाल की सारी फौज इन पर निसार होने को बराबर तैयार रहती थी।

हालाँकि यह उस जमाने में पैदा हुए जब हिन्दू कौम दकियानूस रस्म रिवाज के बन्धन में जकडी हुई थी लेकिन यह खुद बहुत जागरूक और आजाद ख्याल शख्स थे। नेपाल में एक नीची जाति थी जिसे कोची-मोची कहते है। इनसे बहुत परहेज किया जाता था। उन्हें कुँओं से पानी भी भरने नहीं दिया जाता था। जब इस कौम के मुखियाओं ने जग बहादुर से फ़रियाद की तो उन्होंने एक बड़ी सभा बुलाई और उसमें कोची मोची भी शामिल हुए। इस भरी सभा में उनके हाथ से पानी पीकर उन्हें हमेशा के लिये पाक कर दिया और इस तरह सामाजिक गुलामी और जिल्लत से आजाद किया। हिन्दुस्तान में शिक्षितों में भी कितने ऐसे हैं जो आजादी की आधी शताब्दी गुजर जाने के बावजूद भी एक अछूत हिन्दू के हाथ का पानी पीने की हिम्मत कर सकें? जंग बहादुर उस पश्चिमी शिक्षा से नावाकिफ थे जिस पर हम शिक्षित हिन्दुओं को इतना गुमान है।

मगर इसका मतलब यह नही कि वह खुद के खानपान के मामले में एकदम आबाद ख्याल के थे इंग्लैंड यात्रा के दौरान वह किसी दावत मे शामिल नही हुए वह

कि हक और सच्चाई के मामले में महाराज साहब का भी विरोध करने से नहीं चूकते। रिआया को दरबारी मुलाजिमों के जुल्म से बचाने की कोशिश करते और अगर किसी कर्मचारी को पकड पाते तो उसे कडी सजा देते।

सच पूछा जाय तो उस जमाने मे राणा जंग बहादुर की तरह उसूल पसन्द लोग अगर हिन्दुस्तान की दूसरी रियासतो मे भी होते तो मुमकिन था कि उनमे से कुछ रियासतें आज भी बरकरार होतीं। पंजाब, सतारा, अवध, नागपुर, बर्मा, आदि मुल्क इसी जमाने में अंग्रेजी राज्य के अधीन हुए और मुमकिन है अंग्रेजी सरकार अगर ज्यादा हकपसन्द होती तो शायद इनकी सत्ता कायम रहती परन्तु खुद इन रियासतो मे ऐसे काबिल शासक नहीं थे जो इन हालात से उन्हे सही सलामत बाहर निकाल लेते।

बावजूद इसके कि सारा नेपाल जंग बहादुर पर फिदा था और उनकी ताकत व शोहरत के सामने राजा साहब भी दब गये थे, मुल्क के सरदारों के बहुत दबाव डालने पर भी उन्होंने राजा के कार्य क्षेत्र से अपने को हमेशा अलग रक्खा। उस जमाने में हिन्दुस्तान की दूसरी रियासतों के राजा महाराजाओं का हाल देखते हुए इसे राणा जंग बहादुर की मुल्की कुर्बानी कह सकते है। सन् 1876 ई० के फरवरी महीने में वह शिकार खेलने गये थे—बुखार में पड गये और 25 फरवरी को एक मामूली सी बीमारी के बाद इस दुनिया से चल बसे।
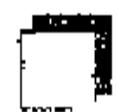
रेनाल्ड

जोश्वा रेनाल्ड सैमुअल रेनाल्ड का बेटा था। 16 जुलाई 1723 को वह पैदा हुआ। अपने जीवन काल में ही उसने अंग्रेजी चित्रकला को आसमान की बुलन्दियों तक पहुँचा दिया। होगार्थ का नाम उस जमाने के मशहूर कलाकारों मे था लेकिन उसके चित्रों के कद्रदान बहुत कम थे क्योंकि उसने पुराने गुरुओं से तालीम न पायी थी। इसके विपरीत रेनाल्ड ने पुराने गुरुओं से तालीम पायी थी। वह माइकेल एंजिलो, रैफेल और क्रोजियो का अनुयायी था। उसके चित्रो के कद्रदान अनेक थे।

सैमुअल रेनाल्ड एक गाँवके पादरी थे। उनके कई बच्चे थे। होनहार रेनाल्ड उनका दसवाँ बच्चा था। उसकी पढ़ाई-लिखाई क्या हो सकती थी? देहाती मदरसे में थोड़ी सी अंग्रेजी और गणित सीखने का मौका मिला और मानो इसके बाद उसकी सारी तालीम ही पूरी हो गयी। इस थोड़े से अर्से में रेनाल्ड जैसा होनहार और बुद्धिमान लडका अगर चाहता तो बहुत कुछ सीख लेता मगर उसकी तबियत गणित और व्याकरण पढ़ने के बजाय चित्रकारी करने में ज्यादा लगती थी। घर पर बैठा तस्वीरे बनाया करता। पादरी साहब जब कभी उसकी तस्वीरें देख लेते तो नाराज होते और उसके लिये उसे मारते भी। बहरहाल रेनाल्ड की तालीम बहुत कम हुई लेकिन जब उसने होश सम्हाला और जरा शोहरत हुई उसे डॉक्टर जॉनसन, गोल्डस्मिथ और बर्क जैसे मशहूर लोगों की सोहबत का मौका मिला जिससे उसकी यह कमी बहुत हद तक पूरी हो गयी। वैसे तो इन विद्वानो की मंडली में इस तरह का कम तालीम पाया हुआ आदमी भकुआ बनाकर निकाल दिया जाता मगर रेनाल्ड की वहाँ बहुत इज्जत होती थी। चित्रकला पर इसके जो व्याख्यान है वे अपनी सुन्दर शैली और गहन ज्ञान के कारण से अंग्रेजी अदब में निहायत आला दर्जे के माने जाते हैं। उस जमाने में डॉक्टरी बहुत आसान पेशा था। जिसने चन्द अंग्रेजी और लैटिन की किताबे पढ़ लीं और किसी डॉक्टर की दुकान में रहकर दवाओं और मर्ज के नाम जान लिये वह इलाज करने के काबिल हो जाता था। पादरी साहब ने रेनाल्ड के लिये यही पेशा तजबीज किया था। अगर इस ओर उसका रुझान होता तो मुमकिन है अपने जमाने का बहुत बड़ा डॉक्टर बन जाता। उसका कहना था कि कोशिश, धीरज और लगन अक्लमन्दी के दूसरे नाम हैं।

चित्रकला का पहला सबक रेनाल्ड को अपनी दो बहनों से मिला जिनकी इस

कला में दिलचस्पी थी। जो कुछ वे खींचती रेनाल्ड तुरन्त नकल कर लेता। इसके अलावा किताबों में बनी तस्वीरों की भी नकल किया करता। इस तरह बचपन से ही उसकी निगाहो मे पैनापन और हाथ मे सफाई आने लगी। अभी आठ ही बरस का था कि कहीं से चित्रकला की एक किताब हाथ लग गयी। फिर क्या था? उसने उसे बड़े शौक से पढ़ा। इस पढ़ाई का यह असर हुआ कि उसने अपनी पाठशाला का एक नक्शा बना डाला। पादरी साहब ने यह नक्शा देखा तो बेटे की पीठ ठोंकी। जब बेटे को मालूम हो गया कि अब्बा जान भी उसके इस शौक को पसन्द करते हैं तब वह चित्रकला में जी जान से लग गया और धीरे-धीरे खानदान के सभी लोगो की तस्वीरें बना डाली। दोस्तो ने तस्वीरें देखी तो उसका हौसला बढ़ाने लगे। बीसवी साल में वह पूरी तौर से चित्रकार के रूप मे प्रतिष्ठित हो गया।

मगर जिस कस्बे मे वह रहता था वह एकदम गुमनाम जगह थी। यहाँ न तो ऐसे कलाकार रहते जिनसे वह कुछ सीख सकता, अपनी जानकारी बढ़ा सकता और न ही नाम कमाने का यहाँ कोई और जरिया था। इसलिये जरूरत यह हुई कि वह लन्दन जाये और कुछ तालीम हासिल करे। हडसन उस जमाने का एक मशहूर चित्रकार था जिसका वह शागिर्द हो गया लेकिन हडसन मे सिवाय पोट्रेट बनाने के और कोई काबलियत न थी। रेनाल्ड जैसा होनहार नौजवान जिसके सीने में हौसलो और उमंगो का सागर लहरा रहा था, उसकी तालीम से क्या फायदा उठा सकता था? हडसन को उसकी छिपी हुइ प्रतिभा का अन्दाज न हो सका। इटली के एक मामूली चित्रकार के चित्रो की नकल उससे कराने लगा। रेनाल्ड ने उसकी ऐसी खूबी से नकल की कि वह असल से कई दर्जे अच्छी बन पड़ी। जैसे-तैसे रेनाल्ड ने यहाँ दो बरस काटे। इस अर्से मे उसने बहुत सारी तस्वीरें बनायीं। कहते हैं उनमें उसे भविष्य में मिलने वाली शोहरत की झलक मौजूद थी। शागिर्द का कमाल देखकर उस्ताद के दिल में जलन पैदा हुई। आखिर एक तस्वीर जिसे बनाने में रेनाल्ड ने अपनी पूरी जी जान लगा दी थी दोनों के अलगाव की वजह बनी। रेनाल्ड ने यह समझ लिया कि उस्ताद को जितना पढ़ाना लिखाना था पढ़ा दिया। वह अपने गाँवलौट आया। इस अलगाव को वह हमेशा एक अच्छा संयोग समझता था क्योंकि अगर वह कुछ और अर्से तक हडसन की शागिर्दी में रहता तो उसके मिजाज में भी वही नकल करने की आदत पड़ जाती जो एक कलाकार के लिये जान लेवा होती है। यहाँ बेकारी मे उसने तीन बरस काटे लेकिन यह सच है कि इसी अर्से की कोशिशों ने उसे रेनाल्ड बनाया। इस समय तस्वीर बनाने के अलावा उसके पास कोई और काम न था। इसी दरम्यान उसने प्रकृति को भी बडी गहराई से समझने की कोशिश की जो आगे चलकर उसकी शोहरत और कामयाबी की वजह बनी।

एक दिन जब वह हडसन की शागिर्दी में था बाज़ार में नीलामी देखने गया। बहुत से आदमी भीड़ लगाकर खड़े थे। एकाएक 'पोप' 'पोप' का शोर मचा और उधर से मशहूर कवि पोप आते दिखायी पड़े। लोग आदर के साथ इधर-उधर हटने लगे और झुक-झुककर सलाम करने लगे जिसके पास से वह होकर गुजरते वह उनका हाथ छू लेता

जब रेनाल्ड की बारी आयी पोप ने खुद उसके दोनों हाथ पकड़कर हिला दिया। रेनाल्ड हमेशा इस घटना का जिक्र बड़े फख्र से करता था। इससे पता चलता है कि विद्वानों के लिये उसके दिल में कितनी इज्जत थी और उस जमाने के लोग विद्वानों और कवियो के साथ कैसी मोहब्बत और इज्जत से पेश आते थे।

रोम हमेशा से कलाकारों के लिये एक दर्शनीय स्थान रहा है। यही वह शहर है जहाँ योरोपियन चित्रकला की बुनियाद पड़ी। पोप लिओ के जमाने से ही यह जगह मशहूर चित्रकारों के बसने की जगह रही। रैफेल, माइकेल एंजिलो और क्रेज़ियो चित्रकला के खुदा कहे जाते है इसी भूमि के वासी थे। लियोनार्डो और टेशीन भी इसी भूमि के वासी थे। उन्होंने जो तस्वीरे बनाकर यहाँ के संग्रहालयों मे रख दीं उनका आज तक कोई जवाब नही। ये कला के बेहतरीन नमूने है। जैसे कालिदास होमर और फिरदौसी की शायरी की नकल नही की जा सकती उसी तरह इन तस्वीरों की भी नकल नहीं की जा सकती। सारे योरप के कलाप्रेमी इन चित्रो को देखने जाते है। कोई चित्रकार तब तक सही मायने में चित्रकार नही बन सकता जब तक वह पूरी तौर से इन चित्रो का अध्ययन न कर ले। हालाँकि उन पर चार-चार सदियों की धूल पड़ी है लेकिन उनकी रंगत की ताजगी मे जरा भी फर्क नही आया। न जाने कहाँ से ऐसे रंग लाये कि मद्धिम होना नहीं जानते। रेनाल्ड ने रोम की बहुत तारीफ़ सुनी थी और उसके दिल में लगी थी कि किसी तरह वहाँ की सैर करे। मगर गरीबी से लाचार था। आखिर उसके एक जहाजी दोस्त ने उसे रोम के सैर की दावत दी और दोनों दोस्त निकल पड़े। पहले पुर्तगाल की राजधानी लिसबन की सैर की। इसके बाद जबलुत तारिक़ पहुँचे और वहाँ से रोम में दाखिल हुए।

इस शहर ने पहले पहल जो उसके दिल पर असर डाला उसका उसने विस्तार से बयान किया है। कहता है, 'ऐसा अक्सर होता है कि लोग निगारखाना वैटिकन (यह निगारखाना पोप लिओ ने बनवाया था जिसमें इटली के बाकमाल चित्रकारों के चित्र रखे है) की सैर के बाद जब विदा होने लगते हैं तब गाइड से पूछते है कि यहाँ रैफेल की तस्वीरें कहाँ हैं? वे इन नायाब तस्वीरो को सरसरी निगाहो से देख जाते हैं। उन पर उनका कोई असर नही पड़ता। मैंने पहले पहल जब इस निगारखाने को देखा तो बड़ी मायूसी हुई। मेरे एक चित्रकार मित्र की भी यही राय थी। हालाँकि मुझे इन तस्वीरों को देखने से वह आनन्द नही मिला जिसकी मुझे उम्मीद थी जबकि मुझे एक पल को भी यह ख्याल नहीं आया कि रैफेल की शोहरत दूर के ढोल हैं। मैंने इस सिलसिले में अपने आप को ही गुनहगार माना। ऐसी मशहूर चीजों से प्रभावित न होना एक निहायत शर्मनाक बात थी मगर उसकी वज़ह यह थी कि न तो मै उन पैमानों से वाकिफ था जो इन तस्वीरों में अपनाये गये थे और न मुझे मशहूर चित्रकारो की तस्वीरों को देखने का मौका ही मिला था। अब मुझे पता लगा कि चित्रकला के प्रति जो नज़रिया मैं इग्लैंड से लेकर आया था वह बिल्कुल गलत और गुमराह करने वाला था। जरूरत हुई कि वे गैर जरूरी ख्यालात अपने दिल से निकाल दूँ। आखिर मैने ऐसा ही किया और मायूसी के होते हुए भी एक तस्वीर की नकल करने लगा मैंने उसे बार बार देखा उसकी नजाकतो

और बारीकियों पर बार-बार देर तक गौर करता रहा और थाड़े ही अर्से में मेरे दिल मे एक नया अहसास पैदा हुआ। किसी कला की खूबियों, बारीकियो को जानने समझने और पहचानने के लिये अपने मे लियाकत पैदा करनी चाहिये। लियाकत ऐसी चीज हें जो बिना कड़ी मेहनत, लगन और अभ्यास के पैदा नहीं हो सकती। शायरी, दर्शन और सगीत की बारीकियों को समझने के लिये भी इन्ही बातों की जरूरत है। कौन नही जानता कि अशिक्षित और गँवार निगाहें सच्चे और झूठे मोती, शीशे के टुकडे और हीरे में अलगाव नही कर सकतीं। यह एक सामान्य बात है कि एक गँवार और रूखा आदमी सुन्दर से सुन्दर झील, ऊँचा से ऊँचा पहाड और बेहतरीन से बेहतरीन बागीचे से उसी तरह बेखबर रहता है जिस तरह रूखी रोटी और झोपडे के सामने डूबते सूरज की किरणें, चाँदनी रात की मोहकता दरिया किनारे की ठडी हवा और मखमली घास की हरियाली से गरीब एक आदमी। उसे इन खूबियों का कोई अहसास ही नही। हालाँकि यही नजारे एक रसिक व्यक्ति के लिये मस्ती का आलम पैदा कर देते हैं।

रेनाल्ड ने इन चित्रों की खूबियों का बडा लम्बा ब्योरा दिया है। कही उनके रग प्रयोग उनकी खूबियों के राज़ खोलते है तो कही अनेक कलाकारो के कमाल की तुलना करके उनकी खूबियों को दर्शाया गया है। इटली के चित्रकारों ने अलग-अलग रंगों का प्रयोग किया है। रोम, वेनिस, फ्लोरेन्स और मिलान सब अलग-अलग रगों के केन्द्र है। रेनाल्ड ने हर रंग की खूबियों और बारीकियो का विस्तार से बयान किया है लेकिन खुद उन्होंने अपने चित्रों में किसी खास स्कूल का अनुसरण नही किया है। चित्रकार को अपनी देखने की शक्ति पर खूब बल देना चाहिये। यह जरूरी नहीं कि वह अपने चित्रों के लिये दूसरों की किताबों में कायदे को ढूढ़े। कायदे चित्रों से निकलते हैं न कि चित्र कायदों से। रेनाल्ड कहता है 'क्योकि नकल में दिमाग पर कोई जोर नहीं पड़ता वह धीरे-धीरे कुन्द हो जाता है और फिर उसमें ताजगी और नवीनता नहीं रहती। इस तरह जिन शक्तियों को उसे खास तौर पर इस्तेमाल में लाना चाहिये वे अभ्यास न करने से कमजोर हो जाती हैं।'

वह तीन बरस इटली मे रहा और हर रंग तथा हर किस्म की तस्वीरों का अध्ययन किया। मगर इंग्लैंड पहुँच कर उसने जिस क्षेत्र को अपनी शोहरत का जरिया बनाया वह था मुखाकृति चित्रण। शायद इसकी एक वजह तो यह थी कि उस समय इंग्लैंड मे अपनी तस्वीर बनवाने का लोगों में बड़ा रिवाज़ था जैसा कि होगार्थ के चित्रों से भी जाहिर होता है। दूसरी वज़ह यह थी कि रेनाल्ड में उस ऊँचे किस्म की कल्पना शक्ति नही थी जो ऐतिहासिक एवं धार्मिक चित्रों को बनाने के लिये जरूरी होती है। रोम से वापस आने पर उसने अपने गाँवकी सैर की और इसके बाद लंदन जाकर रहने लगा। शुरू मे जब उसने एक-दो तस्वीरें बनायीं तो चित्रकारों ने उन पर नुक्ताचीनी करनी शुरू कर दी क्योंकि उन तस्वीरों में न तो आम जनता की पसन्द का ध्यान रक्खा गया था और न ही कायदों का ख्याल रक्खा गया था। हालाँकि यह नुक्ताचीनी बहुत दिनों तक न चल सकी। जब ग्राहक सौदा अच्छा देखता है तो खुद खरीद लेता है। उसे फिर इसकी परवाह नहीं होती कि दूसरे इसके में क्या कहते हैं जाने-माने रईस लोग और

शिष्ट महिलाएँ धीरे-धीरे उसके पास आने लगीं। हर रईस की यह ख्वाहिश होती कि चित्रकार उसे हीरो या दार्शनिक बनाकर दिखाये। हर भद्र महिला चाहती कि उसे स्वर्ग की अप्सरा बना दिया जाय। उसके चेहरे की झुर्रियाँ एकदम न दिखायी पड़ें। रेनाल्ड बड़ी पैनी दृष्टि वाला था। वह सबकी ख्वाहिश पूरी कर देता था। उसका कहना था कि मुखाकृति बनाने वाले चित्रकार के लिये डॉक्टरों जैसे मिजाज की जरूरत होती है। उन्हें हर हालत मे अपने मरीज की नाजबरदारी करनी पड़ती है।

सन् 1754 में रेनाल्ड की डॉ० जानसन से दोस्ती हुई। रेनाल्ड डेवनशायर गया था। वहाँ उसे एक दोस्त के यहाँ डॉ० ममदूह की लिखी हुई वाल्टर सैवेज शायर की जीवनी नजर आयी। उसमें उसका ऐसा जी लगा कि वही खडे-खड़े खत्म करके दम लिया। उस समय से उस दिलचस्प किताब के लेखक से मिलने की ख्वाहिश पैदा हो गयी। संयोग से एक रईस की अचानक मौत के मौके पर दोनो की मुलाकात हो गयी। उस रईस से बहुत लोगों को फायदा होता था। लोग उसके अच्छे व्यवहार और गुणो की तारीफ कर रहे थे। रेनाल्ड के मुँह से निकला कि बेशक यह हादसा बहुत दर्दनाक है लेकिन अब बहुत से लोग उसके अहसान के बोझ से आजाद हो गये। वहाँ पर मौजूद लोगों को उसकी यह बात अच्छी नही लगी लेकिन डॉक्टर जानसन बहुत खुश हुए और बोले कि यह आदमी हमारे ही ख्यालात का लगता है। जब रेनाल्ड घर लौटने लगा तो डॉ० साहब उसके साथ-साथ घर आये। इस तरह इस दोस्ती की शुरुआत हुई जो दोनो के जीते जी बहुत अच्छी तरह निभी। डॉ० साहब का मिजाज रूखा, अहकारी और कुछ अक्खड किस्म का था। उनकी जिन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा नाकदरी, गरीबी और अकेलेपन में कटा था। ऊँचे वर्ग के लोगों का साथ न मिलने के कारण वे उनके उठने-बैठने, बात-बर्ताव आदि के तौर तरीके से वाकिफ़ न थे। इसलिये रईसो की जमात में इनकी इज्जत नहीं होती थी। इसमें शक नहीं कि इनकी काबलियत का सिक्का सब पर जमा हुआ था मगर इनका अशिष्ट व्यवहार और भोंडापन बदसूरत चेहरा, बेखौफ हाजिर जवाबी और बेलौस बातचीत उन्हें रईसों के दिल में जगह न पाने देती थी। ऐसे लोग चाहे स्वयं मूर्ख ही क्यों न हों लेकिन यह नही भूलते कि वे रईस हैं। वे चाहते है कि चाहे कितना भी विद्वान कोई क्यों न हो लेकिन जब वह याचक बन कर आये तो खुशामद और नाज़बरदारी का सामान साथ लेकर आये। डॉक्टर के स्वभाव मे यह बात न थी। जब उनके सामने आते मुस्कुराकर, सर झुकाकर नही। इसलिये उनकी इनायत के हकदार नहीं होते थे। वे समझते थे कि लोग उनकी इज्जत उनकी काबलियत की वजह से करते हैं। ज्यों-ज्यो जमाना गुज़रता गया और डॉक्टर के गुणों का राज लोगों पर खुलता गया त्यों-त्यों भोंडेपन और रूखेपन के बावजूद सब लोग उनके सामने झुकने को मजबूर हुए। इसके ठीक विपरीत रेनाल्ड खुशमिजाज़ और शिष्ट था, वह रईसों के रहन-सहन के तरीकों का हिमायती था।

रेनाल्ड को पुराने जमानें के उस्तादों से गहरा लगाव था। रैफेल और माइकेल एंजिलो को वह पैगम्बर से कम नहीं समझता था वह कहता है 'चित्रों में बेतकल्लुफी

मे कला का दोष है। रग विधान दो तरह का होता है---एक पाक और सादा दूसरा भड़कीला और चटकीला। अच्छे कलाकार पहले रग का इस्तेमाल करते है और मामूली तथा पेशेवर दूसरे रंग का। कुछ चित्रकारों का ऐसा ख्याल है कि ऐसी सादगी तस्वीर को बेरौनक ओर अन्धा चिराग बना देती हैं लेकिन यह कला का दोष है। इससे तस्वीर मे सुकून पैदा करने की ताकत मे कमी आ जाती है।'

रेनाल्ड को विद्वानों की सोहबत का बहुत शौक था। शाम चार बजते ही मेज सजा दी जाती थी और उसके इर्द-गिर्द गुणी लोग इकट्ठा होने लगते थे। शायर अपनी शायरी सुनाते और रसिकों से दाद पाते। जॉनसन इस मजलिस की जान थे। गोल्डस्मिथ भी कभी-कभी आ पहुँचते। अपनी बेतकल्लुफ सीधी बातो और बचकाना हरकतो से मजलिस की जिन्दादिली को बढाते। मशहूर लेखक और वक्ता एडमण्ड बर्क भी वहाँ अक्सर नजर आते थे पर वे तबियत के बहुत शोख और चुलबुले न थे। रेनाल्ड न सिर्फ विद्वानों की कद्र करता बल्कि उनकी पैसे से भी मदद करता था। जिस शख्स की तारीफ जॉनसन और बर्क की लेखनी से निकली हो उसके विरोध मे कोई कब जा सकता था?

सन् 1760 मे रॉयल अकादमी की बुनियाद पड़ी। इंग्लैंड मे चित्रकला की बाकायदा शिक्षा की यह पहली कोशिश थी। इसकी प्रसिद्धि मे कई सदियाँ गुजर जाने पर भी कोई फर्क नहीं आया। रेनाल्ड इस संस्था के ताउम्र अध्यक्ष रहे।

पहले जिक्र किया जा चुका है कि रेनाल्ड के दिल मे कवि पोप की बड़ी इज्जत थी। पोप को जब कविता से फुर्सत मिलती तो चित्र बनाया करते। एक हाथ के पंखे पर उन्होंने यूनानी किस्से की तस्वीर जरी के तारों से बनायी। यह पखा बाजार में नीलाम के लिये आया। रेनाल्ड को जब खबर मिली तो उसने एक आदमी भेजा कि तीस पौंड तक बोली बोलकर इस तोहफे को खरीद ले लेकिन ये हजरत तीस शिलिंग से आगे न बढे। आखिर एक दूसरे खरीददार ने दो पौंड में ले लिया। रेनाल्ड को इस पंखे का इतना शौक था कि उसे दूनी कीमत देकर खरीद लिया।

एक दावत के मौके पर जानसन, बर्क, गैरिक और गोल्डस्मिथ सब जमा थे। आपस मे बातचीत हो रही थी। एकाएक किसी ने कहा कि आओ एक दूसरे की मौत पर शोक का कतबा कहें मगर शर्त यह है कि ये सुन्दर और चमत्कारपूर्ण हो। इस पर सबने कोशिशें शुरू की। गैरिक को शरारत सूझी तो दो-तीन शेर व्यंग के तौर पर गोल्डस्मिथ पर कहे। गोल्डस्मिथ को यह शरारत बुरी मालूम हुई। उसने 'बदला' नाम से एक जोशीला नज्म कही। अफसोस है कि इस पैदाइशी शायर की यह आखिरी शायरी थी। ऐसा मस्त मौला किस्म का आदमी तथा ऐसे अच्छे विचारों वाला शायर अंग्रेजी भाषा मे फिर न पैदा हुआ। यह अक्ल, यह ज्ञान जिस आदमी में था वह बहुत खूबसूरत न था। रेनाल्ड ने गोल्डस्मिथ की जो तस्वीर बनायी उसमें वह बहुत कमजोर नजर आता है। रेनाल्ड की बहन का कहना था कि उसने किसी और चित्र में इतनी मेहनत न की थी जितनी इस चित्र में' सूरत और तस्वीर मे फर्क होना कोई गैर मामूली बात नहीं है।

1773 ई० में रेनाल्ड ने [illegible] की तस्वीर बनायी, यह इटली के मशहूर कवि

दाँते के एक किस्से का नायक है। मगर रेनाल्ड जैसा चित्रकार जो औरतों के होंठ और गर्दन को सजाने में अपनी कला की बारीकी दिखाता हो, रज और मुसीबत की कहानी क्योंकर बयान कर सकता था? दाँते के संजीदे मिजाज का नायक रेनाल्ड की तस्वीर मे भुखमरा और खस्ता हाल नज़र आता है। उस नायक की लोहानी ताकत और महान आत्मा का इससे बिल्कुल पता नहीं लगता लेकिन रेनाल्ड की पेंसिल से जो निकलता था उसकी कद्रदानी निश्चित थी। एक रईस ने इस तस्वीर को चार सौ पौंड में खरीदा। इसी साल रेनाल्ड जुलाई के महीने में ऑक्सफोर्ड सैर को गया जहाँ उसकी बहुत आवभगत हुई और उसे डॉक्टर ऑफ़ लॉ' की मानद उपाधि मिली। यहाँ उसकी मुलाकात डॉक्टर बीटी से हुई जो उस समय शिक्षा अकादमी में थे। बीटी ने एक किताब लिखा था 'सदाकत की ता तबदुल पजीरी' जिसमे ह्यूम, वाल्तेयर और गिबन जैसे आजाद ख्याल विद्वानों की नुक्ताचीनी की गयी थी। रेनाल्ड को दर्शनशास्त्र का ज्ञान नहीं था इसलिए इसके दिल में बीटी की बहुत इज्जत हो गयी। जब वह लंदन आया उसने बीटी का एक पोर्ट्रेट बनाया जो उसकी बेहतरीन स्वीरों में एक है। बीटी ऑक्सफोर्ड के विद्वानो की लिबास पहने बैठा है। 'सदाकत की ता तबदुल पजीरी' किताब उसके बगल में है। उसके बगल मे सच्चाई का फ़रिश्ता खडा है जो कुफ्र (नास्तिकता), अल्हाद (घमंड) और नाफ़रमानी (अवज्ञा) पर हावी है। इस तस्वीर में एक बहुत कमजोर और ऐश परस्त शक्ल नजर आती है ये कुफ्र की सूरत है आर वाल्तेयर से मिलती है। दूसरी मोटी तगडी जो अल्हाद की सूरत है ह्यूम से मिलती है। तीसरी सूरत नाफरमानी की है जो गिबन की छाया मालूम होती है। गोल्डस्मिथ ने जब यह तस्वीर देखी आपे से बाहर हो गये, बोले—'आप जैसे बाकमाल के लिये इस हद तक चापलूसी पर उतर आना निहायत बुरा मालूम हो रहा है। आपको वाल्तेयर जैसी पैनी बुद्धि वाले व्यक्ति को बीटी जैसे बकवासी के मुकाबले मे जलील करने की हिम्मत कैसे हुई? बीटी और उसकी किताब दस बरस मे ताक पर रख दी जायेगी मगर आपकी तस्वीर और वाल्तेयर की शोहरत हमेशा जिन्दा रहेगी।' गोल्डस्मिथ ने बहुत सही कहा था। बीटी का अब कोई नाम भी नही जानता। वाल्तेयर, ह्यूम और गिबन के नाम सूरज की तरह आज भी रौशन है।

रेनाल्ड की तस्वीरों का रंग टिकाऊ नहीं होता था। शोख और भड़कीले रंगों को वह खुद नापसन्द करता था। मगर इसकी ज्यादातर तस्वीरे चटकीली ही नजर आती है क्योंकि वह अपने खरीददारों की मर्जी का ख्याल बहुत रखता था और उस जमाने का आदमी शोख रंगों को ज्यादा पसन्द करता था। वह अपने रग विधान के कायदों और पैमानों को जाहिर नहीं करता था। अज़ीज से अजीज शागिर्द को भी अपनी तरकीबों का राज नही बताता था। उसकी यह कंजूसी बिल्कुल हिन्दुस्तानी कलाकारों की तरह थी जो अपने गुर और करतब अपने साथ ही ले जाते हैं। हाँ वह खुद पुराने उस्तादों के रग रोगन बनाने के तरीकों की खोज किया करता था। उसने अपनी कमाई का बहुत बडा हिस्सा केवल उन सुन्दर नमूनों को खरीदने में खर्च किया जिनमे वह तस्वीर बनाने का गुर पा सके अगर उसका पूरा सग्रह आज मौजूद होता तो वह ललित कला की बेमिसाल

धरोहर होती। मगर रेनाल्ड ने उन्हें सजावट के लिये नही बल्कि खोज और तहकीकात के लिये खरीदा था। वह एक-एक तस्वीर की सर्जन की तरह चीर फाड़ करता था ताकि उसे मालूम हो कि अस्तर किस रंग का है, उस पर कौन सा रग चढ़ाया गया है और कौन-कौन से रग आपस में मिलाये गये हैं। इस चीर-फाड़ के बाद तस्वीर किसी काम की न रह जाती थी।

रेनाल्ड की तस्वीरों मे पता चलता है कि वह प्रकृति को बडी बारीकी और गहराई से देखता था। अपनी कला में कमाल वह दसरे कलाकारों की कला के सूक्ष्म परीक्षण से लाता था। कितनी ही छोटी बात क्यों न हो उस पर गौर अवश्य करता था। बच्चो के स्वभाव का अध्ययन भी वह बहुत गहराई से करता था। उसका कहना था कि बच्चों की मुद्राओं, खेल और शरारत मे दिल मोहने का कारण उनका बेतकल्लुफ होना होता है। जब बच्चे उसकी कार्यशाला में आते तो उनकी हरकतो को वह बहुत गौर से देखता था। जब वे मारे खुशी के फूलकर तस्वीरों की नकल उतारने लगते तो इस नजारे को देखकर वह बहुत खुश होता था। एक सस्मरण में वह कहता है, 'मेरी समझ मे नही आता कि आम आदमी की राय तस्वीरों के बारे में क्यो न मान ली जाय। मसलन अगर कोई मामूली आदमी किसी तस्वीर को देखकर कहे कि इसका आधा चेहरा क्यों स्याह है या नाक के नीचे काला धब्बा क्यों है तो मैं यह नतीजा निकालूँगा कि रंग गहरा हो गया या अच्छी तरह साफ नही किया गया। ये रंग अगर स्वाभाविक होते तो उसकी ओर किसी की नजर नही जाती।'

उसकी शोहरत दिनों दिन दुनिया में फैलती जा रही थी। 1785 ई० में रूस की मशहूर मलिका कैथरीन ने उससे एक तस्वीर की फरमाइश की। रेनाल्ड ने महीनों सोचने के बाद एक ऐसा मजमून पसन्द किया जो उसके लिये की गयी मेहनत के मुकाबले में बहुत मामूली मालूम होता है। मलिका कैथरीन हिम्मत और अक्ल में अपना दूसरा सानी नहीं रखती थी। इतिहास गवाह है कि रेनाल्ड ने इस तस्वीर में शेर को मारने वाले हरक्युलिस को दो साँपों का गला घोंटते दिखाया है। हालाँकि कैथरीन को ऐसी पेचीदा तस्वीर को समझने की अक्ल न थी फिर भी उसने खुले दिल से इसकी तारीफ़ की और पद्रह सौ पौंड मेहनताना के तौर पर और एक सोने की सन्दूकची जिसमें उसकी तस्वीर बन्द थी भेंट के तौर पर भेजी।

उन्हीं दिनों इंग्लैंड के एक बहुत बडे प्रकाशक ने शेक्सपियर के ग्रन्थों का तस्वीर के साथ संस्मरण निकालने का इरादा किया। रेनाल्ड ने उसके लिये तीन तस्वीरें बनायी। पहली तस्वीर उस हास्य की जान है जिसका नाम अंग्रेजी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हुआ है। पिक एक निहायत शोख और चुलबुले किस्म का जोकर है जो रगीले बादशाह हेनरी के दरबार में था। इस तस्वीर ने जादू कर दिखाया। उसका हाथ कोई शरारत से भरी शोखी करने को आमादा नज़र आ रहा है और आँखों से किसी को छेड़ने और किसी से कोसे जाने और गाली खाने की ख्वाहिश टपक रही है दूसरी तस्वीर मैकवेथ की है

अच्छे चित्र मौजूद है।

सर जोश्वा अब 66 बरस के हो गये थे। हालाँकि दौलत और शोहरत की कोई कमी नहीं थी लेकिन दोस्तों के उठ जाने का सदमा दुनियावी न्यामतों से कही ज्यादा था। गोल्डस्मिथ, जॉनसन, वर्क और गैरिक सब एक-एक करके साथ छोड़ गये थे। यहाँ तक कि सन् 1789 में उसके सामने भी मौत का पैगाम आ गया। आँखों की रोशनी जाती रही। 1792 ई० मे वह भी इस दुनिया से उठ गया।

रेनाल्ड ने न केवल बहुत सी कमाल की तस्वीरे बनायी जो उसकी अमर यादगार है बल्कि अनेक विद्वतापूर्ण व्याख्यान भी दिये। उसने अनेक तस्वीरें ऐसी बनायी जो काव्यात्मक और ऐतिहासिक हैं जो उसके कमाल का सिक्का हमेशा दिलों मे बिठाती रहेगी। व्याख्यान देने में उसकी मंशा थी हौसलामन्द युवा चित्रकारों के दिलो पर चित्रकला की श्रेष्ठता सिद्ध करना और उनमें खोज एवं अध्ययन के लिये शौक पैदा करना जिससे वे चित्रकला की बारीकियो और उसके महत्व को समझ सकें। क्या-क्या तरकीबे की जायँ किन-किन उसूलों की पाबन्दी की जाय, धूप-छाँह का कैसा इस्तमाल किया जाय जिससे उन तस्वीरो में जादू का असर पैदा हो जो पुराने उस्तादों के चित्रो मे पाया जाता है। वह महज ज़ेहन और कायदो का कायल नहीं था। उसकी मंशा थी कि इस कला मे कमाल हासिल करने के लिए दिन रात की मेहनत, बराबर सोच विचार करना और पुरानी बेहतरीन कलाकृतियो के प्रति आदर बनाये रखना जरूरी है।

टॉमस गेन्सबरो

विभिन्न प्रकार की चित्रकलाओं में प्रकृति चित्रण को सबसे मुश्किल माना गया है और मुखाकृति चित्रण को सबसे आसान। अगर रेनाल्ड जो अंग्रेजी चित्रकला का ब्रह्मा समझा जाता है, मुखाकृति चित्रण को आसमान की बुलन्दियों तक ले गया तो गेन्सबरो ने प्रकृति चित्रण को कमाल के रुतबे तक पहुँचाया। रेनाल्ड के पहले इग्लैंड में वेनडाइक और रोबिन्स जैसे आला दर्जे के चित्रकार मुखाकृति चित्रण की परम्परा की शुरूआत कर चुके थे। आम आदमी की रुचि भी इस फन की ओर थी। गेन्सबरो के पहले इग्लैंड में प्रकृति चित्रण का किसी ने साहस नहीं किया था। इस लिहाज से अपने मुल्क में वह इस कला का जन्मदाता कहा जा सकता है।

टॉमस गेन्सबरो सन् 1747 ई० में सफक नामक सूबे में पैदा हुआ। उसके पिता बजाज थे जो अपनी ईमानदारी, अच्छे बर्ताव और मेहनत के लिये चारों ओर मशहूर थे। उसकी माँ आम माँओं की तरह मुहब्बती, सजीदा मिजाज और अपने बेटो पर नाज करने वाली थी। यह परिवार एक इज्जतदार परिवार था। टॉमस अपने तीन भाइयो में उम्र की लिहाज से सबसे छोटा था मगर अक्ल और पैनेपन में सबसे अव्वल। चित्रकला का शौक वह मां की कोख से ही लेकर पैदा हुआ था। उसके मकान के करीब ही चार मील के दायरे में एक निहायत खूबसूरत झील थी जिसके किनारे-किनारे पुराने छतनार के सायेदार पेड़ लगे हुए थे। झील के बल खाते नाले से होकर बड़े खुशनुमा तरीके से पानी बहता था। टॉमस उसी सुहाने रास्ते से रोज स्कूल जाता था। इस तरह खूबसूरत कुदरती नजारे को देखते-देखते उसे कुदरत से लगाव हो गया और आखिर में वह प्रकृति चित्रण में कमाल को पहुँचा। अब भी वह कोने और दरख्त मौजूद है जहाँ बैठकर वह फूलों-पत्तियों और कुदरत के लुभावने नजारो की तस्वीर बनाया करता था और कहते है उसमें आने वाले जमाने के कमाल के आसार मौजूद थे। सिर्फ अभ्यास की कमी थी। दस वर्ष की उम्र में उसके हाथों की सफाई और निगाह की तेजी के जौहर खुलने लगे थे। बारह वर्ष की उम्र में तो वह पूरी तौर से चित्रकार बन गया लेकिन ऐसी हालत में जाहिर है उसकी स्कूली तालीम बहुत कम हुई होगी। मगर जिन्हे कुदरत से लगाव होता है वे अपनी इस कमी को अपने निजी तजुर्बे और हुनर से बहुत जल्द पूरी कर लेते है।

कुछ अर्से तक टॉमस अपने कला प्रेम को माँ बाप से छिपाता रहा मगर कब

तक छिपाता? एक रोज़ उसके जी में आया कि झील के किनारे बैठकर उसे जी भर कर देखें। मगर स्कूल बन्द न था। आखिर अपने पिता की तरफ से मास्टर को एक खत लिखा कि टॉमस को आज छुट्टी दे दीजिए। उस वक्त तो चकमा चल गया। मगर पिता पर जब मामला खुला और मास्टर ने टॉमस के पिता के पास वह खत इसलिए भेजा कि बेटे पर नज़र रक्खी जा सके तब पिता ने बड़े अफसोस से कहा कि वह छोकरा तो बहुत ही घाघ निकला। कभी न कभी फाँसी पर जरूर चढ़ेगा। मगर जब गाँववालो ने यह बताया कि उस दिन तो टॉमस झील के किनारे बैठकर तस्वीर बना रहा था और पिता ने उन तस्वीरों को देखा तो अफसोस की जगह उन्हें दिली खुशी हुई और बोल उठे, 'टॉमस तुम तो चित्रकार हो गये।' एक बार वह अपने पिता के बगीचे मे बैठा हुआ एक पुराने लेकिन निहायत खूबसूरत ठूंठ पेड़ की तस्वीर बना रहा था। उसने गॉवके एक आदमी को चहारदीवारी के ऊपर से चन्द लाल पके हुए आडुओं की तरफ ललचाई नजर से ताकते देखा। सूरज की तिरछी किरणें उसके ख्वाहिशमन्द चेहरे पर इस तरह पड रही थी कि उस पर धूप छाँह की निहायत मोहक स्थिति पैदा हो रही थी। टॉमस ने उसी वक्त उसका चेहरा भी उतार लिया। उसके बाद उसके पिता न जब तस्वीर देखी तो बेहद खुश हुए और किसान को बुलाकर कहा, 'जरा अपनी सूरत देखो।' बेचारा किसान बहुत लज्जित हुआ। यह तस्वीर खुद टॉमस को इतनी भली मालूम होती थी कि बहुत दिनो के बाद उसने उसे रंगों से सजाया और कला पारखियों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। ऐसी जल्दी में उसने जो तस्वीरे बनायी हैं उनमें आजादी और बेतकल्लुफी ऐसी है कि वे उसकी बेहतरीन तस्वीरों में हैं। उस जमाने की बनायी हुई तस्वीरे अब रही नहीं लेकिन किसी वक्त वे सैकडों की तादाद में थी। चरती हुई गायें,डालों पर चहचहाती हुई चिडिया, पानी पीती हुई भेड़ें, बाँसुरी बजाता हुआ किसान, गाय को दाना खिलाती हुई अहीरिन, दरिया के किनारे की फ़िजा, खुशनुमा घाटियाँ और कोई ऐसा नजारा न था जिस पर इसने अपनी तूलिका न चलायी हो। वह उनके खाके खींच-खीच कर रखता जाता था कि आगे चलकर उनकी तस्वीरें बनाऊँगा मगर उसको जब इस फन में कमाल हासिल हो गया तब ये खाके उसकी निगाह में न जँचे। इन्हे यार-दोस्तों मे बाँट दिया। एक कला मर्मज्ञ ने इन खाको में से एक को देखा जिसमें पेड़ो का एक झुंड बना था। उसकी राय थी कि वह अपनी किस्म में बेनज़ीर था।

गेन्सबरो जब चौदह वर्ष का हो गया और चित्रकला मे उसकी दिलचस्पी पक्की हो गयी तब लोगों का विचार हुआ कि उसे इस फ़न में तालीम लेने किसी चित्रकार की शागिर्दी में भेजा जाय। होगार्थ के दोस्तों में हेमैन नामक एक चित्रकार था जिसकी शागिर्दी मे टॉमस को सुपुर्द कर दिया गया। अकलमंदी खुशमिजाजी और लगन के कारण दोस्तों की निगाह में उसकी बडी इज्जत थी। मगर अभी तक यह किसी ने न सोचा था कि वह इस फ़न में इतना कमाल दिखलायेगा। वे समझते थे कि किसी छोटे-मोटे शहर मे इस पेशे से अपना गुजारा कर लेगा। टॉमस को शुरू से ही मुखाकृति चित्रण मे दिलचस्पी न थी और ऐतिहासिक घटनाओं की तस्वीरें बनाने में अक्ल ज्यादा लगती थी कमाई

कम होती थी। गालिबन इन दोनों किस्म की तस्वीरों के लिये मानों वह बनाया ही नहीं गया था। कुदरत की तस्वीरे बनाने से उसे पैदाइशी लगाव था। इस फन को चमकाने और इसी की बदौलत चमकने का इरादा उसने कर दिया था। इग्लैंड में चित्रकला के इस खास क्षेत्र में इस फन का जानकार अब तक कोई नही निकला था। वेशक विल्सन की तबियत इस ओर बहुत झुकी लगती थी और इसमें उसकी काबलियत भी थी मगर जीविका का कोई दूसरा उपाय न होने के कारण मजबूरन वह पोर्ट्रेट बनाने लगा था। टॉमस चार बरस तक लदन में रहा और रग बनाने की तथा रगसाजी की कला मे पारगत होकर अपने वतन लौट आया।

वह अब अपने अठारह साल में था। उसकी शोहरत अब अपने परिचितों के दायरे से निकलकर आस-पास के लोगों में भी फैलने लगी। उसकी जिन्दादिली, उसकी मर्दानगी और उसकी खुशमिजाजी उसके ऐसे गुण थे जो उसे हर दायरे में खास जगह दिलाते थे। एक दिन शाम को वह सैर कर रहा था कि अचानक एक पेड़ की खूबसूरती ने उसे अपनी ओर खींचा। उसके नीचे भेंडे खामोश आराम कर रही थीं ओर ऊपर फाख्ता और कबूतर बसेरा ले रहे थे। वह वही जमीन पर बैठ गया और इस नजारे की तस्वीर बनाने लगा कि एक हसीना घूमती हुई वहाँ आ पहुँची। नौजवान चित्रकार ने उसी वक्त उसको इस तस्वीर में और अपने दिल मे जगह दे दी। थोड़े ही दिनों में उससे उसकी शादी हो गयी और वे दोनों इस्पियोक नामक जगह में एक छोटा सा मकान छह पौड सालाना के किराये पर लेकर रहने लगे। मियाँ-बीबी एक दूसरे पर फ़िदा थे। हालांकि पेशे से बहुत कम आमदनी होती थी मगर इस किफायतदार, हुनरमंद औरत की वजह से आपस मे कभी बदमजगी नहीं हो पाती थी।

यहाँ टॉमस की मुलाकात मि० फिलिप से हुई जो एक किले के गवर्नर थे। मि० फिलिप तबियत के रईस थे और बैठकबाजियो के आशिक। लेकिन जहाँ रहते थे उस उजड़े मुकाम में बैठकबाजियों का कोई मौका न था और न ऐसे लोग ही थे जो साथ दे सकें। ऐसे लोगों को तो शहर से ही लगाव होता है। उसने जब टॉमस को इतना नेक, हसमुख और कला का धनी पाया तब उससे मेल जोल पैदा करना शुरू किया। टॉमस भी इस जगह पर अभी तक गुमनाम था और उसे भी जरूरत थी कि रईसों की जमात में उसकी पहुँच हो और लोग उसे जानें। इसलिये उसने गवर्नर की सरपरस्ती कबूल कर ली। फिलिप हालाँकि मिज़ाज का नेक था मगर उसके स्वभाव में बनावट बहुत थी। जितनी वह किसी के लिये करता उससे कही ज्यादा कहता था। ऐसा आदमी न था कि किसी पर अहसान करे और भूल जाये। बल्कि एक बार किसी पर कोई अहसान कर ले तो उसे बार-बार कहता। यह बात टामस जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति को कैसे पसन्द आती? लेकिन वह बहुत अर्से तक महज इस ख्याल मे कि कही मैं अहसान फरामोशी का गुनहगार न ठहराया जाऊँ गवर्नर साहब की लम्बी चौड़ी बातों को बर्दाश्त करता रहा। मगर इधर जब उसकी शोहरत फैली और उधर दिलों में भी गाँठ पडी तो फिलिप टॉमस का कट्टर

तरह से अच्छा सलूक करते रहेंगे जब तक आप उनको अपना देवता, अपना बुजुर्ग और अपना सरपरस्त मानते रहें मगर ज्यों ही आपके तरीकों में आजादी की जरा भी बू पायेंगे आपके दुश्मन हो जायेंगे क्योकि ऐसे लोगों की निगाह में अहसान फरामोशी का इससे बड़ा इजहार हो नही सकता।

फिलिप ने टामस से फ़रमाइश की कि मेरे किले और उसके आस-पास की तस्वीर बनाओ। मेहनताना 30 पौंड है। टॉमस ने इस तस्वीर में अपने फन का पूरा हुनर लगा दिया, एक नक्काश ने उसका अक़्स लोहे के साँचे मे उतार लिया और इस तरह इसकी नकल की कितनी ही कापियाँ थोड़े ही दिनों में बिक गयी। असली तस्वीर वक्त के हाथो बर्बाद हो गयी। इस तस्वीर के अलावा टॉमस ने इस्पियोक की तमाम मोहक जगहों की तस्वीरे बनायी और इस छोटी सी जगह में उसका नाम मशहूर हो गया। अब जरूरत हुई कि वह इस जगह को छोडकर किसी ज्यादा आबाद और रौनकदार जगह पर जाकर रहना शुरू करे।

बाथ इंग्लैंड का शिमला या नैनीताल है। यहाँ पर पचास पौंड सालाना का मकान लेकर रहने लगा। गवर्नर फिलिप उस जगह के फैशनेबल दायरे मे बहुत मशहूर था। उसने टामस गेन्सबरो से अपनी तस्वीर बनाने की फरमाइश की जिससे उसे देखकर दूसरे रईस भी उसकी ओर झुके। पर टॉमस की इस घमडी आदमी की खुशामद करते-करते जान मुसीबत में आ गयी थी। उसने उसकी तस्वीर शुरू तो की पर पूरी न कर सका और यही गोया गवर्नर साहब के नाराज होने की पहली वजह थी। पर टॉमस को गवर्नर साहब की नाराज़गी की कोई परवाह न थी। वह अपना वक्त प्रकृति की तस्वीर और पोर्ट्रेट बनाने तथा संगीत का रियाज़ करने में गुजारता था। पहले पोर्ट्रेट की कीमत पाँच पौंड थी, फिर आठ पौंड हुई और ज्यों-ज्यों उसकी शोहरत बढ़ती गयी उसकी तस्वीरों की कीमत भी बढ़ती गयी। यहाँ तक कि उसे आधे कद की पोर्ट्रेट के चालीस पौंड और पूरे कद की पोर्ट्रेट के सौ पौंड मिलने लगे। अब चारों तरफ से दौलत बरसने लगी। उसके हाथों में तेजी और तबियत में मेहनत की चाह थी। अब उसे उन शौको में रुपया खर्च करने का मौका मिला जो अब तक गरीबी की वजह से दबे थे। किताबों से उसे कोई लगाव न था और न ही लेखकों से कोई मोहब्बत बल्कि शहर के मशहूर लोग जितनी उसकी सोहबत के इच्छुक थे उतना ही वह उनसे दूर भागता था। वह कहा करता था कि मैंने प्रकृति की किताब पढ़ी है और यही मेरी जरूरत के लिये काफी है। हाँ उसे सगीतज्ञों से बहुत प्रेम था। उनकी सोहबत में बैठने से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती थी। वह अच्छे गायक को बहुत इज्जत देता था और एक अच्छे साज को जमाने की ईजाद समझता था। तस्वीर बनाने से जो वक्त बाकी बचता वह संगीत सीखने में बिताता। एक जीवनीकार का कहना है कि वैसे तो टॉमस गेन्सबरो का पेशा तस्वीर बनाना था और खाली वक्त मे वह संगीत सीखता था लेकिन इस कला का वह जिस तरह रियाज़ करता था उससे पता लगता है कि संगीत को वह अपनी आजीविका के लिये जरूरी समझता था और तस्वीर बनाने को तफरीह के लिये

संगीत का उसे किस कदर शौक था इस वाक़या से जाहिर होता है। एक बार उसने वैनडाइक की किसी तस्वीर में बॉसुरी का चित्र देखा। उसने सोचा बाँसुरी कोई बहुत अच्छा साज होगा। फिर उसे ख्याल आया कि एक जर्मन प्रोफेसर को उसने बाँसुरी बजाते देखा है। उनके पास जब वह पहुँचा तब प्रोफेसर साहब मेज पर बैठे हुए भुने हुए सेब खा रहे थे और बॉसुरी बगल में रक्खी थी। टॉमस ने सलाम करने के बाद कहा—जनाबे-मन। मै आपकी बॉसुरी खरीदने आया हूँ। दाम कहिए। यह नगद हाजिर है।

प्रो० ने कहा—जनाबेमन। मै अपनी बाँसुरी नही बेचता।

टामस ने कहा—दाम पर मत जाइये। जितना कहिये हाजिर है।

प्रो० ने कहा—इसका दाम बहुत है। आपके दिये न दिया जायेगा—दस पौंड।

टामस—बस दस पौंड। लीजिये। इसको आप बहुत कहते थे।

यह कहकर बॉसुरी ले ली और रुपये गिन दिये। थोड़ी दूर चला था कि फिर लौटा।

टामस ने कहा—जनाब। मैं अधूरा काम करके चला जाता था। यह बॉसुरी मेरे किस काम की जब तक आपकी किताब भी न हो।

प्रो० साहब ने कहा—कैसी किताब?

टामस—अजी वही जो आपने इस बाँसुरी को बजाने के लिये लिखी है।

प्रो० बोले—वह किताब मैं नहीं बेच सकता।

टॉमस—लाइये, लाइये दिल्लगी मत कीजिये। आप जब चाहें ऐसी किताब लिख सकते हैं। लीजिए दस पौंड। आदाबर्ज।

चन्द कदम चला था कि फिर वापस आया।

कहा—आपने मुझे अच्छा फॉसा। भला यह खाली खुली किताब लेकर क्या करूँगा? इसे समझायेगा कौन और बाँसुरी कैसे बजेगी? उठिये—तशरीफ ले चलिये और मुझे सिखा दीजिये।

प्रो० ने कहा—आप चलिये मैं कल आऊँगा।

टामस ने कहा—नहीं। आपको अभी चलना होगा।

प्रो० बोले—जरा कपडे तो पहन लूँ।

टामस ने कहा—आप कपड़े पहन कर क्या कीजिएगा। आप यूँ ही हजारों में एक हैं।

प्रो० ने कहा—जरा दाढी तो बना लूँ।

टामस ने कहा—वाह! तब तो आपका हुलिया ही बिगड़ जायेगा। क्या आप समझते हैं कि वैनडाइक आपका चित्र बनाता तो दाढ़ी सफाचट करने देता।

कहने का मतलब यह कि इतनी माथापच्ची के बाद वह प्रोफेसर साहब को खींच खाँचकर अपने घर ले गया उसे इस कला से ऐसा लगाव था कि उसका घर गाने के

बीसों साजो से भरा रहता था और उसकी खाने की मेज पर हमेशा संगीत के प्रोफेसर बैठे नजर आते थे। वह उठते-बैठते गाने की ही चर्चा करता रहता और तस्वीरे बनाते वक्त भी यही चर्चा रहती और ज्यों ही फुर्सत मिलती एक न एक बाजे पर गाने लगता।

बाथ मे एक गाडीवाला रहता था जो सरकारी डाक इकट्ठा किया करता था। उससे टॉमस की दोस्ती हो गई। गाडी वाले के पास एक अच्छा घोड़ा था। टामस ने दो-तीन दिन के लिये उसका घोड़ा माँगा ताकि उसको वह अपनी तस्वीर मे उतार ले। गाडी वाला चित्रकला की कदर करता था। उसने घोडे को साजो सामान से सजा कर टॉमस को सुपुर्द कर दिया। टामस ने भी इस दरियादिली का जवाब दिया। उसने उसके घोडे और गाडी की तस्वीर बनायी और उसके कुनबे को मय अपने उस गाडी में बिठा दिया। कहते है यह तस्वीर उसकी बेहतरीन तस्वीरों में है।

अब गेन्सबरो की आमदनी, शोहरत और इज्जत इतनी हो गई कि उसे बाथ से उठकर लन्दन में रहने की हिम्मत हुई। यहाँ वह गवर्नर फिलिप की नाजबरदारी से बच गया और मुखाकृति तथा प्रकृति चित्रण मे दिनोदिन तरक्की करता गया। उसका मकान बहुत बड़ा था और उसकी तस्वीरों का कमरा बहुत तबियत से सजाया गया था। चूँकि उसने इसके पहले बहुत से पोर्ट्रेट बनाये थे इसलिये उसे लन्दन में बहुत दिनों तक बेकार नही बैठना पड़ा। इसमे शक नहीं कि इस समय रेनाल्ड की बड़ी गर्मबाजारी थी मगर शौकीनों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि वह अकेले सबकी फरमाइशे पूरी नहीं कर सकता था इसलिये उसे ऐसे आदमी की जरूरत थी जो अपने काम में निपुण हो, आजाद ख्याल का हो और चेहरे के भावों को तस्वीर में जाहिर करने की काबलियत रखता हो और वैनडाइक से भी टक्कर ले सकता हो।

शाही खानदान ने भी इसकी कद्रदानी की। बादशाह, मलिका और तीन शहज़ादियों ने छोटे-छोटे पैमाने पर उससे तस्वीरें बनवाई। इसमें शक नहीं कि अगर इसके मिजाज में जरा ज्यादा सब्र और शिष्टता होती तो वह रेनाल्ड से भी ज्यादा लोकप्रिय हो जाता। उसके रंगों मे टिकाऊपन और शोखी थी और जिस मजमून को वह लेता उसमें जान और ताजगी डाल देता। उसकी शोहरत ने जिन शौकीनों को उस तक पहुँचाया उसमे डेवनशायर की बेगम भी थी। वह हुस्न और नफासत में अपने वक्त की बेहतरीन हसीना मानी जाती थी। मगर टॉमस जब उसकी तस्वीर बनाने बैठा तो उसकी खूबसूरती और उसकी मोहत बातचीत का उसके दिल पर इतना असर हुआ कि उसके हाथों से शोखी, आजादी और बेतकल्लुफी जाती रही और लाख कोशिशों के बावजूद भी उसके उस अक्स को जो उसके दिल में उतर गया था तस्वीर में न उतार सका। आखिर कई बार की नाकामयाब कोशिशों के बाद यह कह कर काम बन्द कर दिया कि यह शक्ल मेरी काबलियत के बाहर है। उसके मरने के बाद उस तस्वीर के दो तीन मसौदे मिले जो निहायत खूबसूरत थे।

इसी तरह एक रईस उसके पास तस्वीर बनवाने आये। उनके कपडे बिल्कुल नये और भड़कीले थे और बैठने का अन्दाज भी ऐसा था कि उससे उनकी हैसियत और

शख्सियत झलकती थी। जब गेन्सबरो ने पेंसिल उठायी तो आपने फ़रमाया—जनाबेमन। मेरी ठुड्डी पर एक गड्ढा है उसे भूल न जाइयेगा।' टामस इनका पहनावा और चाल ढाल देखकर मुस्कुरा रहा था। खुशामद से वह कोसों दूर था। न तो जबान से न ही कलम से खुशामद करना पसन्द करता था। बोल उठा, 'जनाब। आप तशरीफ ले जाइये। आपकी तस्वीर बनाने से मै बाज आया।'

एक बार मशहूर कलाकार डेविड गेरिक टॉमस के यहाँ तस्वीर बनवाने आया लेकिन जब-जब उसने उसके चेहरे पर निगाह डाली उसने एक नये अन्दाज से अनोखी तरह का चेहरा बना लिया। कभी आँखें छोटी कर दी कभी होंठ मोटे कर दिये। टॉमस इन हरकतों से परेशान हो उठा। गेरिक खुश होते हुए लौटे और रेनाल्ड से इस शरारत का बड़े फख्र से बयान किया जिस पर उस मडली में खूब कहकहे लगे।

लेकिन बहुत कम लोग हैं जो कला की हर विधा में कमाल दिखाने का दावा कर सकते हैं। मुखाकृति चित्रण में टॉमस कुशल जरूर था लेकिन रेनाल्ड उससे कही आगे बढ़ा हुआ था। टॉमस को प्रकृति की सुन्दरता का पैदाइशी ज्ञान था और इस क्षेत्र मे उसका दूसरा सानी न था। प्रकृति के अलग-अलग रूपों की उसने बेशुमार तस्वीर बनायी। उसकी कलम ने बड़े अनूठे तरीके से प्रकृति की बारीकियों को तस्वीरों में उतारा। कभी हरे भरे बड़े वृक्षों की तस्वीर, कभी बेलों से लिपटी झाड़ी, कभी अपनी हँसिया तेज करता हुआ घसियारा, कभी सीटी बजाता हुआ हलवाहा तो कभी बांसुरी बजाता हुआ चरवाहा। ये तमाम कुदरती नज़ारे उसने इतनी सफाई, खूबी और बारीकी से दिखाये हे जिन्हें कोई दूसरा नहीं दिखा सकता।

टॉमस को कवियो और लेखकों से बहुत लगाव न था। हालाँकि एडमण्ड बर्क मशहूर वक्ता और शेरेडियन मशहूर नाटककार जैसे कला प्रेमियों की वह बहुत इज्जत करता था। सर जॉर्ज बोमान्ट उस जमाने के शौकीन तबियत रईस थे। अक्सर कवि और कलाकार उनके घर खाने पर इकट्ठे होते थे। बर्क, शेरेडियन और गेन्सबरो भी उनके घर जाते थे। सर जार्ज बोमान्ट अपने एक किस्से में बयान करते हैं, 'एक बार गेन्सबरो की मैंने दावत की। बर्क वगैरह भी शामिल थे। उस दिन टामस ने खूब जिन्दादिली और हाजिरजवाबी दिखायी जिसकी वजह से हम सब उसकी बुद्धि के कायल हो गये और दस बजे रात तक खूब रौनक रही। आखिर चलते वक्त वादा हुआ कि दूसरे दिन फिर लोग जमे। दूसरे दिन फिर लोग आये लेकिन टॉमस की हाजिरजवाबी रुखसत हो गयी थी। वह खामोश एक तरफ बैठा रहा। लोगों ने बहुत चाहा कि उसकी तबियत को गर्माए पर कामयाब न हुए। आखिर उसने शेरेडियन का हाथ पकड़ लिया और अकेले में जाकर बहुत गंभीर होकर बोला, अब मेरे मरने के दिन बहुत करीब आ गये हैं। हालाँकि मैं देखने में जवान लगता हूँ पर मेरे मौत के दिन दूर नहीं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि कम से कम अपने एक दोस्त को हमदर्दी के लिये अपने साथ ले चलूँ। तुम चलोगे कि नहीं? साफ-साफ बोलो—हाँ या ना? शेरेडियन हँस कर बोला—जरूर चलूँगा। इतना सुनते ही टामस की जिन्दादिली वापस आ गयी वह फिर बुलबुल की तरह चहकने लगा और

बाकी वक्त नाचते गाते कटा।'

आला दर्जे के कलाकारो में और गुणों के साथ ईर्ष्या भी आम तौर से ज्यादा होती है। एक कलाकार दूसरे की कला को कुछ नही समझता है और अपने आपको उससे बेहतर साबित करने की कोशिश में लगा रहता है। रेनाल्ड और गेन्सबरो में बराबर होड लगी रहती थी। रेनाल्ड पोर्ट्रेट बनाता था और पोर्ट्रेट की उस जमाने में जितनी कदर थी उतनी प्रकृति चित्रण की नहीं। इसी वजह से दूसरे चित्रकार उनसे खार खाये रहते थे।गेन्सबरो खुल्लमखुल्ला उसकी बुराई किया करता था। एक बार आपस की मेलजोल का ज़ोर इतना हुआ कि दोनो शख्स एक दूसरे की तस्वीर बनाने पर आमादा हो गये मगर फिर बिगाड हो गया और दोनों आदमी अलग हो गये। गेन्सबरो ने अपनी मृत्यु शैय्या पर अपने रकीब को याद किया। रेनाल्ड की साफदिली देखिये तुरन्त वहाँ पहुँचा और दोनों आदमी ऐसे गले मिले कि उनके दिलों में जो ईर्ष्या का काँटा चुभा था वह उसी समय निकल गया। लड़ाई-झगड़े और दुश्मनी तब तक ही रहती है जब तक दिल एक नहीं होता। जब दुनिया की तरफ से दिल रंजीदा और मायूस होता है तो यह सोचकर अफसोस होना स्वाभाविक है कि हम क्यों इतने अर्से तक एक दूसरे की बुराई और नुकसान चाहते रहे।

गेन्सबरो अपनी तस्वीरों पर दस्तखत नहीं किया करता था। उसका ख्याल था कि किसी तस्वीर की कदर इसलिये नहीं होती कि वह किसी खास चित्रकार के द्वारा बनायी गयी है बल्कि इसलिये होती है कि उसमें कुछ खास गुण मौजूद हैं। उसे यकीन था कि उसकी तस्वीर में उसकी अपनी खासियत मौजूद है जिसकी बदौलत वह हमेशा मशहूर रहेगी। अपनी तस्वीरो में 'लकड़हारा और उसका कुत्ता आँधी में' उसे बहुत पसन्द थी। लकड़हारे की निगाहें जो आसमान की ओर उठी हुई है गोया खुदा से अर्ज कर रही है कि मुझे इस आँधी पानी, बिजली से बचा दे। यह किसानों की जजबात को उजागर करने की एक बेमिसाल तस्वीर थी। इसी प्रकार 'गड़ेरिये का लड़का और वर्षा' भी देहाती जिन्दगी के बड़े दिलचस्प पहलू की तस्वीर है जिसमें भीगने वालों के चेहरे से ऐसा भाव और बेबसी टपक रही है जिसका बयान नहीं किया जा सकता। पहली तस्वीर बर्बाद हो गई लेकिन उसका खाका अब भी मौजूद है जो इस बात का सबूत है कि तस्वीर निहायत ऊँचे पाये की रही होगी। गेन्सबरो ने इसकी कीमत 100 गिनी लगायी थी लेकिन उसके जीवन में ऐसा कद्रदान न मिला जो 100 पौंड भी इसके बदले में दे सके। उसके मरने के बाद उसकी पत्नी ने वही तस्वीर 500 पौंड में बेची। टॉमस की दूसरी मशहूर तस्वीरों में घड़ा लिये पनिहारिन और उसका कुत्ता है। हमारे मुल्क में अभी तक इन रोजमर्रा के वाकयात पर तस्वीर बनाने की कोशिश नहीं की गई। स्वर्गीय राजा रविवर्मा शायराना और ख्याली मजमून की ओर झुके। हाँ अब बंगाल के चित्रकारों का ध्यान इस ओर गया है और कुछ अच्छी तस्वीरे बनाई गई हैं।

रेनाल्ड की तरह गेन्सबरो भी खडे-खडे रंग भरा करता था और जो पेन्सिल वह इस्तेमाल करता उसमें लम्बी लम्बी डडियाँ लगी रहती थीं जो कभी कभी दो गज से

भी अधिक लम्बी होती थीं। वह अपनी तस्वीर के नमूने में जितनी दूर खड़ा होता था उतनी ही दूर निगाह के फेर से कोई अन्तर न पैदा हो। वह बहुत सवेरे उठता था और उसी समय से काम में लग जाता था। बारह-एक बजे तक काम करने के बाद वह अपने शौकिया कामों में लग जाता था। उसे शाम के वक्त अपनी बीवी के साथ बैठकर तरह-तरह के खाके खीचने में मजा आता था। खाके खींचकर मेज के नीचे फेंकता जाता था और इसमे जो उसकी तबियत के ज्यादा अनुकूल होते उस पर ज्यादा ध्यान देकर तस्वीर की सूरत में लाया करता था। गर्मी में वह गाँव के हरे मैदानो और साफ हवा मे घूमा करता था और जब जाड़े में काम करके थक जाता तो अपनी खिड़की से सिर निकालकर धूप खाया करता।

इस कलाकार में तल्लीन होने का गुण मौजूद था। एक जीवनीकार लिखता है 'टामस को बीन बजाने का बहुत शौक था। एक रोज कर्नल हेमिल्टन नामक व्यक्ति ने इसके सामने बीन बजाना शुरू किया। टामस पर इसका ऐसा जादू हुआ कि कहा—गाये जाओ—मै तुम्हे 'लडका छप्पर पर' वाली तस्वीर दूँगा जिसे खरीदने की तुम कई बार ख्वाहिश जाहिर कर चुके हो। कर्नल ने खूब दिल लगाकर गाया। टामस मुग्ध होकर उसके गाने का आनन्द लेता रहा। खुशी के आसू आखों से बह रहे थे और उसके चेहरे से खुशी झलक रही थी। कर्नल हैमिल्टन ने उसी वक्त गाडी किराया की और तस्वीर घर ले गया।

जिस दावत का सर जार्ज बोमान्ट ने जिक्र किया है उसे मुश्किल से एक साल गुजरा होगा कि गेन्सबरो के नाम मौत का पैगाम आ पहुँचा। वारेन हेस्टिंग्स उस समय नया-नया हिन्दुस्तान से वापस लौटा था। वहाँ पर उन ज्यादतियों के विरोध में जो उसने यहाँ देशी रियासतो पर की थी महाभियोग लगाया जा रहा था और एडमण्ड बर्क जो बडे जाने माने वक्ता थे उनकी ओर से दलीलें पेश कर रहे थे। हर रोज हाउस आफ कामन्स के सामने भीड़ इकट्ठी होती थी। गेन्सबरो भी शेरेडियन के साथ भाषण सुनने गया और एक खिड़की के सामने पीठ करके बैठ गया। थोडी देर बाद एकाएक उसे लगा कि किसी ने उसकी गर्दन पर बर्फ रख दिया। रगे तन गयी और दर्द होने लगा। घर आकर उसने फलालैन वगैरह बाँधा मगर कुछ फायदा न हुआ। आखिर सर्जन और डॉक्टरों को दिखाया गया। सबने कहा मामूली सर्दी है कोई खतरे की बात नहीं। पर गेन्सबरो के दिल में बैठा कोई कह रहा था कि तुम्हारा आखिरी वक्त आ गया है। आखिर अन्तिम वक्त आ ही गया। 2 अगस्त 1788 को इकसठवी साल मे उसका देहान्त हो गया। मरने के पहले उसने रेनाल्ड को याद किया था। दोनों आदमियों में मेल हो गया था। रेनाल्ड और शेरेडियन लाश के साथ-साथ कब्रगाह तक गये।

गेन्सबरो के मरने के बाद उसकी विधवा ने तमाम तस्वीरों को बेचना चाहा जिसमे छप्पन तस्वीरें और सौ से ज्यादा खाके थे। बहुत सी उसी समय बिक गयीं और कुछ नीलाम कर दी गयीं। इनमे से दो तस्वीरें जो जमाने के हाथो बर्बाद होने से बच गयी उनमें एक का नाम था 'नीला लडका' और दूसरे का 'योपडे का दरवाजा', पहली तस्वीर

रेनाल्ड की जिद में बनायी गयी थी। रेनाल्ड ने अपने एक भाषण में कहा था कि नीला रग लिबास के लिए ठीक नही है। गेन्सबरो ने नीला लड़का बनाकर इस दावे को गलत साबित किया। बहुत से आलोचको का कहना है कि अग्रेजी चित्रकारिता में किसी लडके की तस्वीर इतनी उम्दा नही है। नीले रंग का इस्तेमाल बहुत मुश्किल है और इस लिहाज से टॉमस वैनडाइक के बहुत नजदीक लगता है जो इस खूबी के लिये दुनिया भर मे मशहूर है। इस लड़के के चेहरे में ऐसी कुदरती खूबसूरती झलक रही है जिसमे बनावट की बू तक नही और उसका अन्दाज ऐसा है जो देखने वालो को हैरत में डाल देता है। दूसरी तस्वीर में खूबसूरत सा झोपडा है जिसके दरवाजे पर एक औरत एक बच्चे को गोद में लिये बैठी है और उसके इधर-उधर कई बच्चे खेल कूद रहे हैं। यह झोपडा बहुत घने दरख्तों के साये में बनाया गया है ओर पेड़ो की आड़ से झरने और हरे भरे लहलहाते मैदानो का दृश्य दिखाई देता है। उसके रंग बहुत शोख है उसमे एक प्रकार का भोलापन पाया जाता है जो उसकी खासियत है। वह औरत खुद एक गदराई हुई सेहतमन्द किसानी औरत की बेहतरीन मिसाल है। जिसके चेहरे की खूबसूरती, उसकी नजाकत उसकी आँखों की सादगी और होठों की मुस्कुराहट से और बढ जाती है।

चेहरे-मोहरे से गेन्सबरो भी निहायत रूपवान कहा जाता है। उसने भी होगार्थ की तरह विश्वविद्यालय की तालीम नहीं पायी थी मगर उसके लिखे हुए खत जो मिले है उनमें जो चुहल और कोमलता है वह बहुत कम अंग्रेजी लेखकों की कृतियों में पायी जाती है। हाँ, इसमे शक नहीं कि वह बहुत मसखरे मिजाज का था इसलिये अपने लेखन में वह गम्भीरता न बरत सका जो एक दार्शनिक के लेखन में होना चाहिये। उसके इरादे बहुत पक्के हुआ करते थे। जिस बात से एक बार जी हट गया फिर नहीं जमता था। सन् 1784 में जब उसने एक तस्वीर रायल अकादमी की नुमाइश में भेजी तो यह ताकीद कर दी कि जहाँ तक हो सके इसे नीचे लटकाया जाय पर अकादमी में लोगों ने इस ताकीद का विरोध किया। गेन्सबरो ने तस्वीर वापस ले ली और फिर कभी न भेजी।

उसके खाके बहुत से है और कोई ऐसे नही जिनसे उसके जमाने का हाल न पता लगता हो। इतने खाके तो शायद ही किसी और चित्रकार ने छोड़ा हो। उनमें से कुछ तो उसकी बेहतरीन तस्वीरों के मुकाबले में हैं। उन सब में बारीकी, पैनापन और अनोखापन मौजूद है। एक आलोचक का कहना है कि 'लेडियों के जो खाके उनके मैने देखें वैसे और कहीं देखने में न आये। उनमें बहुतो के नाम तो मिट गये हैं मगर हाल मे इस चित्रकार के परपोते रिचर्ड लेन ने जो खुद भी आला दर्जे का चित्रकार है इन खाकों को छपाना शुरू किया। अब तक दो-ढाई दर्जन निकल चुके हैं और शायद यह सिलसिला बहुत दिनो तक चलता रहेगा।"

मगर टामस गेन्सबरो सिर्फ कुदरती नजारों की तस्वीर नहीं बनाता था। ऐसे चित्रकारों का कायदा है कि अपने बागीचे को तो जन्नत का बगीचा बना देंगे। उनकी नहरें, नदियाँ जन्नत की नदियों को भी शरमा देंगी उनके मैदान उनकी पहाड़ियाँ उनके झरने सब ऐसे

और मजे के लिये बनाये गये हैं। उन तस्वीरों में इन्सान का नाम नहीं होता। बागीचे सज धजे रखे हुए हैं मगर उन्हें सजाने वाला आँखों से ओझल है। झरने का पानी बड़े खुशनुमा तरीके से गिर रहा है पर उस नज़ारे का आनन्द लेने वाला इस तस्वीर में कोई नही। इसके विपरीत गेंसबरो जब किसी नजारे की तस्वीर बनाता तो उसमें इन्सान की जगह भी बडी खूबी से दिखाता है। उसके बागीचे फरिश्ते के रहने की जगह नही बल्कि इन्सान की सैर और तफरीह के लिये बने है और इसमें इंसान चलते फिरते नजर आते हैं। वह किसी खास उसूल या किसी खास स्कूल का पाबन्द नही था। वह फ्लोरेन्स, वेनिस या डेनमार्क का अनुकरण करने वाला नहीं था। वह वेनडाइक टिशियन या रैफेल का भी अनुयायी नही था। वह इंग्लैंड में पैदा हुआ, वहीं उसने अपनी कला का हुनर सीखा इसलिये उसके जितने कुदरती नजारे है इग्लैंड के ही है। उसके मर्द औरत सब अंग्रेज है। उसकी नदियां, झोपडे सब इग्लैंड के है। रेनाल्ड की तरह अपने उस्तादों से वह अपनी तस्वीरों के लिये नमूने नही माँगता था और न विल्सन की तरह स्विट्जरलैंड या इटली के नजारों की तस्वीर बनाता। किसी स्कूल, किसी पद्धति या किसी शैली से वह वाकिफ नही था। उसने कुदरत की पाठशाला मे तालीम पाई थी और इसी तालीम की बदौलत उसने दुनिया के सफे पर अपनी मुहर लगा दी थी।

कभी-कभी उसकी तस्वीरें जल्दबाजी या कम ध्यान देने की वजह से खराब हो गयी है। आमतौर पर जजबाती लोगों का कायदा है कि उनके लिये बहुत देर तक किसी एक चीज पर ध्यान लगाना मुश्किल होता है। गेन्सबरो भी एक तस्वीर बनाते-बनाते जब ऊब जाता था तब उसे जल्दी-जल्दी खत्म कर देता और फिर उस पर निगाह नहीं डालता। दिमाग मे ख्यालात बिजली की चमक की तरह आते है। एकाएक कोई ख्याल उसके दिल में आया और फौरन पेंसिल से उसका खाका खीच लिया और जब तक उस खाके को तस्वीर की सूरत में ले आये, उसमें रग भरे और उसमे ऐसी छोटी-छोटी खूबिया पैदा करे जो ध्यान देने से सदा पैदा होती हैं जब तक ख्याल की ताजगी चली जाती है। इसीलिये वह तमाम काम जल्दी में किया करता जिससे वह नया ख्याल चला न जाय। इस जल्दी की वजह से उसकी बहुत सी बेनज़ीर तस्वीरे खराब हो गयीं।

रेनाल्ड अपने जमाने के चित्रकारों के विषय में कभी अपनी जबान नहीं खोलता था। मगर गेन्सबरो के इन्तकाल के बाद जब उसके समकालीन चित्रकारों की सूची से उसका नाम कट गया तब कभी-कभी वह उसके कमाल को बहुत सराहा करता था। कहता है, 'गेन्सबरो की तस्वीरों को जब नजदीक जाकर गौर नज़र देखिये तो बेशुमार छोटे-छोटे निशान और लकीरें नजर आती हैं जो बारीकियां समझने वाले चित्रकारों की निगाह में भी ऐसी लगती हैं गोया ये इत्तफ़ाक से रह गयी हैं और उनसे चित्रकार का कोई खास मतलब नही लेकिन जब कुछ फ़ासले पर चले जाइये तब यही लकीरें और गैर जरूरी निशान गोया जादू का असर करते हैं और जो काम इनके सुपुर्द किया गया है उसे पूरा करने लगते हैं। इसलिये मजबूरन कहना पडता है कि गेन्सबरो में जल्दीबाजी और कम ध्यान देने के पीछे जो मेहनत छिपी हुई है वह देखने के काबिल है। गेन्सबरो

खुद अपनी तस्वीरों की इस खूबी से वाकिफ था जो उसकी इस ताकीद से जाहिर होता है कि नुमाइशगाह में मेरी तस्वीर पहले नजदीक से फिर थोड़े फासले से देखी जाया करे।'

गेन्सबरो की तस्वीरों में छोटे-छोटे खुशहाल और मेहतमन्द बच्चों का आजादी से इधर-उधर दौड़ना बहुत प्यारा लगता है। खास तौर पर जब उसे रेनाल्ड की तस्वीर के बच्चों से मिलाया जाय। इसमें शक नहीं कि रेनाल्ड के बच्चे भी बहुत प्यारी चीज है—बेतकल्लुफ आजाद और खूबसूरत लेकिन उन्हें देखने से ऐसा मालूम होता है कि उन्हें मखमली गद्दों पर सोने और सोने के चमचों से खाने की आदत है। गेन्सबरो के बच्चों में एक ग्रामीण खूबसूरती है। एक अल्हड़पन और दुनिया से बेखबरी पाई जाती है जिससे उसके देहाती और अक्खड़ होने का पता लगता है। वे कुदरत के बच्चे मालूम होते है जो उसकी गोद में आजादी और बेपरवाही से दौड़ रहे हैं। उनको इस बात की परवाह या जरूरत नहीं कि मेरे साटन के कोट खराब हो जायेंगे या मेरे नरम-नरम जूते भीग जायेंगे। वे हरी-हरी घास पर लोटते, खरगोशों की तरह झाड़ियों में फुदकते और नालों तथा चश्मों में मछलियों की तरह तैरते फिरते है।

स्वामी विवेकानन्द

भगवान कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि जब धर्म का नाश और अधर्म की प्रतिष्ठा होती है तब इन्सान की मदद के लिये मैं जन्म लेता हूँ। सामान्य तौर पर पूरी दुनिया मे और खासतौर पर हिन्दुस्तान मे जब-जब गुनाहों की वृद्धि हुई या किसी दूसरी वजह से उथल-पुथल मची और उसे खत्म करने या व्यवस्थित करने के लिये नयी सुधार नीतियों की जरूरत हुई तब-तब महापुरुषो ने जन्म लिया और अपनी रूहानी ताकत से मौजूदा हालात को सम्हाला। पुराने जमाने म जब अराजकता ने जड़ पकड़ी श्रीकृष्ण भगवान आये और पाप, जुर्म तथा अत्याचार की आग बुझाई। इसके बहुत दिनो बाद जब फिर हैवानियत और ज्यादतियो का जोर हुआ, भगवान गोतम बुद्ध ने जन्म लिया और उनकी शिक्षा तथा उपदेश ने आत्मा में ऐसी लहर पैदा कर दी जिसने कई सदियों तक बुराइयों को सिर न उठाने दिया लेकिन जब जमाने की रद्दोबदल ने रूहानियत की बुनियाद कमजोर कर दी और उसकी आड़ मे जुर्म तथा बुराइयों का जोर हुआ तब श्री शंकराचार्य स्वामी ने अवतार लिया और उन तमाम बुराइयों को जो धर्म की ओट मे पनप रहे थे अपने उपदेशो और योग बल से मिटा दिया।

इसके बाद कबीर साहब और श्री चैतन्य स्वामी अपनी रूहानियत का सिक्का लोगों के दिलों पर बिठा गये। बीती हुई सदी के आरम्भ में बुराइयों ने फिर सिर उठाया और इस बार इसका हमला ऐसा जोरदार था, इसके हथियार ऐसे अचूक निशाने वाले थे और उसके हिमायती ऐसे बहादुर और ताकतवर थे कि हिन्दुस्तान की रूह को उनके सामने झुकना पड़ा। थोड़े ही दिनों में उसन हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक अपना सिक्का जमा लिया। हमारी निगाहें इन बुराइयों की चकाचौंध के सामने चौंधिया गयी। हमने अपने पुराने दर्शन, पुरानी शिक्षा, पुराना रहन-सहन का तरीका, पुराना धर्म और यहाँ तक कि अपने पुराने आदर्शों को छोड़ना शुरू कर दिया। हममे यह ख्याल जोर पकड़ने लगा कि हम बहुत दिनों से गुमराह थे और यह रूहानियत महज एक ढकोसला है। चाहे पुराने जमाने में इससे फायदेमंद नतीजे निकले हों मगर मौजूदा जमाने के लिये यह किसी तरह मौजूद नहीं है और अगर हम इस रास्ते से हटकर नये रास्ते न अपनायेंगे तो कुछ दिनों में दुनिया से हमारा नामोनिशान मिट जायेगा। ऐसी हालात मे हिन्दुस्तान की पाक धरती से फिर एक महापुरुष उठा जो रूहानियत मे भरा हुआ था। जिसका हौसला

बुलन्द ख्याल उदार ओर दिल मोहब्बत से भरा था उसके दिल से निकली सच्ची ललकार ने दुनिया मे तहलका मचा दिया और बहुत जल्दी उसने बुराइयो के किले मे सेंध लगाकर यह साबित कर दिया कि यह रोशनी जिसे तुम रोशनी समझे हो अधेरा है ओर यह तहजीब जिस पर तुम इस तरह घमंड कर रहे हो असली तहजीब नहीं है। इस सच्चाई से भरी तकरीर ने हिन्दुस्तान पर जादू का असर किया और बुराइयों की बढ़ती हुई लहरों ने अपने सामने एक मजबूत दीवार खड़ी देखी जिसकी बुनियाद को हिलाना या उसके ऊपर से होकर गुजर जाना नामुमकिन था। आज हम अपने रहन-सहन का तरीका, अपनी शिक्षा, अपना धर्म, रस्मो-रिवाज और अपने मजहब को गर्व और इज्जत की निगाह से देखते है। यह इस रूहानी शिक्षा की बदौलत है कि आज हम अपनी पुरानी सभ्यता की पूजा करने को तैयार हैं और आज हमे योरप के वीर, दिलेर, विद्वान और दार्शनिक अपने देश के विद्वानो के मुकाबले में बच्चे नजर आते है।आज हम किसी भी काम को चाहे वो मजहब धर्म, रहन-सहन का तरीका, शिक्षा या कला से ताल्लुक रखता हो महज इस दावे पर मानने को तैयार नही कि योरप में इसका रिवाज है बल्कि हम उसके लिये अपनी धार्मिक पुस्तके देखते है और बुजुर्गो की राय लेते है और उनके फैसले को अन्तिम सत्य समझते है। यह सब श्री स्वामी विवेकानन्द की सीख और रूहानियत का नतीजा है।

स्वामी विवेकानन्द जी की जीवन गाथा बहुत छोटी है। अफसोस! आप भरी जवानी में इस नाशवान दुनिया से विदा हो गये। मुल्क और कौम को जितना फायदा आपके आचरण से मिल सकता था उतना नहीं मिल सका। 1863 ई० में वह एक नामी कायस्थ परिवार में पैदा हुए। उनकी होनहारिता का आसार बचपन से ही जाहिर होने लगा था। अग्रेजी स्कूल मे तालीम पायी। 1884 में बी० ए० की उपाधि हासिल की। उस समय उनका नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। चन्द दिनों के लिये वे ब्रह्म समाज के अनुयायी हुए। रोजाना पूजा मे सम्मिलित होते और चूँकि इनका गला बड़ा सुरीला था ये कीर्तन समाज मे भी शरीक होते थे लेकिन ब्रह्मसमाज का उपदेश उनकी रूहानी प्यास को न बुझा सका। उनके ख्याल से मजहब किसी पुस्तक से चन्द श्लोक पढना, चन्द रस्में अदा करना और चन्द गीत गाने का नाम नहीं हो सकता। कुछ दिनों तक वे परम सत्य की तलाश मे भटकते रहे। इन दिनों श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रति लोगों की अपार श्रद्धा थी। युवक नरेन्द्र नाथ ने उनकी सोहबत से लाभ उठाना शुरू किया और धीरे-धीरे परमहस जी की शिक्षा का उन पर इतना गहरा असर हुआ कि थोड़े ही दिनों में वे उनके भक्तो की जमात में शामिल हो गये। गुरु परमहस जी से इन्होंने परम सत्य और मोक्ष का ज्ञान प्राप्त किया। परमहंस जी के परलोक सिधारने के बाद नरेन्द्र देव ने कोट पतलून उतार फेंका और योग धारण कर लिया। तब से आप 'विवेकानन्द' मशहूर हुए। अपने गुरु पर इन्हें इतना एतबार था कि उनकी वे पूजा करते थे। जब कभी आप उनका नाम लेते थे, उनके प्रति उनकी अपार श्रद्धा-भक्ति का इजहार होता था। 'मेरे गुरु' नाम से उन्होंने न्यूयार्क मे एक पांडित्यपूर्ण व्याख्यान दिया जिसमे परमहंस जी के गुणों का निहायत पुरजोर और

प्रेमपूर्ण तरीके से जिक्र किया।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु की सेवा में पहली बार उनके दर्शन करने का जिक्र यो किया है, 'वे देखने में एकदम मामूली आदमी मालूम होते थे। उनकी सूरत मे कोई खास बात न थी। उनकी जबान बहुत सादी थी। मैंने अपने दिल मे ख्याल किया क्या मुमकिन है कि ये पूरी तौर से साधु है? मे धीरे-धीरे उनके करीब गया और उनसे वे सवाल किये जो मैं अक्सर औरो से पूछा करता था। 'महाराज! क्या आप भगवान पर विश्वास रखते हैं? उन्होंने उत्तर दिया--'हाँ! फिर मैंने पूछा, 'क्या आप उसकी मौजूदगी साबित कर सकते हैं? जवाब मिला 'हाँ'। मैंने पूछा 'कैसे?' जवाब मिला 'मे' उनको उसी तरह देखता हूँ, जैसे तुमको देखता हूँ।

परमहंस जी की बातचीत और उनके लहजे में ऐसा बिजली का सा असर था जो सारे सन्देह को क्षण भर में दूर कर सच्चाई का रास्ता दिखा देता था। यही असर स्वामी विवेकानन्द की बात और नजर में था। यह हम कह चुके है कि परमहस जी के दुनिया से विदा ले लने के बाद विवेकानन्द ने योग धारण कर लिया। उनकी माँ बड़ी हौसलामन्द औरत थी। उनका अरमान था कि मेरा लड़का वकील हो, अच्छे खानदान मे शादी करे और ऐश आराम से जिन्दगी बसर करे। जब उन्होंने सन्यासी होने की खबर सुनी तो फौरन परमहस जी की सेवा मे हाजिर होकर बहुत मिन्नतें की कि मेरे बेटे को योग न दीजिये। मगर जिस दिल ने मोहब्बत और रूहानियत क स्वाद चख लिया हो उसे दुनिया की न्यामतें और खुशियाँ कब अपनी ओर खींच सकती है? परमहंस जी का कहना था कि जो दूसरों को रूहानियत की सीख देने का बीड़ा उठाता है उसे पहले खुद इस रंग में रंगना चाहिये। गुरु की सीख के अनुसार स्वामी विवेकानन्द हिमालय की ओर चले गये और वहाँ पूरे छह वर्ष तक साधना करते रहे। बिल्कुल नंगे, बिना खाये-पीये, सोये, अकेले सच्चाई की तलाश में घूमते रहे और कुदरत के नज़ारों का आनन्द उठाते रहे। कहते हैं कि सत्य की तलाश में वे तिब्बत पहुँच गये जहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म के उसूलों, तौर-तरीकों और उपासना पद्धति का अध्ययन किया। स्वामी जी खुद कहते हैं कि उन्हें दो-दो, तीन-तीन दिनों तक खाना नही मिलता था। अक्सर ऐसी जगहो पर नगे सोये जहाँ की ठंडक की कल्पना करना भी मुमकिन नहीं। कई बार शेरों और शिकारी जानवरों से भी सामना हुआ मगर राम के प्यारों को इन बातों का क्या डर?

स्वामी विवेकानन्द जब हिमालय मे थे उन्हें अलका हुआ (अन्तरात्मा से आवाज सुनाई दी) कि अब अपने गुरु के आदेश का पालन करो। चुनाँचे वे पहाड से उतरे और बगाल, यूनाइटेड प्रौविन्स, राजपूताना, बम्बई, मद्रास वगैरह अनेक जगहो की कभी रेल से और ज्यादातर पैदल सफर करते रहे। इस समय वे आम सभाओं मे व्याख्यान नही देते थे। बल्कि जाती तौर पर अपने प्रेमियों को जो उनकी सेवा में श्रद्धावश आ जाते थे, शुद्ध आचरण और धार्मिक मसले समझाते थे। जिसे वे मुसीबत मे देखते उसे तसल्ली देते। मद्रास उस समय नास्तिकों और जडवादियों का गढ हो रहा था अंग्रेजी विश्वविद्यालयों के नये नये जवान अपने धर्म और संस्कार से एकदम बेखबर थे, ईश्वर के होने पर

विश्वास नहीं रखते थे। स्वामी जी यहाँ काफी दिनों तक रहे और कितने ही होनहार नौजवानों को धर्म परिवर्तन से रोका और जडवाद के जाल से बचाया। कई बार लोगों ने उनसे बहस की कई बार उनकी हँसी उडाई मगर वे अपने रंग में इस तरह रगे थे कि किसी की हसी और व्यंग की परवाह न की। धीरे-धीरे उनकी शोहरत नौजवानों की सीमा से निकलकर चारों ओर कस्तूरी की खुशबू की तरह फैलने लगी। बडे-बड़े अमीर और रईस लोग उनके अनुयायी हो गये तथा उनकी अमृत वाणी एव आचरण से वेदान्त की शिक्षा पायी। न्यायमूर्ति सुब्रह्मण्यम अय्यर, महाराजा रामानन्द मद्रास और महाराजा खेतडी इनके खास अनुयायियों मे थे।

स्वामी जी मद्रास में थे जब अमेरिका में धर्म सभा होने की सूचना उन्हे मिली। वे फौरन इसमें भाग लेने के लिये तैयार हुए। इस समय उनसे ज्यादा जानकार और जादुई असर डालने वाला व्यक्ति कोई और न था। उनके अनुयायियों ने उनकी मदद की और आप उस आध्यात्मिक सफर पर रवाना हो गये। अमेरिका के इतिहास मे यह घटना हमेशा याद रहेगी। यह पहला मौका था कि पश्चिमी देश के लोगों ने किसी दूसरे मुल्क के मजहब को जानने की उत्सुकता दिखाई। स्वामी जी ने रास्ते में चीन और जापान की सैर की तथा जापान के रहन-सहन के तरीके से बहुत प्रभावित हुए। वहाँ से उन्होंने एक खत लिखा जिसमे वे कहते हैं, 'आओ उन लोगो को देखो और शर्म से मुँह छिपा लो आओ मर्द बनो। अपने तंग सुराखों से बाहर निकलो और जरा दुनिया की हवा खाओ।'

अमेरिका पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि अभी पार्लियामेन्ट के शुरू होने में काफी वक्त है। ये दिन उनके बहुत तकलीफ में बसर हुए। बिना पैसे के और गरीबी का आलम यह कि पास में ओढ़ने-बिछाने को भी काफी न था। मगर इनका पक्का इरादा इनकी सब मुश्किलातों पर हावी होता गया। आखिर बडे इन्तजार के बाद वह मुकर्रर तारीख आ गयी। दुनिया के अलग-अलग धर्मों के लोगो ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे थे। योरप के बड़े-बड़े पादरी दीनयात के प्रोफेसर और बिशप हजारों की तादाद में मौजूद थे। ऐसी सभा में एक गरीब, बेचारा और बेमददगार नौजवान का हाल कौन पूछने वाला था, जिसके तन पर साबुत कपडे भी न थे। पहले तो उनकी ओर कोई मुखातिब भी नही हुआ। मगर सभापति ने बडे उदार हृदय से उनकी विनती कबूल कर ली और वह वक्त आ गया जब स्वामी जी अपनी पाक जबान से कुछ कहें। इस समय तक उन्होंने किसी आम सभा में व्याख्यान नही दिया था। एकाएक आठ दस हजार शिक्षित विद्वानों और आलोचकों के सामने खडे होकर व्याख्यान देना कोई मामूली काम न था। मानव स्वभाव के अनुसार स्वामी जी को थोड़ी घबराहट हुई मगर केवल एक बार तबियत पर जोर डालने की जरूरत थी। स्वामी जी ने ऐसा पांडित्यपूर्ण जोशीला व्याख्यान दिया कि सुनने वाले हैरत में रह गये। यह गँवार हिन्दू और ऐसा पाडित्यपूर्ण व्याख्यान। किसी को विश्वास ही नहीं होता था। आज भी उस व्याख्यान को पढ़ने से दिल पर जादू का सा प्रभाव पड़ता है। व्याख्यान क्या है भगवद्गीता और उपनिषद् का निचोड़ है। आपने पहली बार पश्चिम वासियो को सुझाया कि असाम्प्रदायिकता क्या है? आपने औरों की तरह किसी धर्म की निन्दा नहीं

की। उन लोगों के दिल में जो ख्याल अर्से से पक्का हो चुका था कि हिन्दू धार्मिक कट्टरता के पुतले है एकदम दूर हो गया। यह व्याख्यान इतना व्यापक और गूढ अर्थ से भरा था कि इसका खुलासा करना कठिन है मगर इसका निचोड़ यह था, 'हिन्दू धर्म किसी विषय पर विश्वास करने या किसी उसूल या रस्म की पैरवी करने पर निर्भर नहीं करता। हिन्दू का दिल तर्क और मिसालों से सन्तुष्ट नही हो सकता। अगर कोई ऐसी दुनिया है जो हमारी नजर से ओझल है तो हिन्दू उसकी सैर करना चाहता है। अगर कोई ऐसी आत्मा है जो मौजूद है, अगर कोई ऐसा ईश्वर है जिसका रूप है जो दयालु और शक्तिमान है तो हिन्दू उसको अपनी हकीकी आँखों से देखना चाहता है। उसका सन्देह तभी दूर होता है जब वह उसे देख लेता है।' आपने पश्चिम के लोगो को पहली बार सिखलाया कि उस ज्ञान का जिस पर उन्हें गर्व है, जिनका वे धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं समझते, हिन्दुओं को पुराने जमाने से ही मालूम थे और हिन्दू धर्म की बुनियाद उसी पर कायम है। जबकि अन्य धर्म की बुनियाद किसी खास व्यक्ति की शख्सियत और उसके व्यक्तिगत ज्ञान पर होती है हिन्दू धर्म की बुनियाद शाश्वत् उसूलों पर। कभी दुनिया का आम धर्म यही होगा। फ़र्ज को फर्ज समझकर अदा करना काम को महज काम समझकर करना ऐसी बातें थी जो पश्चिम के लोगों को अब तक मालूम न थी। इनके जोशीले व्याख्यान और तर्क पर आधारित सच्चाई से लोग इस हद तक प्रभावित हो गये कि अमेरिका के अखबारो ने बडे आदर से स्वामी जी की तारीफ करनी शुरू कर दी। आपके बयान मे वह जादू होता था कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

आपके अनुयायियों की तादाद दिनोंदिन बढ़ने लगी। हर कोने से सच्चाई की खोज करने वाले लोग उनके पास आने लगे और अपने शहरों में उन्हें आमंत्रित करने लगे। स्वामी जी को कभी-कभी दिन-दिन भर दौड़ना पड़ता था। बड़े-बड़े प्रोफेसर, दार्शनिक और विद्वतजन स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होकर बड़े अदब के साथ बैठते थे और उनकी सीख को अपने दिल में जगह देते। स्वामी जी यहाँ पर तकरीबन तीन साल रहे। इस दौरान उन्होंने अपनी शारीरिक तकलीफों पर जरा भी ख्याल न करके अपने गुरू की आज्ञा के मुताबिक वेदान्त का प्रसार किया। इसके बाद आप इंग्लैंड गये। आपकी शोहरत वहाँ पहले ही पहुँच गयी थी। हालांकि अंग्रेजों को, जो भौतिक ज्ञान में तमाम दुनिया से आगे थे, अपने विचारों से प्रभावित करना बहुत मुश्किल था लेकिन आपके पक्के इरादे ने सभी मुश्किलों को आसान कर दिया और आपके व्याख्यानों का जादू अंग्रेजों पर भी चल गया। ऐसे-ऐसे आला दर्जे के विद्वान जिन्हें खाने तक के लिये लेबोरेटरी से निकलना मुश्किल होता था आपका व्याख्यान सुनने घंटों पहले से आकर इन्तजार करते रहते। आपने वहाँ तीन बडे मार्के के व्याख्यान दिये। आपकी भाषण कला तथा ज्ञान का सिक्का सबके दिलों में बैठ गया। अब यह सब पर रोशन हो गया कि भौतिक ज्ञान मे योरप हिन्दुस्तान से चाहे कितना ही आगे क्यों न हो जाय रूहानियत (अध्यात्म) और मार्फत (योग साधना) का क्षेत्र हिन्दुस्तानियों का है आप करीब एक साल यहाँ रहे बहुत सी सोसाइटी कालेजों

हाथ से न जाने देत थे। आपक जोशीले व्याख्यानो का यह असर हुआ कि बिशपों और पादरियो ने भी वेदान्त पर अपने गिरजाघरों में व्याख्यान दिये।

एक दिन लन्दन के बुद्धिजीवियों की एक खास बैठक एक महिला के घर पर होने वाली थी। महिला को तालीमी मसलो में महारथ हासिल थी। उनकी वार्ता सुनने और उस पर चर्चा करने की इच्छा से अनेक बुद्धिजीवी वहाँ जमा थे। संयोग से महिला की तबियत इस मौके पर खराब हो गयी। स्वामी जी वहाँ बैठे थे। लोगों ने आग्रह किया कि आप कुछ कहिये। स्वामी जी उठ खड़े हुए और हिन्दुस्तान की शिक्षा प्रणाली पर एक आला दर्जे का व्याख्यान दिया। इन इल्मफ़रोशो को कितना हैरत हुआ जब स्वामी जी ने अपने व्याख्यान मे कहा कि हिन्दुस्तान मे विद्या दान हर तरह के दान से श्रेष्ठ माना गया है। हिन्दू गुरु अपने शिष्यों से कुछ नहीं लेता बल्कि उन्हें अपने घर पर रखता है और बौद्धिक जरूरतों के साथ उनकी शारीरिक जरूरतों का भी ख्याल रखता है। धीरे-धीरे यहाँ भी इनके हिमायतियों की तादाद बहुत बढ़ गई। बहुत से लोग जो अपनी रुचि के अनुसार आध्यात्मिक भोजन नहीं पा रहे थे, धर्म से एकदम उदासीन होते जा रहे थे, वेदान्त के अनुयायी और प्रेमी हो गये। स्वामी जी पर उनकी आस्था ऐसी पक्की हो गयी कि जब वे चलने लगे तो कई अंग्रेज शिष्य उनके साथ हो लिये जिसमे मिस नोबल जो आगे चलकर सिस्टर निवेदिता के नाम से मशहूर हुई, भी थीं। स्वामी जी ने अंग्रेजों के रहन-सहन के तरीके, उनकी आदतें और उनके स्वभाव का बड़ी गहराई से अध्ययन किया। इन अनुभवों का जिक्र करते हुए आपने एक व्याख्यान मे कहा कि ये क्षत्रियो और बहादुरों की कौम है।

16 दिसम्बर 1896 में स्वामी जी अपने कुछ अंग्रेज अनुयायियों के साथ अपने देश की ओर चले। हिन्दुस्तान का हर आम और खास आदमी आपके अच्छे कामों की खबर सुनकर आपके दर्शन के लिये लालायित हो रहा था। आपके स्वागत के लिये शहरों मे सभाएं होने लगीं। जिस वक्त वे जहाज से कोलम्बो उतरे, जनता ने जिस गर्मजोशी और उत्साह से आपका स्वागत किया वह एक देखने लायक नजारा था। कोलम्बो से लेकर अल्मोडा तक जिस शहर में आप गये लोगों ने आपके कदमों में आँखे बिछा दीं। छोटे-बड़े, अमीर गरीब सबकी नजरों में एक तरह की श्रद्धा थी। योरप में बडे-बड़े विजेताओं का जैसा स्वागत हो सकता है उससे कहीं बढ़-चढ़ कर हिन्दुस्तान में स्वामी जी का हुआ। आपके दर्शन के लिये लाखों की भीड़ उमड़ पड़ती थी और आपको एक नजर देखने के लिये लोग लम्बी मंजिलें तय करके आते थे। हिन्दुस्तान लाख गया गुजरा है लेकिन एक सच्चे महात्मा और ज्ञानी की ऐसी इज्जत हिन्दुस्तानी ही कर सकते हैं। यहाँ दिलों को जीतने वालों की इज्जत मुल्क को जीतने वाले बहादुरों और इन्सानों का खून बहाने वाले फौजियो से कही ज्यादा होती है।

हर शहर में जनता ने आपको अपनी कद्रदानी और शुक्रगुजारी के मानपत्र भी दिये। कई-कई शहरों में तो पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस मानपत्र मिले और आपने इसके जवाब में देशवासियों को हौसला बुलन्द करने वाली देश प्रेम और रूहानियत से भरी तकरीरें

सुनातो। मद्रास में आपके लिए सत्रह आलीशान फाटक बनाये गये थे। महाराजा रामानद ने जिनकी मदद से स्वामी जी अमेरिका गये थे, बड़े आलीशान ढंग से आपके स्वागत का इन्तजाम किया। सूबा मद्रास में अनेक जगहों की सैर करते और शौकीन लोगों को अपने व्याख्यान से खुश करते। आखिरकार 28 फरवरी को स्वामी जी कलकत्ता तशरीफ लाये। यहाँ पर आपके दर्शन और स्वागत के लिये पहले ही से लोग बेकरार हो रहे थे। जिस वक्त आपको मानपत्र दिया गया पाँच हजार से ज्यादा आदमी जमा थे। राजा विनयकृष्ण बहादुर ने खुद मानपत्र पढ़ा जिसमें स्वामी जी के महान कामों की तारीफ की गई थी।

कलकत्ता में स्वामी जी ने निहायत विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिये मगर पठन-पाठन में बहुत ज्यादा व्यस्त रहने के कारण आपकी सेहत पर उसका असर पड़ा और मजबूरन आपको आबोहवा बदलने के लिये दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ से वे अल्मोड़ा गये। मगर स्वामी जी तो वेदान्त का प्रचार करने का बीड़ा उठाये हुए थे। उनको बेकारी में कब चैन आ सकता था? ज्यों ही तबियत सम्हली आप स्यालकोट पहुँचे और वहाँ से लाहौर वासियों की श्रद्धा ने उन्हें लाहौर खींच बुलाया। इन दोनों जगहों पर आपका स्वागत बहुत गर्मजोशी से हुआ। आपके महत्वपूर्ण व्याख्यानों ने सुनने वालों के जमीर को रौशन किया। लाहौर से आप कश्मीर गये। राजपूताना की सैर करके फिर कलकत्ता वापस आ गये। इस दौरान इन्होंने दो मठ कायम किये। इसके कुछ दिनों बाद आपने रामकृष्ण मिशन की नींव डाली जिसका मकसद गरीबों और बेबसों की भलाई और सेवा करना था। इसकी शाखाएं हिन्दुस्तान के हर हिस्से में मौजूद हैं जो कौम को अपनी कोशिशों से बेइन्तहा फायदा पहुँचा रही हैं।

1897 ई० सारे हिन्दुस्तान के लिये मनहूस साल था। प्लेग का जोर था और अकाल भी पड़ रहा था। लोग भूख और रोग से मौत का शिकार होने लगे। स्वामी जी दया की मूर्ति थे। अपने देशवासियों की ये मुसीबत देखकर कैसे चुप बैठ सकते थे? आपने अपने लाहौर वाले व्याख्यान में कहा था, 'आम आदमी का मजहब यही है कि वह फ़कीरों और खस्ताहाल लोगों को भरपेट खाना खिलाये। इन्सान का दिल ईश्वर का सबसे बड़ा मन्दिर है और इसी मंदिर में ईश्वर की पूजा करनी चाहिये।'

चुनाँचे आपने बड़ी सरगर्मी से मुहताजखाना खोलना शुरू किया। रामकृष्ण जी ने सनातन धर्म को मानने वाले सन्यासियों की एक सस्था बना दी थी। ये सब अब स्वामी जी की देखरेख में गरीब और मुसीबत के मारो की मदद में दिलोजान से लग गये। मुर्शिदाबाद, कलकत्ता, ढाका, मद्रास वगैरह अनेक जगहों पर मुहताजखाने खोले गये। वेद प्रचार के लिये भी जगह-जगह स्कूल खोले गये। कई अनाथ आश्रम खोले। यह सब स्वामी जी की मेहनत का नतीजा था। उनकी सेहत बहुत खराब हो गयी मगर वे स्वय दर-बदर घूमते और मुसीबत के मारों को तसल्ली देते और मदद पहुँचाते। प्लेग के मारे की मदद करना जिनसे डॉक्टर लोग भी भागते थे इन्हीं देशभक्तों का काम था। उधर इंग्लैंड और अमेरिका में भी वह पौधा बढ़ रहा था जिसका बीज स्वामी जी ने बोया

था। दो सन्यासी अमेरिका में ओर एक इग्लैड म वेदान्त के प्रचार मे लगे थे और इसके प्रेमियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाती थी।

जब स्वामी जी की सेहत बहुत खराब हो गयी तो मजबूरन आपने विलायत का सफर फिर किया और वहाँ थोड़ा आराम करके अमेरिका चले गये। वहाँ आपका बड़े जोश से स्वागत किया गया। छह बरस पहले जिन लोगों ने आपकी जबान मुबारक से वेदान्त की पुरजोर तकरीरे सुनी थी वे इस समय तक पक्के वेदान्ती हो गये थे। स्वामी जी के दर्शन से उनकी खुशी की इन्तहा न रही। वहाँ की आबोहवा उनकी सेहत के लिये फायदेमंद रही और इतनी मेहनत के बावजूद आपने फिर से तन्दुरुस्ती हासिल कर ली। आखिर मे हिन्दू दर्शन के पेमियो की संख्या इतनी बढ़ गयी कि दिन रात की मेहनत के बावजूद स्वामी जी उनकी ख्वाहिशे न पूरी कर सकते थे। अमेरिका जैसे तिजारती देश में एक हिन्दू सन्यासी की तकरीरों को सुनने के लिये दो-दो हजार आदमियों का जमा हो जाना कोई मामूली बात न थी। अकेले सैनफ्रासिस्को शहर में हिन्दू दर्शन पर आपने पचास व्याख्यान दिये। प्रेमी श्रोताओं की संख्या दिनो दिन बढ़ती गयी। ये महज दार्शनिक व्याख्यान सुनकर ही सन्तुष्ट न हुए बल्कि समाधि और योग की तकनीक सीखने की इच्छा भी उनके दिलों में पैदा हुई। स्वामी जी ने उनकी मदद से सैन फ्रासिस्को मे एक 'वेदान्त सोसाइटी' और 'शान्ति आश्रम' कायम किया। दोनों आज भी कायम है। 'शान्ति आश्रम' शहर के शोरगुल से दूर एक मोहक स्थान पर बसा है। इसका हाता लगभग दो सौ एकड का है जो एक उदार महिलाकी दरियादिली की यादगार है। स्वामी जी न्यूयार्क में थे जब पेरिस में विविध धर्मो की एक सभा का आयोजन किया गया उसमें आप भी आमंत्रित किये गये। इस वक्त तक इन्होंने फ्रांसिसी भाषा में कभी व्याख्यान नही दिया था लेकिन यह आमत्रण पाते ही फ्रांसीसी भाषा सीखने में लग गये और अपनी रूहानी ताकत से दो महीने में ऐसे काबिल हो गये कि देखने वालों को हैरत होती थी। पेरिस में आपने हिन्दू दर्शन पर दो व्याख्यान दिये लेकिन चूँकि ये सिर्फ कुछ बुद्धिजीवियों की जमात थी और इसका मकसद सच्चाई को जानना नहीं था बल्कि पेरिस की नुमाइशगाह की रौनक बढ़ाना था इसलिए स्वामी जी को यहाँ कामयाबी नहीं मिली। आखिर बहुत ज्यादा काम करने की वजह से स्वामी जी की सेहत बहुत गिर गयी। आप बहुत कमजोर हो गये। खास तौर पर पेरिस सभा की तैयारी ने आपको और कमजोर बना दिया। जब अमेरिका, इग्लैंड और फ्रांस की सैर करते हुए वे हिन्दुस्तान पहुँचे तो उनके जिस्म में केवल हड्डियां बाकी रह गयी थीं और वे इस काबिल न थे कि आम सभाओं में व्याख्यान दे सकें। डॉक्टरों की सख्त हिदायत थी कि आप कम से कम दो साल तक आराम करें। मगर जो दिल अपने हम वतनों की मुसीबत पर पिघल जाता हो और जिसमें अपने देशवासियों की भलाई की धुन सवार हो, जिसमें यह अरमान हो कि उसकी गरीब औरकमजोर कौम फिर से पुराने वक्त की तरह खुशहाल, मजबूत और रूहानी ताकत से भरपूर आर्य कौम हो जाये उससे यह कब मुमकिन था कि पल भर के लिये भी आराम कर सके

पर वेदान्त का प्रचार किया। कुछ तो आपकी सेहत पहले से ही खराब हो रही थी और कुछ इस तरफ की आबोहवा ने भी आपकी सेहत को नुकसान पहुँचाया। आप फिर कलकत्ता लौटे। दो महीने तक हालत बहुत नाजुक रही। इसके बाद आप बिल्कुल स्वस्थ हो गये। इन दिनो आप अक्सर कहते थे कि दुनिया मे मेरा काम अब पूरा हो चुका मगर उनके इस काम को जारी रखने के लिये आत्मसयमी, बेगरज और आत्मबल से भरपूर सन्यासियो की बहुत जरूरत थी। इसलिए आपने अपनी मुबारक जिन्दगी के बचे हुए चन्द माह अपने शिष्यों को तालीम और सबक देने में बिताये। आपका कौल था कि तालीम का मकसद सबक पढ़ाना नहीं बल्कि आदमी को इंसान बनाना है। इन दिनों आप अक्सर समाधि की दशा में रहते थे और अपने अनुयायियों से यह कहा करते थे कि मेरे सफर का अन्तिम समय बहुत करीब आ गया है।

4 जुलाई 1902 को आप अचानक समाधि में चले गये। इस वक्त आपकी सेहत बहुत अच्छी थी। सबेरे दो घंटे तक आप सभी से बातचीत करते रहे, दोपहर में अपने शिष्यों को आत्मज्ञान का सबक दिया, शाम को दो घंटे आप वेद पर लोगो को व्याख्यान देते रहे, इसके बाद आप चहलकदमी के लिये निकले। शाम को लौटे तो जरा देर माला जपने के बाद आप फिर समाधि में चले गये और इसी रात को आप अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर परलोक सिधार गये। यह बूढा कमजोर मिट्टी का शरीर रूहानियत की तेज बर्दाश्त न कर सका। पहले लोगों ने समझा कि यह महज समाधि है। किसी सन्यासी ने उनके कान में धीरे से रामकृष्ण परमहस जी का नाम सुनाया पर जब इसका कोई असर न हुआ तब लोगों ने समझा कि आपकी मृत्यु हो गयी। आपके चेहरे पर तेज था। आपकी अधखुली आँखे सत्य की रोशनी से चमक रही थीं। इस शोक की खबर सुनतेही पूरे देश में तहलका मच गया। दूर-दूर से लोग आपके अन्तिम दर्शन करने आये और आखिर दूसरे दिन दो बजे गंगा किनारे आपका अन्तिम संस्कार हुआ। परमहंस जी ने यह भविष्यवाणी की थी कि जब मेरे शिष्य का मिशन पूरा हो जायेगा तब वह भरी जवानी में इस नश्वर दुनिया को छोड देगा। उनकी भविष्यवाणी अक्षरशः सच हुई।

स्वामी जी का व्यक्तित्व निहायत गंभीर, शालीन, रूपवान और भव्य था। आपका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। आपका वजन दो मन से ज्यादा था। आपकी निगाहों में बिजली की तासीर थी। आपका चेहरा रूहानी रौब और शालीनता से चमकता था। आपकी दयालुता का जिक्र हम ऊपर कर चुके है। कड़ी बात आपने शायद जीवन में कभी किसी को न कही हो। बावजूद इसके कि सारी दुनिया मे आपकी शोहरत थी आपका मिजाज सरल था और रहन-सहन फकीरी वाला मामूली था। आपके ज्ञान का कोई अन्त न था। अंग्रेजी के आप आला दर्जे के विद्वान थे। अंग्रेजी व्याख्याओं में आपकी बहुत शोहरत थी। संस्कृत साहित्य और दर्शन के आप पूरे पडित थे। जर्मन, ईरानी, यूनानी, फ्रांसीसी वगैरह भाषाओं के भी जानकार थे। कठिन मेहनत आपके स्वभाव का अंग था। सिर्फ चार घटा सोते थे। चार बजे सबेरे उठकर जप तप में लग जाते थे। कुदरती खूबसूरती के आप बहुत प्रेमी थे सबेरे सबेरे जप तप के बाद आप बाहर खुले में निकल जाते और

कुदरत के नजारो का आनन्द उठाते। पालतू जानवरो को प्यार करते और उनके साथ खेलते। अपने गुरु की आखिरी वक्त तक पूजा करते रहे। आपकी आवाज बहुत मीठी, बहुत सुरीली थी। आपकी आवाज में बड़ा जादू और प्रभाव था। श्री परमहंस जी कभी-कभी आपसे भजन गाने की फरमाइश किया करते थे और उसमें इस तरह डूब जाते कि समाधि मे चले जाते। मीराबाई और तानसेन की भक्ति एवं प्रेम संगीत से आपको लगाव था। आपकी जबान में वह जादू था कि आपकी तकरीरें सुनने वालों के दिलों पर वह पत्थर की लकीर बन जाता था। आपके कहने का तरीका सरल और आम लोगों के समझने लायक होता था। उन मामूली लब्जों में इतनी रूहानी भावना भरी होती थी कि सुनने वाले उसमें डूब जाते थे। आप कौम पर निसार होने वाले शख्स थे। देशभक्त की उपाधि का हकदार आपसे ज्यादा और कोई न हो सकता था। देशप्रेम का जोश आपको अमेरिका ले गया था। आफत से घिरे अपने गरीब देशवासियो की विपदा और अपनी पुरानी संस्कृति और दर्शन की महिमा दूसरे देश की निगाहों में कायम करना, ब्रह्मचारियों को तालीम देना, सितम से सताये हुए देशवासियों के लिये जगह-जगह खैरात खुलवाना, ये सब आपके सच्चे देशप्रेम की सजीव यादगारे हैं। आप केवल ऋषि ही नहीं बल्कि देश पर कुर्बान होने वाले महाऋषि थे। एक तकरीर में वे कहते है, 'मेरे नौजवान दोस्तों। मजबूत बनो। तुम्हारे लिये मेरी यही सलाह है। तुम भगवद्गीता की पढ़ाई के बजाय फुटबॉल खेलकर कहीं ज्यादा आसानी से सफल हो सकते हो। जब तुम्हारी रगें और पुट्ठे ज्यादा हृष्ट पुष्ट होगे तब भगवद्गीता की शिक्षा पर ज्यादा खूबी के साथ अमल कर पाओगे। गीता की तालीम कमजोर लोगो को नही दी गयी बल्कि अर्जुन को दी गयी जो बडा बहादुर, सूरमा और क्षत्रियो का सिरमौर था। श्रीकृष्ण की अद्भुत शिक्षा और उसके नतीजे को तुम उसी वक्त समझ सकोगे जब तुम्हारी रगों में खून की हरकत ज्यादा तेज होगी।' एक दूसरे व्याख्यान में आप कहते हैं—'ये वक्त नहीं है कि खुशी के आलम में भी हम रोयें। हम रो तो बहुत चुके। अब हमारे लिये नरम बनने की जरूरत नहीं। इस नर्मी ने हमें इस हद तक पहुँचा दिया है कि हम रूई के गाले की तरह हो गये हैं। अब जिन चीजों की हमारे मुल्क को जरूरत है वे हैं लोहे के हाथ-पाँव और फौलादी पुट्ठे और इस पक्के इरादे की कुवत जिसे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती, जो जमीन की तह तक पहुँच जाती है और अपने मकसद से मुँह नही मोड़ती चाहे उसे समुद्र की तह में जाना और मौत से भी सामना क्यों न करना पड़े। महानता का राज है आस्था, गहरी और पक्की आस्था। खुद में और भगवान में। स्वामी जी को अपने ऊपर बहुत विश्वास था। वे कहते हैं, 'परमहंस जी के हलक मे एक भयानक फोड़ा निकल आया था और आखिर में वह यहाँ तक बढ़ गया कि कलकत्ते के नामी डॉक्टयर महेन्द्र लाल सरकार बुलाये गये। डॉक्टर साहब ने परमहंस जी की हालत देखकर मायूसी दिखायी और चलते वक्त उनके शिष्यो से कहा चूँकि मर्ज़ छूत वाला है इसलिये तुम लोग इससे बचते रहो और गुरुजी के पास बहुत देर तक न ठहरा करो यह सुनकर शिष्यों के होश उड़ गये

अपने गुरु भाइयों को बहुत भयभीत पाया। कारण मालूम होने पर गुरु के कमरे में चला गया। वह प्याली जिसमें परमहंस जी के गले से निकली मवाद थी, उठाया और सब शिष्यों के सामने उसे पी गया और बोला--देखें मेरे करीब मौत क्योंकर आती है?' आप सामाजिक सुधारों और तरक्की के बहुत बड़े हिमायती थे लेकिन उसकी मौजूदा गति से बिल्कुल सहमत नहीं थे। इस समय समाज सुधार के जो तरीके अपनाये जा रहे थे व अधिकतर पढ़े-लिखे लोगों से ही ताल्लुक रखते थे। पर्दे की रस्म विधवाओं की जिन्दगी जात पाँत की कैद ये उस समय के बहुत अहम मसले थे जिनमें सुधार का सख्त जरूरत थी और ये सिर्फ शिक्षित लोगों से ही ताल्लुक रखते थे। स्वामी जी का मेयार बहुत ऊँचा था यानी नीचे तबकों को उभारना, उन्हे पढ़ाना-लिखाना और उन्हे अपना भाई बनाना। ये लोग हिन्दू कौम की बीज और बुनियाद है और शिक्षित का जो तबका है वे उनकी शाखाए है। महज शाखों को तराशने से पेड़ ताजा और मजबूत नहीं हो सकता। अगर पेड़ को हरा-भरा बनाना है तो जड़ से ठीक करना होगा। इसके अलावा इस मामले मे सख्ती से बोलना बहुत ज्यादा बुरा मानते थे। इसका नतीजा सिर्फ यही होता है कि वे लोग जिन्हे सुधार की सीमा मे लाना है इन सख्त बातों से तंग आकर तुर्की बतुर्की जवाब देने पर आमादा हो जाते है और सुधार करने की नौबत सिर्फ यही रह जाती है कि बगैर मतलब के बहस और दिल दुखाने वाली नुक्ताचीनियों से पन्ने के पन्ने रंग जाते हैं। चुनान्चे सौ वर्ष से ज्यादा हुए सुधार का काम जारी है पर अभी तक कोई नतीजा नही निकला। स्वामी जी ने समाज सुधारो के लिये तीन जरूरतें तय की—

पहला यह कि मुल्क का प्रेम उनके मिजाज मे रस बस गया हो। उनका दिल बहुत उदार हो और अपने कौम की भलाई की सच्ची चाह उनके दिल में जगी हो।

दूसरा यह कि वे सुधार के अपने उपायों पर पूरा भरोसा रखते हो।

तीसरा यह कि पक्के इरादे और भरोसेमंद तबियत के हो। उसूलों की आड मे कोई खुदगर्जी की नीयत न रखते हों और अपने उसूलों के लिये कठिन से कठिन मुकाबला परेशानी और तकलीफ उठाने को तैयार हों। यहाँ तक कि मौत का खौफ भी उनको अपने इरादे से डिगा न सके।

जब तक हममें ये तीनों काबलियत न पैदा होगी सुधार की कोशिश करना एकदम फिजूल है। मगर हमारे समाज सुधारकों मे कितने हैं जिनमे ये काबलियत है?

वे कहते हैं, 'क्या हिन्दुस्तान में कभी सुधारकों की कमी रही है? क्या तुम कभी हिन्दुस्तान का इतिहास पढते हो? रामानुज कौन थे? शंकर कौन थे? नानक कौन थे? चैतन्य कौन थे? दादू कौन थे? क्या रामानुज नीची जातों की तरफ से बेखबर थे? क्या वे जिन्दगी भर इस काम की कोशिश न करते रहे कि चमारों को भी अपनी जात में शामिल कर लें? क्या उन्होने मुसलमानों को भी अपने तबके मे मिलाने की कोशिश न की? क्या गुरु नानक ने हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों को आपस में मिलाकर एक बनाकर रखना नहीं चाहा था? इन सब बुजुर्गों ने सुधार की कोशिश की और उनका नाम

अभी भी कायम है। मगर अन्तर यह है कि वे आजकल के सुधारकों की तरह तीखे बोल नहीं बोलते थे। उनके मुँह से जब निकलते थे मीठे बोल ही निकलते थे। कभी किसी को गाली नही देते थे और कभी किसी को भला बुरा नहीं कहते थे।'

'बेशक हमने सुधार और तरक्की के उन बडे और अहम मसलों को नजरअन्दाज कर दिया है और बुजुर्गों ने इस सिलसिले मे जो रास्ता अख्तियार किया था उस तरफ से हम हट गये है। अब सुधार और तरक्की की कोशिश केवल दिखावा भर रह गयी है। सुधार और तरक्की के जो मसले उस समय प्रचलित थे उनमे स्वामी जी केवल एक ही मसले से सहमत थे और वह था बाल विवाह। समाज मे अशान्ति की जिंदगी बसर करने से उन्हें घृणा थी। चुनाँचे रामकृष्ण मिशन ने जो विद्यालय आदि कायम किये उनमे पढने वालों के माता-पिता को यह शर्त मजूर करनी पडती थी कि लडके की शादी कम से कम 18 वर्ष की उम्र से पहले नहीं की जायेगी। ब्रह्मचर्य के वे बड़े हिमायती थे और हिन्दुस्तान की मौजूदा कमजोरी और जिल्लत को खास तौर से सामाजिक बुराई मानते थे। आजकल के हिन्दुओं के लिये वे बड़े तिरस्कारपूर्ण लहजे में कहते है "यहाँ पर भिखमगा भी यह आशा रखता है कि शादी करनी है जिससे मुल्क में दस-बारह गुलाम और पैदा कर दे।"

मौजूदा शिक्षा प्रणाली के आप सख्त खिलाफ थे। आपका कहना था, 'शिक्षा उन जानकारियो का नाम नहीं है जो हमारे दिमाग मे ठूँस दी जाती है बल्कि शिक्षा का मकसद है आदमी को सदाचारी और नेक बनाना उसे भरोसेमन्द बनाना तथा हमारी आदतों और तरीको को सुधारना। इसलिये हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि हमारे मुल्क की शिक्षा की बागडोर हमारे हाथों में हो और जहाँ तक मुमकिन हो उसे हमारी पुरानी सहिता और उसके तौर तरीकों पर आधारित की जाय।'

स्वामी जी की शिक्षा योजना बहुत व्यापक थी। एक हिन्दू विश्वविद्यालय कायम करने का भी आपका इरादा था। मगर कुछ कारणो से आप उसे पूरा न कर सके। हाँ उसकी शुरुआत जरूर कर गये।

साम्प्रदायिक भावना आपके स्वभाव में लेश मात्र भी नहीं थी। दूसरे धर्मों की तौहीन और उससे नफरत करना वे बहुत बुरा समझते थे। ईसाइयत, इस्लाम, बौद्ध सभी धर्मो को आप इज्जत की निगाह से देखा करते थे। अपने एक व्याख्यान में आपने हजरत और ईसा को भगवान का अवतार माना था। अपने देशवासियो को हमेशा याद दिलाते थे कि अपने ऊपर विश्वास रखना महानता का राज है। हमें अपने ऊपर एकदम भरोसा नही। हम अपने को जलील और गिरा हुआ समझते है। इसी वजह से हम जलील और गिरे हुए हैं। हर अंग्रेज समझता है कि मैं बहादुर हूँ, दिलेर हूँ और जो चाहे कर सकता हूँ। हम हिन्दुस्तानी अपनी कमजोरी के इस तरह कायल हैं कि मर्दानगी का ख्याल भी हमारे दिलों में पैदा नहीं होता। जब कोई कहता है कि तुम्हारे बाप-दादा जाहिल थे, वे गलत रास्ते पर चले और इसी वजह से हम इस हालत को पहुँचे हैं तो इतनी शर्मिन्दगी

स्वामी जी इस बात को खूब समझते थे कि किसी पुराने रिवाज़ को बुज़ुर्गों की वजह से बुरा कहना ठीक नहीं। हर एक रिवाज अपने जमाने में उपयोगी था और आज उसकी बुराई करना बेकार है। आज हम इस बात पर जोर दे रहे हैं कि साधुओं के रहने से हमारे देश को कुछ फायदा नहीं है। हमारी दानशीलता को उधर से हटकर स्कूलों-कालेजों और समाज सुधार की कोशिशों की तरफ आना चाहिये। स्वामी जी इसे खुदगर्जी समझते थे और है भी ऐसा ही। साधु कैसा भी कम पढ़ा लिखा हो, अपने धर्म से कैसा भी बेखबर हो मगर वह हमारे अनपढ़ देहाती देशवासियों की तसल्ली और सन्तुष्टि के लिये काफी जानकारी रखता है। उसकी मोटी-मोटी धार्मिक बातें कितनों के दिल में जगह पाती है और कितनों ही के लिये वह शारीरिक और मानसिक सन्तुष्टि का कारण बनती है। सोचा जाता है कि अब उनका रहना जरूरी नहीं मगर हमें अब ऐसी तरकीब सोचनी चाहिये जिससे उनका काम जारी रहे मगर वे इस तरह अन्धविश्वास न फैलाये और धर्म और शिक्षा की जो गई गुजरी मशीन है उसे भी तोड़-फोड़कर बराबर न कर दें।

सारांश यह कि स्वामी जी अपने देश का आचार व्यवहार, उसकी रीति-रिवाज उसकी संस्कृति और दर्शन, उसके रहने के तौर तरीके, उसकी पुरानी शान शौकत और हिन्दुस्तान की पवित्र मिट्टी सब को बड़ा और पूज्य समझते थे। आपके एक व्याख्यान का अंश जो नीचे दिया गया है सुनहरे अक्षरों में लिखा जाने काबिल है—

'प्यारे देशवासियो! ऐ पूज्य आर्यावर्त के रहने वालो! क्या तुम अपनी जिल्लत से भरे बोदेपन से वह आजादी हासिल कर सकोगे जो केवल बहादुरों का हक है। ऐ हिन्दुस्तान के भाइयों! यह खूब याद रक्खो कि सीता, सावित्री और दमयन्ती तुम्हारे देश की देवियाँ हैं। ऐ बहादुरो! मर्द बनो और ललकार कर कहो मैं हिन्दुस्तानी हूँ। मैं हिन्द का रहने वाला हूँ। हिन्दुस्तानी और हिन्द का बसने वाला चाहे वह कोई हो मेरा भाई है। जाहिल हिन्दुस्तानी, भोला हिन्दुस्तानी, ऊँची जात का, नीची जात का हिन्दुस्तानी मेरा भाई है। मेरी जिन्दगी हिन्दुस्तान है। हिन्दुस्तान के देवता मेरी परवरिश करने वाले हैं। हिन्दुस्तान मेरे बचपन का पालना है। मेरी जवानी की ऐश करने की जगह और बुढ़ापे की जन्नत है। ऐ शंकर! ऐ माँ! मुझे मर्द बना, मेरी कमजोरी दूर कर, मेरी कायरता को मिटा दे।'

स्वामी जी के उपदेशों का निचोड़ यह है कि हम अपनी कौम के लिये अपना फर्ज अदा करें। आत्मबल पैदा करें। बलवान और वीर बनें। नीची जातियों को उभारें और उन्हें अपना भाई समझें। जब तक 90 फीसदी हिन्दुस्तानी अपने को जलील और बेकार समझते रहेंगे यह एकदम गैर मुमकिन है कि हिन्दुस्तान में समानता और भाईचारा पैदा होगा। हम धर्म में आस्था रक्खें मगर सन्यासी और वैरागी न बनें। हाँ हम अपनी कौम के लिये हर तरह की कुर्बानी करने को आमादा रहे। हम दौलत और इज्जत पैदा करें मगर उसे अपने ऐशो आराम में खर्च न करें बल्कि कौम पर निसार कर दें। हिन्दू दर्शन के पक्ष पर अमल करें और ज्ञान ध्यान पूजा पाठ का उन लोगों के

स्वामी जी के उपदेश प्रेम और शक्ति पर आधारित है। निर्भीकता उनके उपदेश की आत्मा है और अपने ऊपर भरोसा करना उसका ईमान। उनकी शिक्षा मे दुर्बलता और दीनता का कोई स्थान नहीं। उनका वेदान्त इन्सान को सांसारिक मुसीबतों से बचाने, उसे जीवन संग्राम से डटकर मुकाबला करने और रूहानी या दुनियावी ख्वाहिशों को पूरी करने की शिक्षा देता है।

गेरीबाल्डी

जोसेफ गेरीबाल्डी जिसने इटली को गुलामी से आजाद किया, इतिहास के उन चन्द महान लोगों मे शुमार किया जाता है जो अपने निःस्वार्थ सच्चे देशप्रेम के लिये दुनिया मे अमर हो गये हैं। वह आजादी का दीवाना जब तक जिन्दा रहा अपने मुल्क और कौम को तरक्की की बुलन्दियों पर पहुँचाने की कोशिश करता रहा और इतना ही नही दूसरी गिरी हुई कौमों को भी उनकी खस्ता हालत से निकालने मे मदद करता रहा। गेरीबाल्डी का सा उदार और इन्सानी हमदर्दी से भरा दिल इतिहास में कम नजर आता है। यह वह शख्स है जो झोपड़े में पैदा हुआ लेकिन जिसकी सच्चाई और हौसले ने उसे सारे मुल्क का प्यारा बना दिया। जिसकी तारीफ सारी पढ़ी-लिखी कौमें एक स्वर से करती हैं। इसमें शक नही कि उसमे कुछ कमजोरियाँ भी थी लेकिन ऐसा कौन सा शख्स है जिसमें कोई कमजोरी न हो। बावजूद इन कमजोरियों के उसकी शोहरत मे कोई फर्क नही आया। उसके इरादों की सफाई और बेगरजी पर कभी किसी को शक नही हुआ। अगर वह चाहता तो जो नामवरी उसे मिली थी उससे धन दौलत की बुलन्दियों पर पहुँच सकता था और यही नहीं राजदण्ड और राजमुकुट भी धारण कर सकता था लेकिन उसका दिल इन इच्छाओं से बेलौस था।

जब उसकी कोशिशे सफल हो गयीं, जब खस्ता हाल इटली ने अपनी गर्दन मे गुलामी का जुआ उतार फेंका तब वह चुपचाप अपने वतन लौट गया और गुमनामी में रहकर खेती करके बाकी की जिन्दगी काट दी। ऐसी कई मिसाले मौजूद है जिनमें उसकी बहादुरी के नमूने मिलते है लेकिन वह खासियत जिसकी वजह से पूरा मुल्क उसका अहसानमन्द है वह है उसकी बेदाग नेकनीयती और बेलौस पाकीजगी।

गेरीबाल्डी 22 जुलाई 1870 में नाइस मे पैदा हुआ। उसका पिता था तो मामूली नाविक लेकिन अपनी बदजनी से ऐश की जिन्दगी बसर करता था। हाँ उसकी मां बड़ी नेक और चरित्रवान औरत थी। वह कहती थी कि बेइमानी वह बला है जो सभी अच्छाइयो पर परदा डाल देती है। तंगहाली में भी वह बहुत सब्र और इत्मीनान से जिन्दगी बसर करती थी। नेक माँ की कोख से हमेशा नेक बेटे पैदा हुए है।

बाकमालों में बहुत से ऐसे हैं जिनके दिलों में उनकी माँ की अच्छाइयों ने नेक इरादों और बुलन्द हौसलों के बीज बोये हैं गेरीबाल्डी पर भी अपनी माँ के नेक ख्यालों

का गहरा असर था।

वह स्वयं कहता है 'वह सच्चा प्रेम जो हमें अपने मुल्क के लिये है और जिसने हमे अपनी बदकिस्मत कौम का हमदर्द बना दिया उस वक्त शुरू हुआ जब मैं अपनी गरीब माँ को गरीबों के साथ हमदर्दी और खस्ता हाल पर रहम करते देखता था। मैं झूठ का या किसी व्यक्ति विशेष का पुजारी नहीं हूँ लेकिन मै इस बात का इकबाल करता हूँ कि कठिन से कठिन मुसीबत के समय जबकि समुद्र की लहरें मेरी कश्ती को डुबाने पर तुली थीं, उसे कागज की नाव की तरह ऊपर नीचे उछालती थीं या जब हवा की सनसनाहट की तरह बन्दूक की गोलियाँ मेरे कान के पास से निकल जाती थीं और ओले की तरह मेरे सिर पर गोले बरस रहे थे मै उस समय अपनी मेहरबान माँ को हमशा अपने बेटे के लिये खुदा की ड्योढ़ी पर सिर झुका कर दुआ माँगते हुए देखता था। मेरी वो हिम्मत और बहादुरी जिस पर लोगों को आश्चर्य होता है मेरे इस अटूट विश्वास के कारण है कि मेरे ऊपर तब तक कोई बला नही आ सकती जब तक कि ऐसी फरिश्ता जैसी औरत मेरे लिये दुआ माँगती हो।'

बचपन से ही गेरीबाल्डी में दुनिया से बेखौफी, आजाद पसन्दी, जरूरतमंद लोगों के लिये दर्दमंदी और रहम पैदा होने लगी। आठ साल का भी नहीं था कि एक डूबती हुई औरत को बचाने के लिये मर्दानगी के साथ नदी में कूद पड़ा और उसे मौत के मुँह से निकाल लाया। इसके कुछ साल बाद जब कुछ दोस्त सैर के लिये कश्ती पर गये हुए थे कि सख्त तूफान आया और कश्ती को डूब जाने का अंदेशा हुआ। वह किनारे बैठा यह वाकया देख रहा था फौरन कमर कसकर पानी में कूद पड़ा और कश्ती को बचाकर सही सलामत किनारे तक खींच लाया। इसकी हिम्मत और हमदर्दी की सैकड़ों मिसालें आम आदमी की जबान पर मौजूद हैं। यही वे गुण थे जिससे आगे चलकर वह कौम का खेवनहार और गौरव का विषय बना।

हालाँकि उसके माता-पिता गरीब थे लेकिन बेटे की हिम्मत और जेहन देखकर उसे अच्छी तालीम दिलाई। उनकी ख्वाहिश थी कि वह वकालत का पेशा अपनाये पर ऐसे नौजवान को जिसे जहाजी और सिपाही बनने की धुन सवार हो मुकदमों के सबूत ढूँढने और मिसाल तलाश करने में बिल्कुल दिलचस्पी न थी। इसलिये उसने सार्डीनिया की समुद्री फौज में नौकरी कर ली और कई सालों तक दृढ़ संकल्प और बहादुरी की तालीम लेता रहा जिसने आगे चलकर कौमी आरजुओं के पूरा होने में बड़ी मदद की।

उस जमाने में इटली की हालत बहुत खराब हो रही थी। उत्तर में आस्ट्रिया के जुल्मों मे लोग तंग थे। दक्खिन में नेपल्स के धार्मिक गुरुओं की धूम थी। मध्य देश मे पोप ने अंधेर मचा रक्खा था और पश्चिम में पैडमॉन्ट के जुल्मो का झंडा गडा हुआ था। इन चौतरफा परेशानियों के साथ देश में राष्ट्रीय जागरण के आसार भी नजर आ रहे थे। नौजवानों के दिलों में इन जुल्मों से आजादी पाने, इटली की एक कौमी हुकूमत कायम करने और दूसरे आजाद कौमों के मुकाबले मे आने के लिये जोश पैदा हो रहा था। यह जोश कुछ पढ़े लिखे लोगों तक ही सीमित न था बल्कि आम आदमियों में भी उस

आजादी का जोश था जिसने फ्रांस की शाही हुकूमत को नेस्तनाबूद कर दिया था। दशप्रमी नौजवानों ने 'यंग इटली' नामक एक सस्था कायम की जिसके संचालकों में मेज़िनी जैसा सच्चा देश प्रेमी भी मौजूद था। चुनाँचे कामयाबी पाने के लिये बहुत सी तरकींवें सोचने के बाद सन् 1832 में यह फैसला किया गया कि मुल्क में हुकूमत के खिलाफ बगावत शुरू कर दी जाय और उसकी शुरुआत पैडमॉन्ट से हो। गैरीबाल्डी को यह खबर सुनकर कब बर्दाश्त हो सकता था। फौरन नौकरी से इस्तीफा देकर मेज़िनी की मदद को जा पहुँचा। मगर चूँकि मसाला पक्का न था भंडा फूट गया और पूरी जमात तितर-बितर कर दी गयी। मेजिनी तो गिरफ्तार हो गया लेकिन गेरीबाल्डी किसी तरह बच निकला। मगर उसकी बेचैन तबियत को चैन कहां? हमेशा खुफिया तरीके से लोगो के दिलों में आजादी के शोले भडकाता रहा। दो साल बाद फिर एक जमात तैयार की। मगर इस बार खुद गिरफ्तार हो गया। हाकिम ने इसे मौत की सजा के लायक समझा। बहुत जल्दी ही उसे अपने नेक इरादों के लिये शहीद होना पडता कि जान बचाने की सूरतें निकल आईं। भागकर फ्रास आया और ट्यूनिस होता हुआ दक्षिण अमेरिका में दाखिल हुआ। यहाँ उन दिनो कई मुल्क अपनी हुकूमत से बगावत कर जग पर आमादा थे। गेरीबाल्डी ने बारी-बारी से उनकी मदद की। छोटी-छोटी फौजें लेकर वर्षो तक पहाड़ों और जगलों में लडता रहा। उसकी चरित्रवान वफादार बीबी अतिया तमाम मुसीबतों मे उसके साथ रही। इस जमाने मे वह लड़ाई के कामों मे इतना मशगूल रहा कि चार बरस तक एक दिन भी उसे बिस्तर पर लेटना नसीब न हुआ। जब नींद का झोंका आता तो घोड़े की पीठ पर ही सर नीचा कर लेता और ज्यादा समय मिलता तो जमीन पर थोडी देर को लेट जाता। इससे ज्यादा तारीफ तो उस अतिया की हिम्मत की है जो अपने शौहर के लिये इन तमाम मुसीबतों और परेशानियों को झेलती थी और चेहरे पर शिकन तक न लाती थी। हालाकि 'यंग इटली' और इसके अधिकतर कार्यकर्ता जिनमे मेजिनी भी शामिल था देश निकाला झेल रहे थे मगर उनके ख्यालात खुफिया लेखों के जरिये अवाम मे आजादी के जोश फूकते जाते थे। कई बार के इन कमजोर ख्यालो के बाद सन् 1848 में जोश भडक उठा। कई शहरों में अवाम ने आजादी के झंडे बुलन्द कर दिये और मिलान तथा जिनेवा मे आस्ट्रिया की फौजों को हरा दिया। पेडमॉन्ट के शाह अल्वर्ट ने पहले तो आस्ट्रिया के खिलाफ इस बागियाना जोश को सख्ती से दबाने की कोशिश की मगर जब इन कोशिशों मे कामयाब न हुआ और अवाम का जोश बढताही गया तब इस डर से कि कही उसकी अवाम भी बलवा न कर बैठे वह बागियों की खुफिया तौर से मदद करने लगा। अब पोप ने भी हालात को देखते हुए यह सोचा कि अवाम का विरोध न किया जाय। जब बलवे की हौसला बुलन्द करने वाली खबरें समुद्र पार कर अमेरिका पहुँची तो गेरीबाल्डी के दिल में एक बार फिर देश प्रेम का जोश भडक उठा। उस समय उसके साथ 63 आदमियों से अधिक न थे। इस छोटी सी टुकड़ी को लेकर वह शेरों की तरह अपनी मजिल की ओर चल पडा। चलने के दौरान कितनो के हौसले पस्त हो गये कि कहाँ हम कहाँ आस्ट्रिया और कहाँ योरप की तमाम एक जुट फौजें नतीजन आखिर में केवल

छप्पन लोग बच रहे। मगर गेरीबाल्डी के हौसले को दुनिया जानती ही न थी। उसके पक्के इरादे में जरा भी फर्क न आया। इन्हीं छप्पन आदमियों और कुछ बन्दूकों के साथ एक जहाज पर इटली के लिए रवाना हुआ। जिस जोशो-खरोश से इटली में उसका स्वागत हुआ वह इस बात का सबूत था कि कौम अब जग गयी थी और उसमें आजादी का सच्चा जोश उमड़ रहा था।

गेरीबाल्डी ने पहले पोप के दरबार में नौकरी की अर्जी दी। उसने पोप के बारे मे जो अफवाहे सुनी थी उससे उसको यकीन हो गया कि वह जरूर उसकी सेवा कबूल करेगा और उसे आस्ट्रिया वालों को हराने का अच्छा मौका मिलेगा। मगर पोप के नेक इरादों की कलई खुल गयी। उसने न केवल गेरीबाल्डी की सेवा नामंजूर की बल्कि चन्द ऐसी हरकतें की जिनसे यह जाहिर हो गया कि वह लालच और धूर्तता में कुत्ते और लोमड़ी से कम न था। इधर से मायूस होकर गेरीबाल्डी ने पेडमॉन्ट के बादशाह की खिदमत में अपनी तलवार पेश की। यह वही हजरत थे जिन्होने पहले गेरीबाल्डी को बगावत की साजिश के जुर्म में देश निकाला दिया था और अब आवाम के जोश को देखकर उसका विरोध करने की हिम्मत न हुई। आस्ट्रिया की वह खुले रूप से विरोध करने लगे। मगर यह सब केवल जनता को गुमराह करने के लिये था। गेरीबाल्डी को यहाँ से भी साफ जवाब मिला। इसी जमाने में अवाम की बगावत देख कर उसके खौफ से पोप अपना धार्मिक चोला उतारकर रोम से भाग लिया।

पोप के भागने की खबर ज्यों ही फैली देश निकाले देशभक्त अपनी-अपनी खुफिया जगहों से निकलकर रोम की ओर दौड़ पड़े और वहाँ एक संसद कायम की जो चन्द रोजा होने के कारण 'अस्थायी सरकार' कहलायी। ये दिन इटली के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण थी। अवाम खुशी से फूली न समाती थी। इस हुकूमत ने गेरीबाल्डी की सेवा को खुशी-खुशी कबूल किया। वह देश सेवकों की एक टुकडी लेकर सीधे उत्तर की ओर चला। यहाँ पर कई मौके आये जब उसने जान हथेली पर रखकर जिस बहादुरी से काम किया उस पर किसी भी सिपाही को गर्व हो सकता है। बराबर मिलती कामयाबी से उसकी शोहरत दिनोदिन बढ़ती गयी और कौम के दिल में उसके लिये इज्जत कायम हो गयी। दुश्मन की फौज का अन्दाज करने की उसकी आदत न थी और न ही वह अपनी फौज की ओर देखता था। उसका तरीका यह था कि जहाँ दुश्मन को देखो टूट पडो। इस काम में वह जरा भी आगा-पीछा न करता था। उसके अचानक हमले में ऐसा जोर होता था कि करीब हर मौके पर उसकी यह तरकीब कामयाब होती थी। अपने से दस गुनी फौज को जो जग के सारे असलहों से लैश होती थी अपने नौसिखिये रंगरूटों को लेकर वह हरा देता था। इसका कारण यह था कि उसकी टोली का हर आदमी देशप्रेम के जोश से दीवाना रहता था। मिलान की जनता ने आस्ट्रिया का जोरदार विरोध किया था इसलिये आस्ट्रिया के गुस्से का निशाना भी वही बने हुए थे। गेरीबाल्डी उनकी हिफाजत मे कमर कसकर तैनात था कि रोम से भयानक खबरें आयीं। मेजिनी भी स्विट्जरलैंड से देश वापस आ रहा था मिलान में दोनों देश प्रेमिया की बहुत दिनों बाद भेंट हुई

बगलगीर हुए और साथ-साथ रोम की ओर चल पड़े जिससे वहाँ संसद के तौर तरीको और कायदे बना सके और मुल्क को उथल-पुथल और गृह युद्ध से बचायें।

रोम इस समय चारो तरफ से मुसीबतो का शिकार हो रहा था। कौमी हुकूमत जो कायम की गयी थी पूरी तरह जमने न पाई थी कि एक तरफ से नेपल्स का बादशाह और दूसरी तरफ से बोनापार्ट की फौजें उसका गला घोंटने को आ पहुँची। इसके अलावा पोप के वक्ताओं और पादरियो ने जनता को जिनका खुदा पर से ऐतबार उठ रहा था अपनी तरफ गुमराह करना शुरू कर दिया। गेरीवाल्डी इन तमाम विरोधी ताकतों का मुकाबला करने के लिये तैयार था। पहले नेपल्स के बादशाह से उसकी मुठभेड हुई। उनके साथ पन्द्रह हजार अनुभवी सिपाही थे मगर इस बड़ी फौज को उसने थोड़ी ही देर में तितर-बितर कर दूर तक खदेड दिया। उसका मकसद नेपल्स पर चढ़ाई करना था मगर फ्रांसीसियो के आ पहुँचने की खबर सुनकर लोट पडा। फ्रॉसीसी सिपाही जो अफ्रीका की लडाइ से तुरन्त ही लौटे थे बडी बहादुरी से लडे और शहर में घुसना चाहते ही थे कि गेरीबाल्डी अपने एक हजार साथियों के साथ आ पहुँचा और आठ हजार अनुभवी सिपाहियो को सख्त मुकाबले के बाद हरा दिया। फ्रॉसीसी जनरल ऐसा घबड़ाया कि उसने समझौते की अपील की। गेरीवाल्डी इसके खिलाफ था क्योंकि वह जानता था कि दुश्मन महज कुमक का इन्तजार कर रहा है और इसके लिये मोहलत चाहता है। पर मेजिनी ने सुलह करना ज्यादा मुनासिब समझा। आखिर इस गलती का नतीजा यह हुआ कि फ्रॉसीसियो ने धाखा देकर रोम पर कब्जा कर लिया और गेरीवाल्डी को जान बचा कर यहाँ से भागना पडा।

इस तरह हारकर गेरीबाल्डी अपने वफादार साथियों के साथ जो पन्द्रह सौ के करीब थे भगवान पर भरोसा करके चल पडा। उसकी बाअस्मत बीबी यहाँ भी उसके साथ थी। वह बहुत दिनों तक परेशान इधर-उधर भटकता रहा। साथियो की तादाद दिनो दिन घटती जाती थी। न रसद का कोई सामान था न हथियार का कोई इन्तजाम।

दुश्मन उसकी हर चाल पर नजर रखे थे। वे उसे इतना समय न देते कि वह लोगो में कुछ जोश पैदा कर सके। आज यहाँ है कल वहाँ। हर दिन दुश्मनो के हमले होते। उसकी इस खानाबदोशी की एक निहायत दिलचस्प कहानी है।सच है मुल्क की खिदमत करना कोई मामूली काम नही है। उसके लिये बुलन्द हौसला, दृढ़ता, कठिन मेहनत और जान हथेली पर रखकर चलने वाली हिम्मत की जरूरत है। जब तक ये गुण अपने अन्दर न पैदा हो जाय मुल्क की सेवा का बीड़ा उठाना जवानी ढकोसला है। आखिर एक मौके पर आस्ट्रिया की फौज ने उसे घेर लिया। ऐसा घेरा कि कहीं से निकल भागने का रास्ता न नजर आता था। उसके आदमियों ने जान बचाने का कोई रास्ता न देखकर हौसले हार दिये और तकरीबन नौ सौ आदमियों ने हथियार रखकर दुश्मन के सामने घुटने टेक दिये। मगर आस्ट्रिया की सेना ऐसी बददिल हो रही थी कि उरो बेचारों की हालत पर जरा भी तरस न आया और बजाय उस रियायत के जो घुटने टेकने वालों के साथ की जाती है उन लोगों ने उन्हे देश निकाला दे दिया और कितनों को कोड़े लगवाये गेरीवाल्डी के साथ तीन सौ से ज्यादा लोग न थे इम्तहान की घड़ी बहुत कठिन होती

है लेकिन गेरीबाल्डी के दृढ़ संकल्प में कोई फर्क नहीं आया और न ही वह डरा या सहमा। इस छोटी सी टुकडी के साथ दुश्मन के घेरे से बडी बहादुरी से भाग निकला। उनकी सेना की कतार को चीरता फाडता समुद्र के किनारे आ पहुँचा। यहाँ पन्द्रह कश्तियाँ तैयार थी उनमें बैठकर वेनिस की ओर चला। थोडी ही दूर चला था कि आस्ट्रिया की भाप से चलने वाली कश्तियों उनका पीछा करती हुई दिखायी दी और देखते-देखते उसके साथ की तेरह कश्तियाँ तूफान में फँस गयीं। केवल दो कश्तियाँ जिनमें गेरीबाल्डी, उसकी पत्नी और चन्द और लोग थे बचकर एक टापू के किनारे जा लगीं। यहाँ गेरीबाल्डी के जीवन की बहुत दर्दनाक घटना घटी। बेचारी अतिया जो गर्भवती थी, मुसीबत झेलते-झेलते तंग आ गयी थी। थकान और गर्भ से उसे चलने-फिरने में परेशानी हो रही थी। गेरीबाल्डी ने कोई उपाय न देखकर अपने साथियों का साथ छोड़ दिया और अपनी पत्नी को गोद मे लेकर चला। तीन दिन चलने के बाद उसने एक किसान का दरवाजा खटखटाया और पानी माँगा। अतिया को सख्त प्यास लगी थी। मगर वह प्यास मौत की प्यास थी जो पानी के पीते ही बुझ गयी। गेरीबाल्डी उसके मुँह मे पानी की बूँद टपका रहा था कि उसकी रूह देह छोडकर चली गयी।

इस सदमा का गेरीबाल्डी पर जो असर हुआ वह पूरी मुद्दत तक रहा। यहाँ तक कि मरते दम तक अपनी प्यारी बीबी का नाम उसकी ज़बान पर था। बहुत रोया-पीटा लेकिन वहाँ रोने की भी फुर्सत न थी। दुश्मन करीब आ पहुँचे थे। मजबूरन वहाँ से भागकर वेनिस गया और वहाँ से जेनेवा की तरफ चला। मगर कही काम बनता दिखायी न दिया। जेनेवा से ट्यूनिस होता हुआ जेब्राल्टा पहुँचा मगर यहाँ भी उसे चैन न मिला। अब हुक्मरान उसके नाम से घबड़ाते थे। जेब्राल्टा में भी अंग्रेज़ी कानून की वजह से उसे रहने की इजाजत नहीं मिली। मजबूरन यहाँ से लिवरपूल आया और यहाँ से फिर अमेरिका की ओर चल दिया। यहाँ कोई काम न पाकर एक अंग्रेजी साबुन के कारखाने मे नौकरी कर ली। ताज्जुब है कि ऐसे महान आदमी को ऐसे मामूली काम के लिये क्यो जाना पड़ा। हो सकता है रोजी रोटी के लिए इस तरह के काम करने को वह मजबूर हो गया हो क्योकि उसकी माली हालत बहुत खराब थी। कुछ दिनों यहाँ वक्त काटकर एक जहाज में नौकरी कर ली और चीन तथा आस्ट्रिया आदि मे कुछ अर्से तक जहाजी का काम करता रहा। इतनी खाक छानने के कई साल बाद वह एक बार 'न्यू कैसल' आया। जनता ने उसका बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया और उसे एक तलवार तथा दुरबीन भेट में दिया। उस मौके पर जो व्याख्यान हुए उसके जवाब में गेरीबाल्डी ने कहा, 'अगर तुम्हारे देश इग्लैड को कभी किसी मददगार की जरूरत हो तो ऐसा कौन बदकिस्मत इतालवी है जो मौका पडने पर तुम्हारी मदद को न तैयार हो। तुम्हारे देश ने आस्ट्रिया वालो को वो कोड़े लगाये हैं जो वे कभी भूल न सकेंगे। अगर इग्लैंड को कभी किसी जायज मामले के लिये असलहों की जरूरत पडे तो इस तलवार को जो मुझे भेंट में मिली है, मै बडे फ़ख से म्यान से बाहर करूँगा।'

चूँकि अब राजधानी पैडमान्ट में अमन चैन कायम हो गया था गेरीबाल्डी ने केप्रिरा

नामक टापू खरीद लिया और उसे आबाद करके खेती का काम करने लगा और खेती में जो फ़सल पैदा होती उसको बाजार में बेच देता था। वह तो इधर बैठा खेती और बाजार में लगा था उधर इटली की कौमी हालत में बडी तेजी स तबदीली आ रही थी। यहाँ तक कि आस्ट्रिया के जुल्मों से तंग आकर पेडमान्ट सरकार ने फ्राँस की मदद से जग का एलान कर दिया। अब उसे गेरीबाल्डी की जरूरत महसूस हुई और वजीर आजम केबर ने सन् 1859 के अप्रैल महीने में कौम की मदद करने की उसे दावत दी। गेरीबाल्डी जो एकान्त में अपने दिन काट रहा था फिर निकल पडा। उसके लिये हर आदमी के दिल मे इतनी जगह थी और वह अपने इरादो का इतना पक्का आर नक था कि फौज के दूसरे अफसरान जो इस हालत में अपना निजी फायदा उठाना चाहते थे उससे बदजन हो गये लेकिन नया नौजवान बादशाह विक्टर इमिनुएल जो उसके गुणों मे पूरी तरह वाकिफ था बोला, 'आप जहाँ चाहे जायं, आप जो चाहे करे मुझे केवल इस बात का अफसोस है कि मैं आपके साथ चलकर वफा की शर्तें नही अदा कर सकता।'

इस तरह बादशाह से काम करने की आजादी की सनद पाकर गेरीबाल्डी ने आस्ट्रिया के खिलाफ़ उन छोटी-छोटीलडाइयों का सिलसिला शुरू किया जो इतिहास में अपना सानी नहीं रखती। उसके साथ सत्रह हजार आदमी थे और ये सब करीब-करीब वे नौजवान साथी थे जिन्होंने कौम की आजादी के लिये अपनी जान कुर्बान करने का बीडा उठा लिया था। उनकी मदद से उसने लगातार कई लड़ाइयाँ लडीं और कामयाबी हासिल की। कोमो और बर्गो छीन लिया और आखिर में दुश्मनों को इटली के उत्तर से बाहर निकाल दिया। उधर पेडमान्ट और फ्रांस की मिली-जुली फौजों ने भी आस्ट्रिया को लगातार हराकर उनसे लम्बार्डी छीन लिया। मगर जीत का यह सिलसिला बहुत अर्से तक कायम न रह पाया। शहंशाह नेपोलियन ने पेडमान्ट को ज्यादा ताकतवर होते देखकर लड़ाई बन्द करने का हुक्म दिया। आस्ट्रिया ने भी यह गनीमत जाना और बजाय लड़ाई करने के कुछ देर के लिये दम लेना मुनासिब समझा। गेरीबाल्डी शुरू से कहता था कि बाहर की फ़ौजी मदद से मुल्क कभी आजाद नही हो सकता। वह फ्रास की मदद कबूल करने के बिल्कुल खिलाफ़ था। मगर पेडमान्ट सरकार ने उसकी सलाह के खिलाफ काम किया था जिसका अब उसे खामियाजा भुगतना पडा। अगर उस समय थोड़े ही दिनों तक लड़ाई और जारी रहती तो इटली से आस्ट्रिया का नाम मिट जाता लेकिन लड़ाई बन्द हो जाने से उसे फिर अपनी ताकत को एकजुट करने का मौका मिल गया। आखिर गेरीबाल्डी ने नाराज होकर इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन राजा इमिनुएल ने ऐसे नाजुक वक्त मे उसका इस्तीफ़ा मजूर करना ठीक न समझा। लिहाजा गेरीबाल्डी ने अपने साथियों के साथ अकेले ही लडाई जारी रखने का जिम्मा लिया। मगर सीधे-सीधे या छिपे तौर पर उस पर चौतरफा ऐसा दबाव पडन लगा कि मायूस होकर उसने फिर इस्तीफ़ा दे दिया जो अबकी बार मजूर हो गया। कौम ने इस मंजूरी को पसन्द नहीं किया मगर इस आजादी के दीवाने और देशप्रेमी से भी कब खामोश बैठा जाता। वह मुल्क को अपनी कलम और जबान पे आजादी के लिये रहा खुफिया मैगजीन और पर्चे के जरिये वह कौमी प्रेम

का उभारा करता था। बराबर घोषणाएँ छपती थीं और बाँटी जाती थी जिसमे कैसे अपने मकसद तक पहुँचे और किन जरियो से उसे पूरा करें इस पर आम तौर पर बड़े जोशो-खरोश से बहस की जाती थी। उसका कहना था कि जब तक मुल्क में दस लाख बन्दूकें और दस लाख नौजवान न हो जायें उनके देश को आजादी कभी नहीं मिलेगी। आखिर एलानो का यह असर हुआ कि अमेरिका के लोगो ने मदद की तौर पर चौबीस हजार बन्दुके एक जहाज मे लदवाकर गेरीबाल्डी के पास भेजा। कई हजार नौजवान अपनी कौम पर जान देने को तैयार हो गये और गेरीबाल्डी दो हजार आदमियों को लेकर सिसली की तरफ चला। यहाँ नेपल्स के बादशाह ने जनता को सता-सताकर बगावत पर आमादा कर रक्खा था। इन सताये हुए लोगों ने ज्यो ही सुना कि गेरीबाल्डी उनकी मदद को आ रहा है वे अपनी तैयारी में लग गये और बड़ी गर्मजोशी से उसका स्वागत किया। सब चीजे तैयार थी गेरीबाल्डी ने आते ही प्लरमो पर ऐसा जबरदस्त हमला किया कि शाही फौज ने किला बन्द कर दिया और घुटने टेक कर रहम की भीख माँगी। जनता को इस पर इतना एतबार था कि इसे सिसली के डिक्टेटर का खिताब दे दिया। शाह इमिनुएल इस लडाई के पहले ही से खिलाफ थे और उन्हें डर था कि कहीं नेपल्स के बादशाह आस्ट्रिया से सुलह करके हमारे मुल्क पर हमला न कर बैठे। जब इस जीत की खबर पाई तो गेरीबाल्डी से अर्ज किया कि वह नेपल्स के बादशाह को इतना तग न करें कि वह यूनाइटेड इटली का एक अंग बन जाय। पर गेरीबाल्डी अपने निश्चय पर डटा रहा। पहले तो उसने शाही फौज को इटली से निकाला। इसके बाद इटली के दक्षिणी तट पर उतर पड़ा। इसकी खबर पाते ही चारों तरफ से जनता उसकी फ़ौज में मिलने के लिये टूट पड़ी मानो वह उसके इन्तजार में हो। ज्यादातर जगहों में नयी अस्थायी हुकूमत कायम हो गयो और 31 अगस्त को जनता ने बाकायदा तौर पर उसको सिसली के डिक्टेटर की पदवी बख्श दी जो शाह नेपल्स को मिली हुई थी। फ्रांसीसियों के होश उड़ गये और गेरीबाल्डी के खिलाफ जग एलान कर दिया। मगर तीन लड़ाइयों में एक भी वे न जीत सके। 8 सितम्बर को गेरीबाल्डी नेपल्स में दाखिल हुआ। उसके दूसरे दिन विक्टर इमीनुएल वहाँ का बादशाह एलान किया गया और पूरी सल्तनत की राय से सिसली और नेपल्स दोनों पेडमान्ट के मुल्क में मिला दिये गये। इस कौमी खिदमत को पूरा करने में उसकी जिन्दगी का आधा हिस्सा गुजर गया। उसने अपनी फौज को आजाद कर दिया और अपने घर लौट आया। अब केवल रोम और वेनिस ही दो ऐसे मुल्क रह गये थे जो अभी तक पोप और आस्ट्रिया के जुल्मी चंगुल में फंसे हुए थे। दो साल तक वह अपने घर में बैठा हुआ इन सताये हुए लोगो के दिलों में आजादी की तडप जगाता रहा और आखिर इन कोशिशों का जादू चल गया। वेनिस के लोगों ने भी आजाद होने के लिये अपनी ख्वाहिश जाहिर की। अब क्या देर थी—गेरीबाल्डी अपने साथ कुछ चुने हुए साथियों की टोली लेकर चल पड़ा। मगर विक्टर इमेनुएल को उसका यह साहस नागवार गुजरा। वजीर आजम केबर के मर जाने से उसके सलाहकारों में कोई हिम्मती और हौसलामन्द आदमी बाकी न था, सबके सब डर गये कि कहीं आस्ट्रिया उससे नाराज

न हो जाये। इसलिये गेरीबाल्डी को रोकने के लिये फोज भेजी। वह अपन देशवासियों से लडना न चाहता था इसलिए अपने आपको बचाता रहा पर आखिर मे फँस गया और लडाई की नौबत आ ही गयी। मुमकिन था कि वह यहाँ से भी साफ निकल जाता मगर उसके कुछ जख्म इतने गहरे थे कि वह अपने वतन लौट आया और कई माह तक बिस्तर पर पडा रहा।

1864 ई० में गेरीबाल्डी इंग्लैंड की सैर के लिये गया। वहाँ जिस शानदार तरीके से उसका स्वागत हुआ, जिस शान शौकत से उसकी सवारी निकली वह बादशाहों को भी मुश्किल से नसीब होती है। जो भीड़ गली कूचो और खास-खास जगहो पर उसको देखने के लिये इकट्ठी हुई वैसी आदमियो की भीड पहले कभी देखने में नहीं आई थी। यहाँ वह दस दिन तक रहा। सैकड़ो संस्थाओं ने उसका सम्मान किया। कितने ही शहरों ने मान पत्र और तलवार भेट किये। 22 अप्रैल को वह अपने द्वीप वापस आ गया।

इसी दौरान आस्ट्रिया और प्रशिया में युद्ध छिड़ गया और गेरीबाल्डी ने दुश्मनों को उधर व्यस्त देखकर अपना मतलब पूरा करने की सूरत सोची। चुनाचे 11 जून 1866 मे वह अचानक जेनेवा आ पहुँचा और आस्ट्रिया के खिलाफ़ हमला बोल दिया। मगर पहली ही लडाई में उसकी जाँघ में ऐसा गहरा घाव लगा कि उसके वफादार साथियो को पीछे हटना पड़ा। जख्म ठीक हो जाने के बाद उसने कोशिश की कि फ्राँस की अमलदारी मे चला जाय और उधर से दुश्मन पर हमला करे मगर आस्ट्रिया की फ़ोजों ने उसे फिर रोका और भीषण लड़ाई के बाद दुश्मनों को हार खानी पडी। चूँकि आस्ट्रिया के लिए प्रशिया का मुकाबला करना आसान न था इसलिए दक्षिणी लड़ाइयो के मुकाबले में उसने उत्तर की तरफ ध्यान देना ज्यादा मुनासिब समझा। मसालहत लडाई की नीतियों पर विचार होने लगा और जंग खैरियत से खत्म हो गयी। बहुत दिनों के बाद वेनिस के लोगों की ख्वाहिश पूरी हुई और वह यूनाइटेड इटली का एक सूबा करार कर दिया गया।

1867 ई० में गेरीबाल्डी ने फिर रोम पर हमला करने की तैयारियाँ शुरू की। हालांकि इटली सरकार ने उसके रास्ते में तमाम रुकावटे डाली और उसे कैद भी कर लिया लेकिन वह सब रुकावटों को पार करता फ्लोरेन्स पहुँचा। सिर्फ पोप का इलाका ही इटली में एक ऐसा हिस्सा रह गया था जहाँ पर मुल्क की हुकूमत नहीं थी और गेरीबाल्टी के दिल को तब तक चैन नहीं मिल सकता था जब तक वह इटली की एक-एक अंगुल जमीन को बाहरी हुकूमत से बाहर न निकाल दे। हालांकि उसने दो बार रोम को पोप के जुल्मों से आजाद करने की पूरी कोशिश की पर दोनो बार नाकाम रहा। ज्यों ही उसके आने की खबर फ्लोरेन्स में फैली जनता में उत्साह की लहर दौड गयी और चन्द ही दिनों में उसके साथ स्वयंसेवकों की एक खासी फ़ौज तैयार हो गयी। इधर पोप की फौजें भी तैयार थी। लड़ाई शुरू हो गयी। हालांकि पहली जीत गेरीबाल्डी के हाथ लगी मगर दूसरी लडाई मे फ्राँस और पोप की इकट्ठी फौजों ने उसे हरा दिया। बहुत से आदमी मारे गये और कितने ही कैद कर लिये गये, गेरीबाल्डी बच गया

गालिबन पोप ने उसका चला जाना ही बेहतर समझा क्योंकि उसे कैद करा लेने से मुल्क में हंगामा मच जाने का जबरदस्त डर था। मगर जब वह नाकाम और नामुराद होकर मायूस लौट रहा था कि पेडमान्ट के हाकिमों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और कैद करने की नीयत की। इस खबर के फैलते ही कई जगहों पर जनता बिगड़ गयी और एक आम बगावत का शक पैदा हो गया। लाचार होकर उसे हाकिमों ने फिर आजाद कर दिया। जब कौम और उसके नेताओं में इतना गहरा रिश्ता होता है तब जाकर कौमें आजाद होती है। हालाँकि उस समय पोप के इलाके मे उसकी कोशिशे नाकाम हो गयीं लेकिन उसके तीन ही वर्ष बाद जब फ्रांस और प्रशिया में लड़ाई छिड गयी तब यह हिस्सा बड़ी आसानी से इटली के हाथ में आ गया। सारे ही मुल्क में उत्तर से दक्षिण तक एक रग का झडा लहराने लगा।

इस तरह गेरीबाल्डी की जिन्दगी का मकसद पूरा हुआ। उसने इटली को एक करने और उसमें राष्ट्रीय हुकूमत कायम करने का बीडा उठाया था और उसकी कोशिश उसकी जिन्दगी में ही पूरी हो गयी। उसकी दिली ख्वाहिश थी कि इटली एक देश हो जाय और उसकी यह ख्वाहिश पूरी हुई। बेशक इसे पूरी करने में उसे अनेक कुर्बानियाँ देनी पड़ी, हजारों साथियों की जानें गयीं, कितनी औरतें विधवा हो गयीं, कितने बच्चे यतीम हो गये मगर आज इन बातों में से एक भी याद नहीं। मुश्किल से ऐसा कोई इतालवी होगा जो आज के दिन इन देशभक्तों पर आँसू बहाता हो। हाँ इन कुर्बानियों का जो अच्छा नतीजा हुआ वह दुनिया के सामने है।

मगर गेरीबाल्डी को अपने कौम को आजाद करने से तसल्ली नही हुई। यों तो वह बूढ़ा हो गया था, शरीर कमजोर हो गया था मगर उसके हौसले वही थे। इन्सानों के लिये उसकी हमदर्दी अभी भी वैसी ही गहरी थी। प्रशिया को फ्रांस की बेइज्जती करने और उसको जलील करने पर आमादा देखकर उसके दिल में फिर जोश पैदा हुआ हालाँकि फ्रास उसका पुराना दुश्मन था और पोप की मदद में उसकी कौम के सैकड़ों नौजवान मारे जा चुके थे फिर भी उनके खिलाफ इसके दिल में बदले का ख्याल नहीं आया। वह अपनी एकाकी जिन्दगी से निकल पड़ा। इस बुढ़ापे के आलम में फ्रांस की वजह से गोले बारूद का सामना किया और उसे प्रशिया के पंजे से छुड़ा दिया।

फ्राँस और प्रशिया में सुलह हो जाने के बाद गेरीबाल्डी अपने वतन वापस लौट आया। कौम को उसकी फ़ौजी ताकत की अब जरूरत नहीं थी। वह अपने परिवार के साथ चैन से बुढ़ापे के दिन बसर करने लगा लेकिन इन दिनों भी वह कौम के हालात से बेखबर नहीं रहता था। वह उसकी तरक्की की तरकीबें सोचा करता था। सन् 1875 में वह अपने बाल-बच्चो के साथ रोम की सैर के लिये रवाना हुआ। यहाँ उसका जैसा शानदार स्वागत हुआ वैसा इतिहास में किसी का भी नहीं हुआ होगा। वह वहाँ से वापस चला तो बीस हजार आदमी पैदल कौमी गीत गाते बजाते उसे छोडने आये। उसकी सारी जिन्दगी की कुर्बानियों के लिये यह नजारा काफी था

साथ इत्मीनान से जिन्दगी गुजारता रहा। वह बूढ़ा हो गया था और सेहत भी खराब रहने लगी थी लेकिन मेहनत और मशक्कत से इतना प्रेम था कि आखिरी वक्त तक कुछ न कुछ काम करता ही रहा। जब कुछ भी ताकत न बची तब बैठा उपन्यास लिखवाया करता। सन् 1884 में चन्द दिन बीमार रहकर इस दुनिया से उसका जनाजा उठ गया। इस नश्वर दुनिया से वह चला तो गया लेकिन एक ऐसे शख्स की याद छोड़ गया जो मुल्क का दीवाना था, उसके लिये कुर्बान हो जाने वाला था और केवल इटली का ही नहीं सारी इन्सानियत का हमदर्द और दोस्त था।

आज उसका नाम इटली के एक-एक बच्चे की ज़बान पर है। उसकी बहादुरी, उदारता, इन्सानी हमदर्दी और शराफ़त की सैकड़ों कहानियाँ हर आदमी को मालूम है। ऐसा मुश्किल से कोई शहर होगा जहाँ के वासियों ने उसकी मूर्ति लगाकर उसके लिये अपनी शुक्रगुजारी का हक न अदा किया हो। मगर उसकी कौमी खिदमत की सबसे बड़ी जीती जागती यादगार तो इतनी बडी सल्तनत है जो आल्प्स से लेकर सिसली तक फैली है और जो कौम इटालियन के नाम से मशहूर है।

❐

डॉ० सर रामकृष्ण भंडारकर

डॉ० भण्डारकर का जिन्दगीनामा उन लोगों के लिये खास तौर पर एक सबक है जिनका वास्ता शिक्षा जगत से है। उनकी जिन्दगी से हमको सबसे बड़ा सबक यह मिलता है कि अपने इरादे का पक्का और धुन का पूरा आदमी चाहे जिस कार्य क्षेत्र मे क्यो न हो इज्जत और शोहरत के ऊँचे से ऊँचे मेआर पर चढ़ सकता है। डॉ० भण्डारकर की शख्सियत मे जेहन के साथ पक्के इरादे और मेहनत का ऐसा मेल था जो बहुत कम देखने में आता है और जो कभी नाकाम नहीं हो सकता। इतिहास की खोज के क्षेत्र मे कोई हिन्दुस्तानी आलिम आपके बराबर नही। संस्कृत साहित्य, भाषा और व्याकरण के आप ऐसे जानकार थे कि योरप और अमेरिका के बड़े-बड़े विद्वान आपके सामने सिर झुकाते थे।

पुरानी भाषाओं का अब इस मुल्क मे नाम भी बाकी नहीं। पालि, मागधी वगैरह भाषाओं को समझने वाले तो दरकिनार उनके लब्जों को पहचानने वाले भी अब नही मिलेंगे। अगर योरप के विद्वानों ने इधर ध्यान न दिया होता तो इन भाषाओं का नामोनिशान दुनिया से मिट गया होता। डॉ० भण्डारकर पुरानी भाषाओं के न केवल अच्छे जानकार थे बल्कि आपने उनमें कितनी खोजे भी की हैं। इतिहास, भाषा तथा शिक्षा की हर शाखा पर उन्हें पूरा अधिकार प्राप्त था। जर्मनी की मशहूर गाइनगन यूनिवर्सिटी ने आपको डॉक्टर की उपाधि दी और सरकार ने आपको के० सी० एस० आई० और सर की उपाधि से सम्मानित करके आपकी इल्मी काबलियत को कुबूल किया।

डॉ० भंडारकर के पिता एक छोटी तनख्वाह के क्लर्क थे और इस काबिल न थे कि अपने लड़कों को तालीम के लिये दूसरे शहर में भेजे। संयोग से उनका तबादला सन् 1847 में रत्नागिरी में हो गया। यहाँ एक अंग्रेजी स्कूल खुला था। बालक रामकृष्ण ने इसी स्कूल मे अंग्रेजी की तालीम पानी शुरू की और छह साल मे यहाँ की तालीम पूरी कर एलफिन्स्टन कालेज में दाखिला लेने की जिद की। उनके पिता ने पहले तो उन्हे रोकना चाहा क्योंकि उनकी तनख्वाह इतनी न थी कि कालेज की फीस का खर्च उठा सकते। मगर लड़के को बेचैन देखा तो राजी हो गये। उस समय तक बम्बई यूनिवर्सिटी कायम नहीं हुई थी और उपाधियाँ भी नहीं दी जाती थीं दादा भाई नौराजी उस समय

सब विद्यार्थियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया और कालेज की तालीम खत्म होने पर उसी कालेज मे प्रोफेसर हो गये। उसी जमाने मे उन्हे संस्कृत पढने का शौक पैदा हुआ और खाली वक्त उसे पढने में लगाने लगे।

इसी जमाने में बम्बई यूनिवर्सिटी कायम हुई और प्रोफेसरों की ताकीद हुई कि बी० ए० की सनद हासिल कर लें वरना अपनी नौकरी से निकाले जायेंगे। डॉ० भण्डारकर ने दिये गये समय के अन्दर एम० ए० कर लिया और साल भर के बाद हैदराबाद, सिंध के हाई स्कूल के हेडमास्टर बहाल किये गये। बाद में वे अपने पुराने कालेज रत्नागिरी स्कूल के हेडमास्टरी पर तबदील किये गये। यहाँ उन्होने संस्कृत की पहली और दूसरी पोथियाँ लिखी जो बहुत पसन्द की गयी और इस समय तक इसके बीसियों संस्करण हो चुके है। संस्कृत भाषा की पढाई इनकी वजह से बहुत आसान हो गयी। ये इतना पसन्द की गयी कि इनकी जगह कोई दूसरी किताब नही ले सकती। दस साल तक आप एलफिन्स्टन और दकन कालेज में असिस्टेन्ट प्रोफेसर की हैसियत से काम करते रहे। यहाँ तक कि 1879 ई० में डॉ० कीलहॉर्न के इस्तीफा देने के बाद आप दकन कालेज में स्थायी तौर पर प्रोफेसर हो गये और तब से पेंशन लेने तक उस ओहदे पर बने रहे। डॉ० भण्डारकर ने पुरानी खोजों के सिलसिले मे सारी दुनिया मे शोहरत हासिल की। इन्हे यह शौक क्योकर पैदा हुआ? इसकी कहानी बहुत दिलचस्प है। इससे एक बात यह भी जाहिर होती है कि आप जिस काम में हाथ लगाते थे उसे अधूरा नही छोडते थे। 1870 ई० मे एक पारसी साहब को ताँबे का पत्र मिला यह किसी पुराने खंडहर मे दफन था और इस पर पुराने जमाने की लिपि में कुछ लिखा था। पारसी साहब ने इसे भण्डारकर साहब को दिया कि वे शायद इस लिपि का मतलब निकाल सकें। उस समय तक इन्हें इसका कोई इल्म न था। इबारत को न पढ सके। मगर पुरानी लिपि के अध्ययन की धुन सवार हो गयी। योरोपीय विद्वानो ने इस क्षेत्र में न केवल पहल की बल्कि उन्हें उसका मसीहा समझना चाहिए। डॉ० भण्डारकर ने इस विषय से सम्बन्धित बहुत सी किताबें जमा कीं और बडी मेहनत के साथ इस इल्म को सीखने में लग गये। उन्होंने साल भर के अन्दर उस पात्र की लिपि को न केवल पढ़ लिया बल्कि उस पर विद्वानों की गोष्ठी मे एक व्याख्यान भी दिया। महज़ इतना ही नही उनमे इस विषय के लिये प्रेम पैदा हो गया और उन्होंने इल्मी दुनिया में इस प्रकार की खोज का सिलसिला शुरू किया। उन्होंने प्राचीन इतिहास और पुरातत्व पर कई लेख लिखे। प्राचीन भाषाए और प्राचीन इतिहास के मसले एक दूसरे से इतने मिले हुए हैं कि एक को जानना और दूसरे को न जानना एक दम गैर मुमकिन है। चुनांचे डॉ० भण्डारकर को प्राकृत के क्षेत्र मे दुनिया भर मे शोहरत मिली। सन् 1874 मे लंदन मे पुरानी लिपियों को पढने वालों की एक बैठक हुई जिसमें आप भी बुलाये गये लेकिन पारिवारिक समस्याओं की वजह से आप न जा सके। एक खोज सम्बन्धी लेख लिखकर भेजा जिसके व्यापक अन्वेषण की बहुत तारीफ की गयी।

सन् 187(में पुरानी भाषाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रो० विल्सन की यादगार

मे एक वार्षिक व्याख्यानमाला की व्यवस्था हुई। उस आलिमाना ओहदे पर डॉ० भण्डारकर की नियुक्ति हुई। उन्हे कई अग्रेज विद्वानों के ऊपर वरीयता दी गयी।सच पूछा जाय तो हिन्दुस्तान मे इस पद के वही हकदार थे। अपने स्वभाव के अनुसार इस काम मे वे लग गये और संस्कृत, पाकृत तथा मौजूदा भाषा पर ऐसे व्याख्यान दिये जो ऐतिहासिक खोज की दुनिया मे सदा याद किये जायेगे। इसकी तैयारी में डॉ० भण्डारकर को बहुत कठिन मेहनत करनी पडती थी लेकिन इसके लिये ऐसे जहीन मेहनती शख्स को जो इनाम मिल सकता था वह मिला भी। विद्वानों ने खुले दिल से उसकी तारीफ की और सरकार को भी अपनी कद्रदानी को जाहिर करने का मौका मिला। एक योजना बहुत दिनो से चल रही थी कि संस्कृत की अप्रकाशित रचनाओं की खोज की जाय और उन्हे विद्वानों के सामने ऐतिहासिक खोज के लिये रक्खा जाय क्योंकि विद्वानो का ऐसा ख्याल था कि हिन्दुस्तान में पुरानी सभ्यता की खोज की अपार सामग्री है। जगह-जगह खडहरों मे, निजी लाइब्रेरियो मे जो काल के चपेट मे बचकर छिपी पड़ी है, उनके अध्ययन से उस जमाने के इतिहास पर बहुत कुछ रोशनी पड़ सकती है लेकिन उन्हें ढूढ निकालना आसान काम न था। यह महत्वपूर्ण काम डॉ० भण्डारकर को सोपा गया और उन्होंने जिस काबलियत से इसे अजाम दिया वह तारीफ के काबिल है। उन्होंने न केवल महत्वपूर्ण मसवदो को ढूँढ निकाला बल्कि उन पर टीका भी तैयार की जो पाँच मोटी जिल्दों मे पूरी हुई। इस सिलसिले में डॉ० भण्डारकर ने अगुआ का काम किया और इस तरह आगे आने वाले शोधार्थियों के लिये रास्ता साफ कर दिया। यह कहने बताने की कोई जरूरत नही कि इस काम मे उन्हें कितनी मुश्किलों का सामना करना पडा। इस मुल्क में जिन लोगों के पास पुरानी पुस्तकें हैं चाहे वे महज हुस्न और इश्क के किस्से ही क्यों न हो, वे उसे सजीवनी बूटी समझते हैं और यह बर्दाश्त नही कर सकते कि किसी गैर की पर्दाशिकन निगाहें उन पर पड़ें। ऐसे लोगों से किताब हासिल करना डा० साहब के ही बूते का काम था। आज उनकी ये मोटी रिपोर्टे, शिक्षा और इल्म की दुनिया के लिये हैरत का विषय है और शायद कुछ दिनो तक उसे लोग कठिन समीक्षा और ऐतिहासिक खोज का नमूना समझते रहेगे।

सन् 1886 मे वियेना में प्राच्य विद्या के विद्वानों की एक सभा फिर हुई। इस बार डॉ० भण्डारकर ने दावत की मंजूरी दे दी और वहाँ पहुँचने पर योरप की स्थिति का अध्ययन बड़ी खोजपूर्ण निगाहों से किया। इसके एक साल बाद भारत सरकार ने उन्हें सी० आई० ए० की उपाधि देकर साहित्य और खोज के क्षेत्र में उनके अमूल्य योगदान को इज्जत बख्शी। पढाई और खोज का यह सिलसिला जारी रहा और यहाँ तक कि पेशन का समय आ पहुँचा। डॉ० भण्डारकर ने पूना में रहने की सोची लेकिन मुल्क को उनकी सेवा की जरूरत थी। सन् 1901 में वे बम्बई यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर बनाये गये। ये उनके लगातार किये गये अहसानात और सेवाओं का नतीजा था।

उपर्युक्त शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त डॉ० ने बम्बइ गजेटियर के लिये

की एक फेहरिस्त मात्र नहीं बल्कि इसमे इस्लामी हमलों से पहले के रहने के तरीके रस्मो रिवाज एवं कायदे कानून पर भी रोशनी पडती है। इस इतिहास का मसाला चारों तरफ बिखरा पड़ा था जिन्हें इकट्ठा कर उन पुराने बिखरे हुए कणो से इतिहास की आलीशान इमारत खड़ी करना औरो के लिये एक मुश्किल काम था।

सच तो यह है कि डॉ० भण्डारकर जन्म से विद्यार्थी बनकर पैदा ही हुए थे। प्रकृति ने उन्हें जाँच पड़ताल की भरपूर योग्यता प्रदान की थी। इल्म मे उन्हें इश्क था। एक प्यास थी जो किसी तरह न बुझती थी। वे जब किसी इल्मी मसले को हाथ मे लेते थे तो उसकी खोज मे पूरी तरह जी जान से लग जाते थे और उसकी तह तक पहुँचने की कोशिश करते थे। सतही मालूमात से उनके दिल को सतोष नही होता था। बेदिली ओर लापरवाही से उन्होंने कोई काम शुरू नही किया। अपने शिष्यों मे भी उन्होंने इसी आदत की बुनियाद डाली। शास्त्रार्थ और वाद-विवाद करने मे उन्हे कमाल हासिल था। वे किसी इल्मी मसले की पूरी तरह से जानकारी और पड़ताल करके ही किसी सिद्धान्त का निश्चय करते थे और फिर उसकी समालोचना चाहे कितनी ही तीखी क्यों न हो उसका कोई बाल-बाका नही कर पाता था। आलिमाना जिद भी उनके स्वभाव में था और जब वे किसी बात पर अड़ जाते थे तब उससे हिलते न थे। वे एक वक्त मे एक ही मसले पर ध्यान देते थे और अपने दिमाग की पूरी ताकत उसमें लगा देते थे। इसलिये जब कभी किसी विषय पर बहस की जरूरत होती थी वे उसकी सभी युक्तियों और सबूतों से पूरी तरह लैस होकर मैदान मे उतरते थे।

प्रो० भण्डारकर अपने शिष्यों के साथ हमेशा बहुत शरीफाना और हमदर्दाना रवैया रखते थे। एक अच्छे गुरु का फर्ज है कि वह अपने शिष्यों का पथ-प्रदर्शक, दोस्त और सलाहकार हो। डॉ० भण्डारकर ने इस आदर्श को हमेशा अपने सामने रक्खा। होनहार लड़कों की आप आर्थिक सहायता भी करते थे। उनके शिष्यो को उन पर पूरा भरोसा था और अपनी मुश्किलात में वे उनसे मशविरा लेते और उस पर अमल भी करते थे। ज्यादातर प्रोफेसरों की तरह वे अपनी जिम्मेदारियो को केवल लेक्चर हाल तक ही सीमित नही रखते थे।

शिष्यों के लिये उनके घर का दरवाजा हर समय खुला रहता था। एक जिन्दा मिसाल से जो तालीमी और चारित्रिक पूर्णता आ सकती है वह केवल जबानी नसीहत से नहीं। डॉ० भण्डारकर अपने शिष्यों के लिये हमदर्दी, सदाचरण और आजाद ख्यालात के जिन्दा मिसाल थे और चूँकि उनकी ये शिफतें दिखावटी नहीं थी इसलिये शिष्यों के दिल पर उनका गहरा असर होता था। सस्कृत के प्रोफेसरों को अक्सर यह शिकायत रहती है कि विद्यार्थी दूसरे विषयों के मुकाबले मे इसकी ओर कम ध्यान देते हैं जबकि संस्कृत साहित्य की खूबियाँ और नाजुक ख्यालियाँ उनके मिजाज को बनाने में बहुत उपयोगी है। भण्डारकर को अपने विद्यार्थियों से यह शिकायत कभी महसूस नहीं हुई। उनके व्याख्यान गौर से सुने जाते थे। शिष्यो को वक्त की शिकायत जरा भी महसूस न होती। कुछ तो विषय पर उनका अधिकार उनका बर्ताव और जिन्दादिली थी जो विद्यार्थियों के

और कल्पना पर जादू का असर करती थी। बम्बई में उन्होंने सस्कृत पढ़ने का शौक पैदा करने में बडी कामयाबी हासिल की। आपके शागिर्दो में बहुत कम ऐसे मिलेंगे जिन्हें सस्कृत साहित्य के माधुर्य का चस्का न पड गया हो। उन्होंने अपनी जिन्दगी मे बहुत आजाद ख्याल तरीके इस्तेमाल किये। चापलूसी और बेजा खुशामद से उन्होंने अपनी जबान को कभी नही गन्दा किया और बाहरी प्रभाव से दबकर अपने उसूलों और रवैयों में कभी विरोध नहीं होने दिया। उनकी जिन्दगी प्रलोभनों से दूर रही उतनी जितनी कि इन्सान की पहुँच में है। उन्हें शायद किसी बात से इतनी दिली चोट नहीं पहुँचती थी जितनी अपने आचरण पर की गयी बेवजह नुक्ताचींनी से।

उन्होने कभी किसी इनाम या किसी की मेहरबानी की ख्वाहिश नहीं की। शोहरत ओर ख्वाहिशों से बहुत दूर रहे। ये वे कमजोरियाँ है जो कभी-कभी अच्छे इन्सान को भी गुमराह कर देती है। आजाद और बेलौस दिलों पर उनका जादू नही चलता। हालाँकि सरकार की नजरे इनायत उन पर हमेशा बनी रही। वह शोहरत और उपाधि जिनके लिये लोग तरसते है इन्हें बिना माँगे ही मिल गयी। सी० आई० ए० की उपाधि तो उन्हें पहले ही बख्शी जा चुकी थी जश्ने-दरबार के मौके पर उन्हे सी० एस० आई० की उपाधि भी बख्शी गयी। अगर सबूत की जरूरत हो तो इस बात का यह काफी सबूत है कि इज्जत पाने के लिये हमें अपने आत्मसम्मान का गला घोंटने या दूसरे की हकपसन्दी का खून करने की कोई जरूरत नहीं है। जो लोग ऐसा समझते हैं जिनकी संख्या अधिक है वे न सिर्फ अपने ओछेपन का प्रदर्शन करते बल्कि सरकार की नीयत, न्याय और बुद्धिमत्ता को बदनाम करते है। हालाँकि बहुत अफसोस से कहना पड़ता है कि कभी-कभी सरकार के कानून इस ख्याल को सिद्ध करते हुए नजर आते है कि आजादी और हक पसन्दी इसके लिए जरूरी नहीं। डॉ० भण्डारकर की एक बडी सिफत यह थी कि वे ईर्ष्या द्वेष से दूर थे। दूसरे विद्वानों की तरह उन्होने कभी अपने समकालीन आलिमों की बेकद्री नही की बल्कि उनका रवैया तो यह रहा कि दूसरों के दिलों मे भी कैसे तहकीक और तलाश का शौक पैदा करें, उनका हौसला बढाये और उनकी मदद करे ताकि उनके बाद इस काम में दिलचस्पी लेने वालो की बहुत कमी न होने पाये।

अलगरज डॉ० भण्डारकर की शख्सियत हिन्दुस्तान केलिये गर्व का विषय है। आपने यह साबित कर दिया कि हिन्दुस्तानी लोग विद्या के कठिन क्षेत्रों में भी योरप के विद्वानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकते हैं। जर्मनी, फ्रास, इंग्लिशतान सभी देशों के विद्वान आप पर भरोसा रखते हैं और हम उनके देशवासी होने पर गर्व करते हैं। उनकी जिन्दगी एक खुली हुई किताब है जिसमे मोटे अक्षरों में लिखा है, 'अध्यवसाय, व्यवस्था और महान लक्ष्य कामयाब जिन्दगी के राज हैं।' न्यायमूर्ति चन्द्रवारकर जिन्हें आपका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है इनके सम्बन्ध मे कहते है, 'सर भण्डारकर ने बहुत मुश्किलो के बावजूद भी अपने बर्ताव में बनावट नहीं रक्खा और शोहरत की कभी फ़िक्र न की। उन्होंने हमेशा अपने हक की वकालत की है। मगर अपने हक के प्रति खबरदार रहते हुए भी कभी ना हकपसन्दों के सामने बर्ताव करके अपनी हकपसन्दी को

कम नहीं किया। आप ब्रह्म समाज के मानने वाले हैं और जात-पाँत, छुआछूत को मुल्क की तरक्की मे बाधा समझते है। भगवद्गीता और उपनिषद् आपकी जिन्दगी को राह दिखाने वाले है। यही आपकी आत्मा की पाकीजगी और दिल की सफाई के जरिये है। मूर्तिपूजन और बुतपरस्ती पर आपको भरोसा नही। आपको वेदों, उपनिषदों और भगवद्गीता मे मूर्ति पूजा की कोई मिसाल नहीं मिलती। आपने बहुत खोजबीन के बाद यह नतीजा निकाला है कि यह रिवाज हिन्दुओं ने जैन और बौद्ध धर्म से लिया है। हालाँकि जैनो और बौद्धों को खालिक पर कोई भरोसा नहीं मगर जब उनके बुजुर्ग और औलिया मरते है तो उनकी यादगार में बुत कायम करते है हिन्दुओं ने यह रिवाज उनसे लिया है और उसी ने अब बुतपरस्ती की सूरत अख्तियार कर ली है। बावजूद इस सच्चाई के, पढे लिखे हिन्दू मूर्ति पूजा के ऐसे समर्थक है, उस पर उनका एसा पक्का विश्वास है मानो यही हिन्दू मत की जान हो। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में आपने अगुआई की जिसका सबूत व्यावहारिक रूप से आपने दिया है। मई सन् 1891 मे आपने अपनी विधवा लड़की का पुनर्विवाह करके अपनी जाती साहस का सबूत दिया है जो अपने देश के समाज सुधारकों का एक दुर्लभ गुण है। जिस कौम में ऐसी महान आत्माएँ जन्म लेती हों उसके भविष्य के विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

गोपाल कृष्ण गोखले

हिन्दुस्तान के महापुरुषों में अधिकांश की जिन्दगी हिम्मत और हौसले को बढाने वाली है लेकिन उस निष्काम देशभक्ति और बलिदान का उदाहरण, जिसने गोपाल कृष्ण गोखले को सारे देश के लिये गौरव की वस्तु बना दिया है मुश्किल से कहीं और मिल सकता है। इसमे शक नही कि देश में आज ऐसे अनेक लोग मौजूद हैं जिनका बुद्धि वभव अधिक विशाल है, जिनका पांडित्य अधिक गहन है, जिनकी शख्सियत अधिक प्रभावशाली है लेकिन वह सच्चा देश प्रेम जिसकी वजह से गोखले पूरे देश पर छा गये अपने इस हाल में दूसरा सानी नही रखता। आपका जीवन नौजवानो मे जोश पैदा करने, हौसला बढाने और पक्का इरादा करने की दिशा मे एक अनूठा मिसाल है। आज आपको देश के राजनैतिक मंडलो मे बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और यह कहना अत्युक्ति न होगी कि आपके देशवासी आपकी पूजा करते हैं। इसका सबूत इससे बढकर और क्या हो सकता है कि महात्मा गाँधी जैसे महान और पूजनीय पुरुष भी आपको अपना गुरु मानते है और इसमें तो किसी को शक की गुंजाइश ही नहीं कि कानून बनाने वालो की मजलिस मे जो बड़े-बड़े काम आपने किये हैं वे उसके इतिहास में सदा याद किये जायेंगे।

आप सन् 1863 मे महाराष्ट्र के कोल्हापुर नगर मे पैदा हुए। माँ बाप गरीब थे। अगर गरीब न थे तो किसी हद तक खुशहाल भी न थे। आपने वहीं के स्कूल से एफ० ए० की डिग्री हासिल की और फिर एलफिन्स्टन कालेज में पढ़ने बम्बई गये। यह कालेज हिन्दुस्तान का सबसे अच्छा सबसे पुराना और सबसे ज्यादा देश सेवा करने वाला कालेजों का सिरमौर था। दादाभाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता जैसे नामवर लोगो की पाठशाला यही थी। यहाँ श्री गोखले की बुद्धि और प्रतिभा की धूम मच गयी। विद्यार्थी और अध्यापक सभी इज्जत की निगाह से देखने लगे। गणित से इन्हें खास लगाव था और मिस्टर हाथार्न जो इस कालेज में गणित के प्रोफेसर थे अपने होनहार शिष्य की काबलियत पर गर्व किया करते थे।

चूँकि आपके माता-पिता पढ़ाई का खर्च न सम्हाल सकते थे, यह जरूरी था कि आप परीक्षा में वजीफा पाने के हकदार पाये जायें। कोई भी आदमी जो आपकी काबलियत से वाकिफ था, आपकी कामयाबी पर जरा भी शक नहीं कर सकता था। मगर कुछ वजह ऐसी हुई कि आप इस सनद को नहीं पा सके इस मनहूस नाकामी से जो

सदमा आपको लगा उसको वही महसूस कर सकता है जिसकी उम्मीदों पर पानी फिर गया हो। आखिर रोजी रोटी के चक्कर मे आपको पूना जाना पड़ा। यहाँ इंजीनियरिंग कालेज में दाखिला लेने का ख्याल था जिसके लिये आपके गणित ने आपको बहुत लायक बना दिया था लेकिन नाकामी ने अपनी शकल यहाँ भी दिखायी क्योंकि दाखिला का काम यहाँ खत्म हो चुका था। प्रिंसपल ने दाखिला करने में अपनी मजबूरी दिखाई। यह नयी नाकामी आपके दिल टूटने का कारण बनी। अगर नतीजा इनकी मर्जी के मुताबिक होना तो आप किसी डिवीजन के इंजीनियर हो जाते और दौलत तथा इज्जत के लिहाज से आपकी हालत बहुत अच्छी हो जाती। मगर फिर नही मालूम कि आपकी इतनी मेधा और प्रतिभा की पहचान किस रूप में होती? सच तो यह है कि आपकी किस्मत मे देश के लिये कुर्बान होना लिखा था। आपकी वो नाकामियाँ जो आपकी अपनी जिन्दगी के लिये मनहूस थीं देश के लिये न्यामत बन गई। खुदा करे ऐसी नाकामियाँ सबको मिले जिसके आगे सारी कामयाबियाँ शर्मिन्दा होती है।

इसी जमाने मे दक्षिण के कुछ उदार हौसलामन्द, देशप्रेमी लोगों ने देशवासियो को तालीम दिलाने के ख्याल से एक अग्रेजो स्कूल की नीव डाली। मिस्टर तिलक, मिस्टर आप्टे और कुछ अन्य बुजुर्गों की देखरेख में एजुकेशन सोसाइटी के नाम से एक शिक्षण सस्थान की नीव डाली जिसका उद्देश्य उच्च शिक्षा का प्रचार करना था। गोखले ने रोजी रोटी की कोई और सूरत न देखकर इसी स्कूल में एक नौकरी कबूल कर ली। आगे चलकर वही स्कूल तरक्की पाकर फरगूसन कालेज पूना के नाम से मशहूर हुआ जो आज तक दक्षिण की हमदर्दी, देश सेवा और कुर्बानी के जीते जागते यादगार के रूप में कायम है। इस शिक्षण संस्थान के हर मेम्बर का यह पक्का इरादा होता था कि इस कालेज में बगैर किसी मुआवजे के खिदमत करें। हिन्दुस्तान उन सच्चे देश प्रेमियो की कुर्बानियों का कयामत तक एहसानमन्द रहेगा जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर देश के लिये अपनी सेवा अर्पित की और जिनकी शिक्षा के प्रति निष्ठा की बदौलत यह स्कूल आज हिन्दुस्तान के मशहूर कालेजो में एक है। शुक्र है कि वही देश प्रेम जिसने फरगूसन कालेज का पालन पोषण किया आज हमारे अशिक्षित प्रान्तो में भी खास तौर पर दिखाई दे रहा है और कुछ तरक्की पसन्द देशभक्तों ने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के लिये अपना जीवन कुर्बान कर दिया है। उनकी यह कुर्बानी आगे चलकर जरूर कामयाब होगी।

दूसरे नौजवानों की तरह गोखले के दिल में भी नाम कमाने के अलावा जिन्दा रहने के लिये धन दौलत कमाने की भी चाह थी। उन्होंने यह नौकरी महज जरूरत से मजबूर होकर कबूल की थी। मगर जब शिक्षण संस्थान के मेम्बरों के बीच उठने-बैठने और बातचीत का मौका मिला तो उनके उदार और हमदर्द स्वभाव का गोखले पर असर पडा। आप भी उसी रंग मे रंग गये और देश प्रेम का जोश यहाँ तक उमड़ा कि नाम और दौलत कमाने के हवाई किले जो बाँध रखे थे, गायब हो गये। आप जैसे नौजवान के लिये जिसके पास पुश्तैनी जायदाद कुछ न हो और न आमदनी बढाने का दूसरा जरिया ही हो इस शिक्षण सस्थान की कोशिशा में हाथ बँटाना कोई मामूली काम न था खास

तौर पर उस हालत में जब इनके आश्रितों को इनसे आर्थिक मदद की सख्त जरूरत हो। समझौता पर दस्तखत करने के पहले कुछ अर्से तक आप बड़े पसोपेश में रहे लेकिन आखिर देशप्रेम ने जब जोश मारा तो आप दक्षिण की इस संस्था में शामिल हो गये जिसका मतलब यह था कि आप पचहत्तर रुपये मासिक तनख्वाह को ऑनरेरियम समझकर बीस वर्ष तक शिक्षा जगत की खिदमत करते रहेंगे। इस कुर्बानी से जाहिर होता है कि आपकी निगाह में दुनिया की भलाई करने का दर्जा अन्य दुनियावी न्यामतों से कही अधिक था। यह ख्याल कीजिये कि इस समय उनकी उम्र केवल अट्ठारह वर्ष थी, जब दिलों में जवानी और उमंग की लहरें जोश मारती हैं, तब मानना पड़ता है कि आप जरूर देवता तुल्य पुरुष रहे होंगे। ऐसे देशप्रेमी बहुत मिलेंगे जो दुनिया के मजे ले लेने के बाद जब जिन्दगी के चन्द दिन बाकी रह गये तब देश के काम में लगे। मगर ऐसे कितने हैं जो गोखले की तरह देश के लिये अपना तन मन धन सौंपने को तैयार हो जायेंगे।

इस संस्था से जुडने के बाद आपने बहुत मेहनत और जोश के साथ पढाने का काम शुरू किया और आपकी पुरजोर कोशिशो के कारण बहुत जल्द आप अध्यापको के बीच एक अहम स्थान बना सके और चन्द ही दिनों में आप इस कालेज की जान हो गये। इस समय कालेज की माली हालत बहुत खराब हो रही थी। मजबूरन एक मामूली इमारत में गुजर करना पड रहा था। आपने इसके लिये इसकी शान के लायक एक शानदार इमारत बनवाने का पक्का इरादा किया और अपने साथी अध्यापकों के साथ दक्षिण के दौरे पर निकल पड़े। करीब तीन वर्ष की कठिन मेहनत के बाद आपने दो लाख रुपया इकट्ठा किया। इस कामयाबी ने आपकी पुरजोर कोशिशों और काबलियत का सिक्का लोगों के दिलों में जमा दिया। कालेज के लिये बहुत जल्द एक शानदार इमारत बन कर खड़ी हो गयी। यह इन दक्षिण वासियों की पुरजोर कोशिशों और सच्चे देश प्रेम का नतीजा है जो हमेशा लोगों को उनकी याद दिलाती रहेगी। इस कालेज और उसके प्रेमी कार्यकर्ताओं की कोशिशों की तारीफ जिन शब्दों में लार्ड नार्थ कोट तथा अन्य कद्रदानों ने की है वह वाकई बहुत प्रेरक है। चूँकि देश के आपकी सेवाओं के लिये आपका एहसानमन्द होना था, उसके सामान भी परोक्ष रूप से इकट्ठा होते गये। तालीमी खिदमत करते हुए अभी तीन वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे कि आपको ऐसे प्रतिभाशाली, महान, संत पुरुष की शिष्यता का सुअवसर मिला जिसका नाम आज हिन्दुस्तान के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर है। ऐसा कौन होगा जो स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे के पाक नाम से वाकिफ न हो। हिन्दुस्तान की हर दरोदीवार उस नेक इन्सान की तारीफ से गूँज रही है। उसकी जिन्दगी दुनिया के तमाम गुणों की एक अनूठी मिसाल है। उस देश प्रेमी के दिल से मुल्क और कौम की याद कभी नहीं मिटी। हिन्दुस्तान की कोई ऐसी संस्था न थी जिसे इस नेक इन्सान के कामों और नेक सलाहों से फायदा न पहुँचा हो। उन दिनों उनको पूना की सार्वजनिक सभा की ओर से अखबार निकालने के लिये एक मेहनती उत्साही, हौसलामन्द, रौशन ख्याल और ईमानदार नौजवान संपादक की जरूरत थी। श्री गोखले की उम्र उस समय 22 वर्ष से अधिक न थी कितने ही अनुभवी और बुजुर्ग लोग इस काम को करने के

दावेदार थे मगर श्री रानाडे की पारखी निगाहो ने इस काम के लिय आपसे ज्यादा ओर किसी व्यक्ति को काबिल न समझा। सुभानअल्ला! क्या आदमी की पहचान थी! और नतीजे ने भी दिखा दिया कि रानाडे का चुनाव इससे ज्यादा अच्छा हो ही नही सकता था। संपादक का काम मिलते ही सबसे पहले आपने आर्थिक हालत सुधारने की ओर ध्यान दिया और इसके लिये सबसे पहले उलझे मामलो की तहकीकात शुरू कर दी। उन गुत्थियों को सुलझाने के लिए रानाडे जैसे लोगों की ही जरूरत थी। एक अनुभवी बुजुर्ग का कहना है 'श्री गोखले राष्ट्र की अमानत है जिसे स्वर्गीय रानाडे ने देश को दिया है।' यह कहना बहुत सही है। इससे कोन इन्कार कर सकता है कि आप अध्यापक के रग में पूरी तरह रंगे थे। आपने एक व्याख्यान मे स्वयं छात्रोचित गर्व से कहा था 'मुझे 12 वर्ष तक उस नेक इन्सान के साथ रहने का मौका मिला और इस बीच मै उनका सीख से बतौर फायदा उठाता रहा।' इन शब्दो से किस कदर उनकी श्रद्धा और सवेदना जाहिर होती है जिसे बयान करने की ताकत किसी मे नही है। सुभानअल्ला! कैसा देव पुरुष था वह। और कैसा प्रतिभाशाली छात्र। आज श्री रानाडे की आत्मा स्वग मे अपने शिष्य के सच्चे और निःस्वार्थ देशप्रेम पर खुशी से झूठ उठी होगी। आपको अपने देश की आर्थिक स्थिति का पूरा ज्ञान था। यह उसी बुजुर्गवार की सोहबत का असर था कि आपने 12 साल के सपादन काल में अनेक आर्थिक रिपोर्टे और पत्रिकाओ के संपादकीय लिखे जो दुरुस्त होने के लिये श्री रानाडे की खिदमत में पेश किये जाते थे और बेशक जो उनके भूल सुधार होते थे वे आज्ञाकारी भक्त शिष्य के लिए प्रेरक बिन्दु बन जात थे। यह उस कठिन मेहनत का नतीजा है कि आप सरकार की आर्थिक रिपोर्टो की गुत्थियो को आसानी से हल कर लेते थे और चुटकी बजाते दूध का दूध और पानी का पानी कर देते थे।

श्री रानाडे के नजदीक रहने से आपको सिर्फ यही फायदा नही हुआ कि देश की गंभीर और अहम मसलों की पूरी जानकारी हो गयी बल्कि रात दिन की नजदीकी ने आपके दिल पर अपनी कठिन मेहनत, उदार दृष्टि, धार्मिक एकता और विवेक शक्ति का गहरा असर डाला जो वक्त के साथ बजाय मिटने के और गहराता गया और आपने आठ वर्ष तक तालीमी सेवा के अलावा सार्वजनिक सभा का पत्र 'ज्ञान प्रकाश' श्री रानाडे के सरक्षण मे बड़ी काबलियत से चलाया। आपकी राय ऐसी पुख्ता और सही हुआ करती थी आपके राष्ट्रीय पत्र में वो ताजगी, मेहनत और कलम की ताकत होती थी कि चन्द ही दिनों में वह शिक्षित समाज में इज्जत की निगाह से देखा जाने लगा और मुल्क को पता लग गया कि आपकी शख्सियत से यहाँ के आम जीवन में एक महापुरुष का इजाफा हो गया है। इसका व्यावहारिक सबूत यह था कि आप बम्बई प्राविंशियल काउंसिल के मत्री पद पर नियुक्त हुए और चार साल तक इस काम को भी आपने बड़ी बखूबी किया। इन सेवाओं से आपकी शोहरत हिन्दुस्तान के हर सूबे में कस्तूरी की सुगन्ध की तरह फैलने लगी और आखिर में 1897 ई० में आप इंडियन नेशनल कांग्रेस के मंत्री पद पर नियुक्त हुए इसी साल आपको अपनी देशभक्ति जाहिर करने का एक बहुत अच्छा मौका

हाथ लगा। नेशनल कांग्रेस और अन्य देशभक्तों की बराबर यह शिकायत रहती थी कि महत्वपूर्ण पदों पर आम तौर पर अंग्रेज ही रक्खे जाते हैं और हिन्दुस्तानी ज्यादा योग्यता होने पर भी रक्खे नहीं जाते। पार्लियामेन्ट का ध्यान अब इस ओर आकर्षित हुआ। एक शाही कमीशन लार्ड विलबी की अध्यक्षता मे बना जिसे इस बात की तहकीकात करनी थी कि ये शिकायतें किस हद तक सही है और कुछ ऐसी तजवीजे पेश करनी थी जिनके आधार पर सरकार नीतियाँ बनाये जिनका आम तरीके से पालन हो सके। लेकिन अफसोस! अंग्रेजों को अपनी नेकी न्याय-निष्ठा का इजहार करने का यह आखिरी मौका था जिसका आंग्ल भारतीय समाज ने बडे तीखे ढंग से विरोध किया जो इनके नाम पर हमेशा के लिये एक बदनुमा दाग बनकर रहेगा। इस समय श्री गोखले की बुद्धि, भाषण क्षमता, दूरदर्शिता और असाधारण कार्बलियत की वाहवाही पूरे हिन्दुस्तान मे हो रही थी। आपको दक्षिण प्रान्त का प्रतिनिधि बनाकर विलबी कमीशन के सामने अपने विचार पेश करने को भेजा गया। श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, श्री दीनसा ईदुलजी वाचा और श्री सुब्रह्मण्यम अय्यर के साथ ये उसी साल इंग्लैंड गये और वहाँ कमीशन के सामने जो प्रभावी वक्तव्य दिया, अपनी समस्याओं को दलीलों के साथ जिस कौशल के साथ पेश किया वह उनकी असाधारण काबलियत और देश प्रेम को जाहिर करता है। उसकी दूसरी मिसाल नही मिल सकती। बावजूद इसके कि यह वक्तव्य बहुत नुक्ताचीनियो से भरा था, कमिश्नरो ने बडे खुले दिल से उसकी तारीफ की और इसमे शक नही कि इस सख्त पुरजोर वक्तव्य का उनके फैसले पर अच्छा असर पड़ा। आपने हिन्दुस्तान की गरीबी और सरकार की बेजा सख्ती का बड़े दर्दनाक शब्दों मे बयान किया।

'मौजूदा सरकार की नीतियो का यह असर हो रहा है कि हमारी शारीरिक और मानसिक कूवत दिनोंदिन कमजोर और बेकाम होती जा रही है। हम मजबूर किये जाते हे जलालत और नफरत की जिन्दगी बसर करने को। कदम-कदम पर हमको याद दिलाया जाता है कि तुम एक गुलाम जाति हो। हमारी आजादी का बेरहमी से गला घोंटा जा रहा है और यह सिर्फ इसलिए कि मौजूदा सरकार के कदम और मजबूत हों। इग्लैंड का हर नोजवान जिसको खुदा ने दिमाग और हौसला दिया है उम्मीद करता है कि किसी न किसी दिन वह कौम की जहाज को चलाने वाला कप्तान बनेगा। किसी न किसी दिन ग्लडस्टोन का पद और नेल्शन की शोहरत हासिल करेगा। यह ख्याल चाहे हवाई किला ही क्यों न हो उसके हौसले को उभारता है। वह तन मन धन से इस हौसले को पूरा करने में लग जाता है। हमारे मुल्क के बदकिस्मत नौजवान ऐसा हौसला बढ़ाने वाला ख्वाब भी नहीं देख सकते। वे ऐसे आलीशान हवाई किले भी नहीं बना सकते। मौजूदा सरकार के होते हुए यह मुमकिन नही कि हम उन ऊँचाइयों तक पहुँच सके जिसके काबिल हमे भगवान ने बनाया है। वह नैतिक बल जो हर आजाद कौम में होता है हममें गायब होता जा रहा है। आखिर इस भयानक नीति का नतीजा यह होगा कि धीरे-धीरे हमारी सियासती योग्यता और जंगी काबलियत इस्तेमाल के अभाव में मिट्टी में मिल जायेगी और हमारी कौम एक ऐसी जलील कौम हो जायेगी जो सिवा लकड़ी काटने और

पानी भरने के और किसी काम की न रह जायेगी।'

कमीशन के सामने पेश होने के बाद श्री गोखले ने लंदन और उसके दूसरे सूबो में दौरा करना शुरू किया ताकि अपने पुरजोर व्याख्यान से अंग्रेज जनता के दिल मे हिन्दुस्तान के लिये हमदर्दी पैदा कर सके और उनका हिन्दुस्तान के प्रति उस बेखबरी को जो अफसोस के काबिल है, दूर करें। आपकी इन नेक कोशिशों की तारीफ अंग्रेजों ने दिल खोल कर की। आपके व्याख्यान में बहुत दिलचस्पी दिखाई गई। चारो तरफ आपकी तारीफें होने लगी। बधाई के पत्र आने लगे और कुछ ही दिनो में आपकी विद्वता और भाषण क्षमता का सिक्का लोगो के दिलों मे जम गया। मगर ऐन उस वक्त जब आप इतनी शोहरत और कामयाबी हासिल कर हिन्दुस्तान लौटने वाले थे कि एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी जिसने कुछ दिनो के लिये आपको अपने नादान देशवासियो की बेदर्दी जलालत और नफरत का निशाना बना दिया।

उन दिनों बम्बई की सरकार लार्ड सैंडर्स्ट के हाथो मे थी। लार्ड सैन्डर्स्ट ने प्लेग मे बचने के लिए बड़े सख्त कानून बनाये थे और सरकारी मुलाजिम जो इन पर अमल कराने के लिये तैनात किये गये थे अवाम के ऊपर ऐसा जुल्म करते थे जो बयान के काबिल नहीं। चुनांचे जब पूना इस भयंकर बीमारी का शिकार हुआ और सरकारी मुलाजिम उसे दूर करने के जोश मे अन्धेर मचाने लगे तो अवाम बिगड गई। पढे-लिखे लोगों को भी सरकार की यह दखलन्दाजी नागवार महसूस हुई। उन्होंने भी इसकी कड़े शब्दो में निन्दा की। अखबारों ने भी उसकी बुराई की। मगर नौकरशाही इतने पर भी न जगी। आखिरकार अग्रेज अफसर रेन्ड और आयर्स्ट को, जो अवाम की निगाह मे उन तमाम गडबड़ियों के जिम्मेदार समझे जाते थे, सरकार की लापरवाही और अवाम के गुस्से का खामियाजा भुगतना पड़ा।

इन दो अंग्रेजों के कत्ल से अंग्रेजी अफसरों के कान खड़े हुए। उनको शक यह हुआ कि हगामा पढ़े-लिखे लोगो का कराया हुआ है। अग्रेजी अखबारो ने भी हाय-तौबा मचाना शुरू किया और बदले की भावना में खुदा जाने क्या-क्या बुरा भला कहा। किसी ने सलाह दी कि हिन्दुस्तानी अखबार की धज्जियाँ उड़ा दो, किसी ने कहा कि पूना को मिट्टी में मिला दो। हिन्दुस्तानी अखबारों की हिम्मत तारीफ के काबिल है जो सच्चाई बयान करने से न चूके। अंग्रेजों को खूब तुर्की बतुर्की जवाब दिया। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने कुछ राष्ट्रीय नेताओं के खून से अपने गुस्से की आग को ठंडा किया। आग्ल भारतीयों ने घी के चिराग जलाये, खुशिया मनायी और सरकार को इस कार्यवाही पर बधाई दी।

अभी श्री गोखले इंग्लैड में ही थे कि उनके मित्रों ने हिन्दुस्तान सरकार की जुल्म और ज्यादतियों के दिल हिला देने वाले वाकयात पूना से लिखकर भेजना शुरू कर दिया। उनको उम्मीद थी कि आप इग्लैंड में सरकार की बेजा कारनामों की आलोचना करेंगे और उनकी ओर पार्लियामेन्ट का ध्यान खीचेंगें मुमकिन नहीं था कि अपने देशवासियो

से काम लिया। आपको मालूम था कि सरकार पर जो इल्जाम लगाये गये हैं उनको साबित करने के लिये सबूत देना बहुत मुश्किल हो जायेगा और इसके पहले कि आप इन ज्यादतियो का एलान करे आपने बहुत गम्भीरतापूर्वक सोचा लेकिन इसी बीच रेन्ड और आयर्स्ट की हत्या की भयानक खबरे पहुँची जिसने अग्रेज जनता मे अजीब हलचल मचा दी और हिन्दुस्तानियो को सजा देने की तरकीबे सोची जाने लगीं। अफवाह उड़ी कि पूना शहर के पचीस मशहूर रईस लोगों को फाँसी की सजा मिलेगी और यही नही और भी बडी भयानक खबरे जो बहशियाना, जंगली और बेबुनियाद थी, फैली। आपसे अब बर्दाश्त न हो सका। जरूरी हुआ कि आप भी अब अपनी आवाज उठाये। चुनाचे आपने उन खतो के आधार पर जो आपको पूना से मित्रों ने लिखे थे सरकार के जुल्म और ज्यादतियों का पुरजोर तरीके से एलान किया और यह साबित करने की कोशिश की कि यह न सम्झा जाय कि वहाँ की अवाम बागी हो रही है बल्कि यह सरकार की नादानी है कि वह अवाम को इस तरह तंग करके उसको भड़का रही है। मगर लार्ड जार्ज हेमिल्टन ने जो उस समय सेक्रेटरी हिन्दुस्तान थे आपके इल्जामातों को रद्द कर दिया, लार्ड सैन्डर्स्ट के पत्र के आधार पर जो हिन्दुस्तान से भेजे गये थे। अब आपके पास इसके सिवाय और कोई चारा न था कि या तो वाकयात और सबूत से अपने दावों को साबित करें या शर्मिन्दगी के साथ उन्हें वापस ले लें। चुनांचे आप हिन्दुस्तान के लिये रवाना हुए। मगर इसी समय बम्बई सरकार ने पूना के अगुआओं को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया और जब आप अदन पहुँचे तो आपको उन दोस्तों के खत मिले जिनमें यह विनती की गई थी कि उनके खतों को छापा न जाय। गिरफ्तारी के हुक्म ने उन्हें आतंकित कर दिया था और वे यह कसम खाने को आमादा थे कि ये खत उनके लिखे हुए न थे। उस वक्त उनकी परेशानी और निराशा का अन्दाज लगाना मुश्किल है जो उनके दोस्तो की बेवफाई और कायरता से पैदा हुई थी। कुछ दिनों तक तो यह अंदेशा हुआ कि आप हमेशा के लिये मुल्क की समस्याओं से अलग हो जायेंगे। आपको एतबार हो गया कि जो इल्जामात सरकार पर लगाये थे उन्हें साबित करना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। लिहाजा शराफत की माँग यही थी कि आप उन बातों की माफी माँगें जिनसे सरकार के नाम पर धब्बा लगा था। अपने दावों पर अडे रहना जबकि उन्हें साबित करने की कोई सूरत नज़र नही आती थी, आपकी समझ में बेकार था। चुनांचे हर तरफ से सोचने के बाद आपने अपना मशहूर माफीनामा प्रकाशित किया। इधर आपके देशवासी जो इन हालात के नतीजों से वाकिफ नही थे आपसे चिढ़ गये और आपके इस काम को आपकी बुज़दिली का नतीजा माना। आप बड़ी बेदर्दी से नुक्ताचीनी के निशाना बने और आपके ऊपर खुशामद और दौलत कमाने के जुर्म का भी आरोप लगा। हालाँकि उस वक्त भी हिन्दुस्तान और इंग्लैंड दोनो देशों के समझदार बुजुर्गों ने आपकी हिम्मत और बहादुरी की खुले दिल से सराहना की। स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानाडे ने, जो अपने इस प्रिय और काबिल शिष्य के कारनामे को पितृवत भाव से देख रहे थे, आपकी साफदिली और समझदारी पर खुशी का इज़हार किया सुभानअल्ला क्या हिम्मत और हौसला है दोस्तों और हमदर्दों के दिल तोड देने

वाले काम से भी पस्त न हुआ। आपने इस फ़ारसी कहावत 'हर चेअज दोस्त मीरसदनेकोत' (दोस्त जो भी मिले वह हमेशा अच्छा ही होगा) का अनुसरण कर उनकी तमाम हरकतों और नुक्ताचीनियों को अपने सर माथे पर ले लिया। ऐसी हालत में अगर कोई बनावटी देशभक्त होता तो अपने देशवासियों की नाशुक्री और अहसानफ़रामोशी को उस सारे वाकयात की वजह करार कर दोषी ठहराता। अपने देश की नाकद्री और बेवफाई का रोना रोता और गालिबन हमेशा के लिये देश सेवा के काम से मुँह फेर लेता लेकिन नेकी आपके रग-रग में घुल गई थी। आप प्रेम और सब्र से मुल्क की सेवा में फिर से लग गये। शुक्र है कि वह दिन बहुत जल्द आया जब उनके आलोचक अपनी बुरी हरकत पर लज्जित हुए।

अभी पत्रकारों का गुस्सा कम न हुआ था कि बम्बई में प्लेग ने कहर ढा दिया। लोग घर-बार, बाल-बच्चे छोड-छोडकर भागने लगे। इसकी सख्त जरूरत महसूस होने लगी कि देश के नौजवान अपने देशवासियों की सेवा के लिये आगे आये और अपनी जान की बाजी लगा दें। इस खतरनाक काम में सबसे पहले जिसने पहल की वह आप ही है और जिस तरह निःस्वार्थ भाव से, तन मन धन से उसमें जुट गये और अपनी जान की परवाह न करके प्लेग के कार्यकर्त्ताओं का हाथ बटाया। वह केवल आप ही कर सकते थे। सारा देश आपकी प्रशसा के गुन गाने लगा। लार्ड सैन्डर्स्ट जिसने पहले कई बार आपकी आलोचना की थी उस वक्त आपकी देशभक्ति और हमदर्दी का कायल हो गया और काउन्सिल में आपका शुक्रिया अदा कर गर्व का अनुभव किया।

देश सेवा की लगातार कोशिशों ने मुल्क को फिर से आपका भक्त बना दिया। दक्षिण के लोगों ने एकमत होकर आपको बम्बई कौंसिल का मेम्बर चुना। यहाँ आपने देश की सेवा ऐसी लगन और निष्ठा से की कि सभी के दिलों में आपके लिये सम्मान पैदा हो गया। बम्बई लैंड रेवेन्यू बिल पर जो जोरदार बहसें हुई उसमें आपने सक्रिय भागीदारी की और बम्बई सरकार को यकीन दिला दिया कि गैर सरकारी लोग जो सरकार की नुक्ताचीनी करते हैं वे विरोध के लिये नहीं बल्कि अवाम के प्रति हमदर्दी की वजह से करते हैं। गैर कौमी सरकार में हमेशा यह नुक्स होता है कि उसके हर तजबीज के दो पहलू होते हैं। सरकार अपने पक्ष के हानि लाभ पर गौर कर लेती है और गरीब जनता के हित को नजरअन्दाज कर देती है। आपने हमेशा ईमानदारी से यह कोशिश की कि सरकार के सामने उनकी हर योजना और मसले पर जनता की ओर से नजर डाले और उनकी जरूरतों से उनको वाकिफ़ कराये जिससे वो जनता की भलाई की फिकर करे।

श्री गोखले के नेक इरादों और महान सेवाओं की वजह से इनके खैरख्वाहों और प्रशसकों का दायरा बहुत बढ़ गया। आप बम्बई की ओर से वायसराय कौंसिल के गैर सरकारी सदस्य चुने गये। सार्वजनिक जीवन में दिलचस्पी लेने वाला हर समझदार आदमी इस सच्चाई से वाकिफ था कि आपने अपना फर्ज कैसी ईमानदारी लगन और निष्ठा से निभाया है, आपका बजटीय भाषण अपने मुकम्मिल तफ्सीलात, अन्दाज बयान और निर्भीक

अन्दाज के लिये अपने सामने दूसरा सानी नहीं रखता। आपके वे नारे जो आपने 'विश्वविद्यालय बिल' और 'सरकारी सीक्रेट बिल' के खिलाफ दिये थे अभी तक हमारे कानों मे गूँज रहे हैं और यकीन है कि हमेशा यह अपनी तरह का बेहतरीन नमूना समझा जायेगा। आपकी गर्जन से लार्ड कर्जन जैसे शेर की बोलती भी बन्द हो जाती थी और बेशक! वाइसराय कौंसिल में आप ही एक ऐसे शख्स थे जिससे लार्ड कर्जन भी अपनी नजर बचाते फिरते थे। आपकी नुक्ताचीनी पर विरोध की नीयत का शक किया गया क्योंकि लार्ड कर्जन जैसा खुदपसन्द, घमडी आदमी अपनी कलई खुलते नहीं देख सकता था। इसलिये आपकी नीयत में बुराई दिखाकर अपने दिल का गुबार निकालता था।

आप जैसा विवेकी और जानकार व्यक्ति यह जाने बगैर नहीं रह सकता था कि गैर कौमी सरकार हमेशा गलतफहमियों और नाहमदर्दियो का शिकार बनी रहती हैं। उनको एक-एक कदम बहुत चौकसी मे आगा पीछा सोचकर रखना पड़ता है। इस लिहाज से आपने कभी सरकार को अवाम की निगाह में नीचा और खतावार बनाने की कोशिश न की बल्कि जब कभी मौका मिला आपने बडी उदारता से उनकी उन सेवाओं का बयान किया जो हमारे देश को मिला। आप अंग्रेजों की सच्चाई, नेक नीयती और ईमानदारी के प्रशंसक थे। मगर इसके साथ ही उन ऐब और कमजोरियों से भी बेखबर न थे जो अंग्रेजी सरकार में मौजूद है और जिसके कारण वे बदनाम है। आपको यकीन था कि य ऐब उनकी बदनीयती की वजह से नही बल्कि गलत नीतियो और बेमौके की पाबन्दियों की वजह से है और उनको रद्द करने का यही उपाय है कि हिन्दुस्तानी लोग शिक्षा मे तरक्की करे, अनुशासन बढायें और इसके साथ-साथ देश के मसलों में ज्यादा से ज्यादा हिस्सा लें। उनकी आवाजें ज्यादा हमदर्दी से सुनी जायें, उनके काम और गुणों की तारीफ ज्यादा उदारता से की जाय और धीरे-धीरे उन्हे अपनी हिफाजत खुद करने की शिक्षा दी जाय।

बेशक आपका आदर्श बहुत ऊचा है मगर यह ऊँचा आदर्श इन हिन्दुस्तानियों का ही नहीं रहा है बल्कि उन हकपसन्द अंग्रेजों का भी रहा जो मौजूदा वक्त में हिन्दुस्तानियों के भाग्यविधाता थे। जान ब्राइट, ब्रैडले, मैकाले और फाउस्ट जैसे महान लोगों का भी यही आदर्श था। लार्ड नार्थ ब्रुक, लार्ड बेंटिंग और लार्ड रिपन जैसे महान लोगों ने भी इसी आदर्श पर अमल करन की कोशिश की और राममोहनराय, रानाडे और दादा भाई नौरोजी जैसे महान देशभक्त पुकार-पुकार कर इसी आदर्श के गान करते रहे। श्री गोखले भी इसी आदर्श पर टिके रहे और कहते रहे कि जब तक कि वह मुबारक दिन न आये कि सरकार इस नीति पर अमल करने लगे हमारे देशभक्तों का पहला फर्ज यह होगा कि इस आदर्श के व्यावहारिक रूप दिलाने की कोशिश में लगे रहे।

श्री गोखले को जो लोकप्रियता और देश के नेताओं के बीच सबसे ऊँचा स्थान मिला था उस पर किसी भी व्यक्ति को गर्व हो सकता है। आपने अपने को देश के ऊपर न्यौछावर कर दिया। अगर आपकी कोई दुनियावी इच्छा थी तो यह कि हिन्दुस्तान को ससार के हर मुल्क में इज्जत और प्रतिष्ठा मिले और गरीबी के गड्ढे से निकलकर

वह कामयाबी की ऊँची मंजिल पर अपनी पताका फहराये। आप दिन रात देश की भलाई के उपाय सोचने में मशरूफ रहते थे। इस समय आप देश के नाम पर बिक गये थे। हालाँकि सरकार ने आपकी देश सेवा की कद्रदानी की और आपको 'सितारे हिन्द' की उपाधि से सम्मानित किया लेकिन आप इतने विनम्र थे कि इन कद्रदानियों को अपनी काबलियत से बहुत ज्यादा समझते थे। कौम की भलाई और देश भक्ति की धुन मे आपको इन उपाधियों और सम्मान का कोई शौक न था। आप दादा भाई नौरोजी के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। बम्बई मे जब उनकी सालगिरह पर जलसे का आयोजन हुआ उसमे आपने एक पुरजोर व्याख्यान दिया जिसमे ये आखिरी शब्द स्वर्णाक्षरों मे लिखे जाने और दिल के कोने मे जगह पाने के काबिल हैं, 'मेरे नौजवान दोस्तो! ख्याल करो कि श्री दादा भाई नौरोजी की जिन्दगी एक ऐसा शानदार नमूना है जिसे भगवान ने तुम्हारे लिये मुहैया कराया है। वह जोशोखरोश जिससे तुमने इस नाम की इज्जत की है निहायत दिल खुश करने वाला है। मगर हम इस जलसे को हरगिज कामयाब न समझेंगे अगर तुम्हारे उमडे हुए जोश इतने ही से तसल्ली पा जायेंगे। तुम्हारा फर्ज है कि उनकी जिन्दगी से सबक लो और अपने व्यवहार ओर सोच को उसी नमूने पर सवारने का कोशिश करो ताकि यह सोच तुम्हारे सस्कारों में शामिल हो जाय। हजरत! खुदा जो बहुत महान और सब कुछ जानने देखने वाला है, हर मुल्क मे वक्त बेवक्त अपनी जरूरत के अनुसार ऐसी महान आत्माएँ पैदा करता रहता है जो गुमराहो के लिये रहनुमा का काम करते है और जिनके नक्शे कदम पर चलकर हम गुमराह मुसाफिर अपनी मजिल पर पहुँचते हैं। बेशक दादा भी अंधकार मे डूबे हिन्दुस्तान की आँखें और रोशनी है। अगर कोई मुझसे पूछे तो मै जरूर कहूँगा कि आप जैसा महान् विचारक और देशभक्त दुनिया के किसी देश में मुश्किल से पैदा हुआ होगा। हममें से शायद कोई भी ऐसा न होगा जो उस बुलन्दी तक पहुँच सके। ऐसे बहुत कम होंगे जिनमे ऐसी मुस्तकिल मिजाजी और आला दिमाग मौजूद हो लेकिन हम सब आपकी तरह बिरादरी और मजहब का ध्यान न रखकर अपने देश को इन्हीं की तरह प्रेम कर सकते हैं। हम सब उस महान इरादे के लिये जिस पर आपने अपना जीवन न्योछावर कर दिया कुछ न कुछ कर सकते है। आपकी जिन्दगी का सबसे बड़ा सबक है—मुल्क और कौम की सेवा करना। अगर हमारे नौजवान भाई इस सबक से थोड़ा बहुत भी फायदा उठाएँगे तो आने वाला कल जरूर उम्मीदो से भरा नजर आयेगा चाहे कभी-कभी माहौल अधेरा ही क्यो न हो जाय।'

श्री गोखले को दिल में लगी थी कि दादा भाई नौरोजी ने जिस महान काम की शुरुआत अपने जीवन मे की और उसके लिये इतनी कोशिशें की वह इनके हमवतनों की गफलत और कायरता से मिट न जाय। इसके लिये सबसे अच्छा उपाय यह सोचा कि दादा भाई के तरीकों को अपनाये। हालाँकि इतने दिनों के अनुभव से हिन्दुस्तानियो को यह मालूम हो गया कि अपनी मुसीबतों की कहानी अग्रेजों से कहना बेकार है और हमारी भलाई इसी में है कि अपनी हिम्मत और अपने कामों पर ही निर्भर करें। मगर आपको यकीन था कि अग्रेज जनता को जो हिन्दुस्तानी हालात से ना हमदर्दी है वह केवल

उनकी अज्ञानता की वजह से है क्योंकि उनमें हकपसन्दी का गुण खत्म नहीं हुआ है। आपको पूरा यकीन था कि जब उनको हिन्दुस्तानी हालात की जानकारी होगी तो जरूर उनकी तरफ ध्यान देंगे। हमारे नेताओं का हमेशा यही ख्याल रहा है। चुनांचे, वक्त बेवक्त कांग्रेस के प्रतिनिधियों को बिलायत भेजने की कोशिशें भी हुई हैं। पहली बार जो प्रतिनिधि गये थे उनमें सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और स्वर्गीय मनमोहन घोष जैसे धुरन्धर वक्ता थे। उनकी कोशिशों का अच्छा नतीजा निकला।

1906 में साल भर मे जो क्रियाकलाप हुए थे उनके आधार पर यह निश्चय किया गया कि हर सूबे से एक-एक प्रतिनिधि इंगलिस्तान भेजा जाय। इस महत्वपूर्ण सेवा के लिये सारे बम्बई सूबे के लोगो की उम्मीद भरी निगाहें गोखले की ओर उठीं। आपकी मुश्किल पसन्द तबियत ने इस सेवा को खुशी से स्वीकार किया जिसे करने के लिये आपसे ज्यादा काबिल दूसरा कोई मिल नहीं सकता था।

सितम्बर महीने में आप दुबारा इंग्लैंड गये। इंग्लिस्तान में आपका स्वागत शिक्षित समुदाय में बड़ी गर्मजोशी और सम्मान से किया गया। मगर चूँकि इसी समय बंगाल का बँटवारा और स्वदेशी आन्दोलन के चर्चे उठ खडे हुए थे इसलिए हिन्दुस्तानियों को अंदेशा था कि मैनचेस्टर और लकाशायर के लोग जो इस स्वदेशी आन्दोलन से रुष्ट हो रहे थे, कहीं आपके प्रति उदासीनता का रुख न अपनायें। मगर आपकी अनुभवी नजरों ने यह भाँप लिया कि उनसे दूर रहना और भी अलगाव की वजह होगी। जब दवा की उम्मीद उनसे है तो दर्द भी उन्हीं से कहना चाहिये। चुनांचे आपने उन शहरों में जाकर ऐसा प्रभावी और पुरजोश भाषण दिया कि सुनने वालों के विचार बदल गये। आपने स्वदेशी आन्दोलन की बहुत हिमायत की जो आपकी साहसिक प्रवृत्ति का बहुत बडा सबूत है।

आपने कहा कि बंगाल में अंग्रेजी माल के बहिष्कार की वजह यह नहीं है कि बंगाल के लोग खुदा न खास्ता विद्रोही विचार रखते हैं। इतिहास और अनुभव इस बात का गवाह है कि हिन्दुस्तानियों जैसी दब्बू और वफादार कौम दुनिया में दूसरी नहीं। जो डेढ़ सौ वर्षों से जरा भी गर्दन न ऊँची करे उसका एकाएक बागी हो जाना गैर मुमकिन है, जब तक कि उसके दिल को इतना भारी सदमा न पहुँचे जो बर्दाश्त के बाहर हो। इसमें शक नहीं कि लार्ड कर्जन की हरकत और खास तौर पर उसकी आखिरी हरकत ने बंगालियों को बहुत निराश और जर्जर कर दिया था लेकिन अभी तक कोई ऐसा वाकया नहीं हुआ जिससे यह साबित हो कि सरकार के विरोध में जनता ने कोई आवाज उठाई या विद्रोह किया हो। अमन चैन में कोई फर्क नहीं आया है। इन्हीं सूरतों में दुनिया की अगर कोई और कौम होती तो भगवान जाने क्या-क्या हंगामा करती। कोई गैर आदमी बंगाल के लोगों की सहनशीलता और सद्व्यवहार की तारीफ किये बिना नहीं रह सकता। यह ख्याल करना गलतफहमीहै कि स्वदेशी आन्दोलन पर इसलिए जोर दिया जा रहा है कि उन्हें अंग्रेजों से दुश्मनी है। बहुत से आंग्ल भारतीय अखबार लोगो को गुमराह कर रहे हैं क्योंकि वह स्वयं इस गलतफहमी के शिकार हो गये हैं। यह तरीका केवल इसलिये

गया है कि बंगाल के लोग अपनी चीख पुकार इंग्लैंड तक पहुँचाये और उनको

अपनी हमदर्दी और दिलसोजी पर आमादा करें। जो इस तरीके को बुरा समझते है वे बतलाये कि इस मकसद को पाने के लिए हिन्दुस्तानियो के हाथ मे और दूसरा कौन उपाय है? क्या भारत सचिव के दरवाजे पर भीख मॉगने से काम चलेगा? या पार्लियामेन्ट में एक दो सवाल उठाने पर मसला हल हो जायेगा? अब अग्रेजों के हकपसन्द नजरिये का यह तकाजा है कि वे सचिव से याचना करें कि गरीब हिन्दुस्तानियो पर झल्लाना जो स्वयं दलित और ठुकराये हैं, अपने आप में इन्सानियत के खिलाफ है। आपने हर मौके पर ऐसा ही जोरदार व्याख्यान दिया। नागवार सच्चाइयों को बयान करने में आपको हरगिज पसोपेश नहीं होता और अंग्रेजों की भी यह महानता थी कि अपनी ही कौम के जुल्म और बदजनी की कहानी सुनने के लिये वे हजारो की तादाद मे इकट्ठे होते थ। हालांकि इन नग्न सच्चाइयों से उनके राष्ट्रीय दर्प को जरूर चोट पहुँचती थी फिर भी आपके पास अनेक सभा-समितियों से प्रार्थनाए आती थीं आर बावजूद अपने मेहनती स्वभाव के आप सब जगह न पहुँच पाते थे। इन व्याख्यानों के दरम्यान ऐसे जोश से दाद और बहुत खूब के नारे बुलन्द होते थे और शुरू से अन्त तक ऐसी दर्दमन्दी आर गमख्वारी का इजहार होता था कि आपको मानना पडेगा कि अभी तक सच्चाई को कबूल करने का गुण अंग्रेजो में मद्धिम नहीं पडा है। आपने डेढ़ महीने के छोटे अर्से में पूरे इंग्लैंड का दौरा किया और अनेक व्याख्यान दिये। लेकिन जिस कौम ने मुद्दत से हिन्दुस्तान को अपनी थाती समझ रक्खा हो उस पर ऐसे व्याख्यानो का कितनी देर तक असर रह सकता था। नेक दिल अग्रेजों की हमदर्दी और प्रशासन की हुकूमत उसी ढर्रे पर चलती रही।

मादरे हिन्द! वे लोग बेइन्साफी करते हैं जो कहते हैं कि हिन्दू कौम बेजान, ओर मुर्दा हो चुकी है। जब तक तेरी गोद में दादा भाई, रानाडे और गोखले जैसे बच्चे खेलेंगे हिन्दू कौम कभी मुर्दा नहीं कही जा सकती। कौन कह सकता है कि अगर इन साहबे-कमालों का जन्म किसी आजाद मुल्क में हुआ होता तो वे ग्लैडस्टोन, बिस्मार्क या रुजवेल्ट न होते।